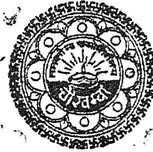
हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला ७७

काशी-बिहार-प्रथमापरीक्षानिर्धारित:

हितोपदेश-मित्रलाभ:

'किरणावली' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेत:

(परीक्षापाठ्य-अश्लीलांशवर्जित संस्करण)



चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस, वाराणसी

सम्पादकीय

'विग्रह तथा संधि' व्यावहारिक, लौकिक और राजनैतिक उपदेशों से पूर्ण छोटी-छोटी कथाओं से युक्त 'हितोपदेश' के अंतिम दो अंश हैं जिनमें दो राजाओं में होने वाले युद्ध एवं संधि का पूर्णतः विवेचन किया गया है। 'विग्रह' में युद्ध के कारणों, उपकरणों, सैनिकों, नियमों तथा उसके औचित्य पर बड़े विस्तार के साथ छोटी-छोटी कहानियों का दृष्टान्त देकर प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार 'संधि' में संधि की आवश्यकताओं, प्रसंगों, अधिकारियों और उसके ढंगों का विस्तृत विवेचन करके सभी प्रकार के संघर्षों को संधि द्वारा बचा लेने का उपदेश दिया गया है। मूल कथाओं के बीच में अवान्तर कथाओं द्वारा अनेक व्यावहारिक तथा लौकिक प्रसंगों को लाकर राजनीति को सामान्य जीवन के स्तर पर मनोरम बना देने की कला ही इस 'हितोपदेश' की अपनी अनोखी विशेषता है और इसी कारण जहाँ यह एक ओर राजनीति-विशारदों का पथ-प्रदर्शन करता है वहीं दूसरी ओर बालकों तथा साधारण लोगों को मनोरंजन की सामग्री भी प्रस्तुत करता है।



विग्रह

कथासार

मूलकथा

कर्पूर द्वीप में पद्मकेलि नाम का एक तालाब था। उसमें हिरण्यगर्भ नाम का राजहंस रहता था। वह सभी पक्षियों द्वारा राजा बना दिया गया था। एक दिन एक बगुले ने आकर उससे कहा कि हे राजन्, जम्बू द्वीप में विन्ध्याचल पर पक्षियों का राजा चित्रवर्ण मयूर रहता है। मैं जिस समय दण्डकारण्य में भ्रमण कर रहा था उसी समय चित्रवर्ण के सेवकों ने मुझे वहाँ देखकर पूछा कि तुम कौन हो और कहाँ से आए हो। मैंने कहा कि मैं चक्रवर्ती सम्राट् राजहंस का सेवक हूँ और देशाटन करने आया हूँ। इस पर उन्होंने कहा कि इन दोनों देशों में कौन देश और किस देश का राजा अच्छा है। मैंने कहा कि कर्पूर देश स्वर्ग है और वहाँ का राजा दूसरा इन्द्र। भला उस देश और उस राजा के समान और कोई देश और राजा हो भी सकता है। मेरी इस बात पर वे क्रुद्ध हो गए, बात ही बात में मुझे मारने के लिए झपटे। तब मैंने भी बलप्रयोग किया। इस पर राजहंस ने कई प्रकार से प्रमाण देते हुए बगुले से कहा कि शत्रु के बलाबल का पूर्णत: ज्ञान हो जाने पर ही बलप्रयोग उचित होता है। तब बगुले ने कहा कि राजन् मैं करता ही क्या! वे सब तो मुझे चोंचों से मार-मार कर लुगदी बनाने लगे। अन्त में वे सब मुझे पकड़ कर राजा चित्रवर्ण के पास ले गए और उनको मेरा परिचय दिया। तब उनके मंत्री गृध्र ने मुझ से पूछा कि तुम्हारे देश का मुख्य मंत्री कौन है? मैंने कहा कि सर्वज्ञ नाम के चक्रवाक हैं। इसी बीच वहाँ उपस्थित शुक ने कहा कि राजन्, कर्पूर द्वीप आदि तो जम्बू-द्वीप के अन्तर्गत ही हैं इसलिए वहाँ भी तो आप ही का स्वामित्व होना चाहिए। राजा ने कहा हो सकता है। तब मैंने कहा कि केवल कहने ही से यदि स्वामित्व मिल जाय तो जम्बूद्वीप पर हमारे राजा का स्वामित्व है।

इस पर शुक ने कहा कि इसका निर्णय कैसे हो ? मैंने कहा कि युद्ध द्वारा ही इसका निर्णय होगा। इस पर राजा ने कहा कि जाकर तुम अपने राजा को युद्ध के लिए तैयार करो। मैंने कहा कि आप अपना दूत भी भेज दें। उन्होंने शुक को दूत बना कर भेजा है। वह आता ही होगा। अब श्रीमान् जैसा उचित समझें वैसा करें।

यह सुन कर मंत्री चक्रवाक ने कहा कि राजन् , इस दुष्ट बगुले ने विदेश में जाकर अपनी दुष्टता से राज्य को युद्ध में फँसा दिया है। अकारण लड़ाई मोल लेना तो मूर्खता है। राजा ने कहा कि खैर ! जो हुआ सो हुआ अब जो सामने है उस पर विचार करो। चक्रवाक ने कहा कि मंत्रणा एकान्त ही में उचित है। तब राजा और मंत्री वहीं बैठे रहे और दूसरे लोग दूसरी जगह चले गए। चक्रवाक ने कहा—राजन्. मुझे तो ऐसा लगता है कि किसी राज्य-कर्मचारी के उकसाने से ही बगुले ने ऐसा किया है। राजा ने कहा—जो हो, इस समय तो कर्तव्य का निश्चय करो। चक्रवाक ने कहा--पहिले गुप्तचर भेज कर शत्रु की अभिलाषा और बलाबल का ज्ञान प्राप्त कीजिए। राजा ने कहा कि हमें तो बहुत ही अच्छा गुप्तचर मिल गया है। इसी बीच द्वारपाल ने शुक के आने की सूचना दी। चक्रवाक ने कहा कि उसे अतिथिशाला में ठहरा दो। इसके बाद मंत्री और राजा में बहुत देर तक युद्ध न करने और करने के विषय में विचार-विमर्श होता रहा। चक्रवाक ने कहा कि पहिले अपने किले को सुदृढ़ बनाना है तथा और भी तैयारियाँ करनी हैं इसलिये शुक को समझा बुझा कर अभी यहीं रोके रहना चाहिये। राजा ने मंत्री से कहा कि ठीक है। जैसा उचित समझो वैसा करो। इसी बीच द्वारपाल ने कौवे के आने की सूचना दी। राजा ने उसकी चतुराई का वर्णन करते हुये उसको आश्रय देने का प्रस्ताव किया। यद्यपि मंत्री ने शत्रु पक्ष होने के कारण उसे आश्रय देने का विरोध किया किन्तु राजा ने उस पर ध्यान न देकर उसे आश्रय दे ही दिया।

चक्रवाक ने आकर कहा कि राजन्, दुर्ग आदि सभी की व्यवस्था पूरी हो चुकी है अतः अब शुक को बुला कर उससे बात हो जानी चाहिये। राजा ने सभा में शुक को बुला भेजा। अभिमान से सिर उठाये हुये शुक ने आसन

पर बैठ कर कहा—हिरण्यगर्भ, महाराजाधिराज चित्रवर्ण ने आपको आदेश दिया है कि यदि आप इसी तरह कुशल-पूर्वक रहना चाहते हैं तो आकर मुझे प्रणाम करें अन्यथा दूसरे स्थान में रहने की बात सोचें। यह सुन कर राजा ने क्रोध के साथ उसे सामने से हटा देने का आदेश दिया। चक्रवाक ने समझा बुझा कर राजा को शान्त किया और उपहारादि देकर शुक को विदा कर दिया।

शुक ने लौट कर चित्रवर्ण को नाना प्रकार का लोभ दिलाते हुये युद्ध के लिये तैयार हो जाने का आग्रह किया। चित्रवर्ण ने अपने सभी सभासदों को बुलाकर विचार किया। यद्यपि मंत्री गृध्र ने समय और परिस्थितियों का वर्णन करते हुए युद्ध न करने का दृढ़ विचार प्रकट किया किन्तु चित्रवर्ण ने बिल्कुल ध्यान न देकर ज्योतिषी को बुला कर शुभ मुहूर्त निश्चित करा कर कर्पूर देश पर चढ़ाई कर दी।

इसके पश्चात् प्रधान गुप्तचर द्वारा भेजे गए दूत ने आकार हिरण्यगर्भ से कहा—-राजन्, अब चित्रवर्ण आना ही चाहते है। आप अपने दुर्ग का हर समय निरीक्षण परीक्षण कराते रहें क्योंकि बातचीत के प्रसंग में उसके मंत्री गृध्र से मुझे ऐसा संकेत मिला है कि उसने गुप्त रूप से किसी को आपके किले में प्रविष्ट कर दिया है। यह सुनकर मंत्री चक्रवाक ने कहा—-वह गुप्त दूत कौवा ही हो सकता है? राजा ने कहा नहीं ऐसा नहीं हो सकता। वह तो बड़ा ही स्वामिभक्त है। अतः अब उपस्थित विषय पर विचार करो। चित्रवर्ण मलय चोटी पर डेरा डाले पड़ा है अब क्या करना चाहिए। मंत्री चक्रवाक ने कहा—"राजन्, मैंने दूत के मुँह से सुना है कि चित्रवर्ण ने अपने मंत्री गृध्र के उपदेशों का तिरस्कार कर दिया हैं अतः वह जीता जा सकता है। इसलिये जब तक वह हमारे किले के द्वार को न घेर ले तब तक जंगलों, नदियों और पहाड़ों के रास्तों में उसकी सेना का विनाश करने के लिये सारस आदि सेनापतियों को नियुक्त कर दीजिये।" चक्रवाक की इस व्यवस्था से चित्रवर्ण के बहुत से सेनापति तथा सैनिक मार डाले गये। तब दुखी होकर चित्रवर्ण ने मंत्री गृध्र से कहा कि तात! यह क्या हो रहा है? गृध्र ने कहा कि आपने अपनी सेना और उमंग को देखकर केवल साहस का सहारा लिया और मेरी गूढ़ नीतिकी उपेक्षा की।

इसीलिये यह फल भोगना पड़ा है। चित्रवर्ण ने कहा कि जो हुआ सो हुआ किन्तु अब तो कोई उपाय कीजिए। गृध्र ने कहा राजन् आप डरें न, धैर्य धारण करें और उपहारादि से सेनापतियों और सैनिकों को तुष्ट कर दें। गृध्र ने इस प्रकार सैनिकों और सेनापतियों को तुष्ट करके राजा हिरण्यगर्भ के किले पर घेरा डाल दिया।

इसी बीच चित्रवर्ण के कपट दूत कौवे ने हिरण्यगर्भ से कहा कि राजन् मैं अब अपना पौरुष दिखाना चाहता हूँ। चक्रवाक ने कहा कि किले के बाहर होकर युद्ध करना ठीक नहीं। किन्तु हिरण्यगर्भ कौवे की बात में आकर सबको साथ लेकर दुर्ग द्वार पर महान् युद्ध में संलग्न हो गए। दूसरे दिन चित्रवर्ण ने कहा कि मंत्री अब आप अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिये। मंत्री गृध्र ने कहा कि राजन्, आप शान्त रहें। सभी कुछ हो रहा है और उसने राजा के कान में कुछ कहा। दूसरे दिन सूर्य निकला भी नहीं था कि किले के चारों द्वारों पर भयंकर युद्ध होने लगा। इसी बीच कौवे ने किले के भीतर आग लगा दी। तब शत्रुसेना का कोलाहल सुनकर और किले की आग देख कर राजहंस के सभी सैनिक शीघ्र ही तालाब में घुस गये। स्वभाव से धीरे-धीरे चलने वाला हिरण्यगर्भ अपने सेनापति सारस के साथ जाते समय चित्रवर्ण के सेनापति मुर्गे के द्वारा घेर लिया गया और उस पर प्रहार कर दिया। किन्तु सारस ने स्वामी को जल में प्रविष्ट करा दिया और स्वयं मुर्गे से लड़ता हुआ मारा गया।

इसके पश्चात् चित्रवर्ण ससैन्य किले में प्रविष्ट हुआ और वहाँ की बची हुई सभी सामग्री लेकर पड़ाव पर लौट गया। इस प्रकार दूरदर्शी मंत्री चक्रवाक की बात न मान कर शत्रु के कपटदूत कौवे को आश्रय देने तथा किले से बाहर जाकर युद्ध करने के कारण राजहंस पराजित हो गया।

प्रासंगिक कथाएँ

१ वानर पक्षी कथा

नर्मदा के किनारे पहाड़ की तलहटी में एक सेमल का पेड़ था। वहाँ घोंसले बनाकर बहुत से पक्षी रहते थे। एक दिन गहरी वर्षा से भींग कर काँपते हुए उसी पेड़ के नीचे बैठे हुए वानरों को देख कर पक्षियों ने कहा कि भाइयों

तुम लोग अपने लिये घर क्यों नहीं बना लेते ? इस पर सारे बन्दर क्रुद्ध हो गए और उन्होंने सभी घोंसलों को नष्ट कर दिया ।

२ रजक-गर्दभ कथा

हस्तिनापुर में विलास नाम का धोबी था। उसका गधा बोझ ढोते-ढोते दुबला हो गया था। इसलिये धोबी ने उसे बाघ के चमड़े से ढक कर ज़ंगल के पास खेत में छोड दिया। गदहा खा-पीकर खूब मोटा हो गया। उसे दूर से देख कर बाघ समझ कर खेत के मालिक भागने लगे। एक दिन एक खेत का रखवाला मटमैला कम्बल ओढ़ कर धनुष चढ़ाकर तथा शरीर को झुका कर एकान्त में बैठ गया। उसे देख कर गदहा उसको भी गदहा समझ कर रेंकने लगा और रखवाले के द्वारा मार डाला गया।

३ गजयूथ-शशक कथा

एक बार पानी न बरसने से सभी हाथी प्यास से व्याकुल हो स्वामी से किसी जलमय स्थान में ले चलने की प्रार्थना करने लगे। स्वामी ने उन्हें एक तालाब दिखा दिया। वहाँ बहुत से खरगोश रहते थे जो हाथियों के पैरों तले कुचल-कुचल कर मरने लगे। यह देख एक दिन विजय नामक बूढ़े खरगोश ने हाथियों के स्वामी से जाकर कहा कि मेरे स्वामी चन्द्रदेव ने मुझे आपके पास यह कहने के लिए भेजा है कि खरगोशों का इस प्रकार बिनाश करना ठीक नहीं है। हाथियों के स्वामी ने कहा कि बड़ी भूल हुई अब हम लोग वहाँ नहीं जायँगे। इसके बाद उसने खरगोश के साथ तालाब के किनारे जाकर चन्द्रबिम्ब को प्रणाम किया और माफी मांग ली।

४ हंस-काक-पथिक कथा

उज्जयिनी में पाकड़ का एक पेड़ था। उस पर हंस और कौवा रहते थे। एक दिन एक राही ने गर्मी से थककर उसी पेड़ के नीचे आकर धनुष रख दिया और सो गया। कुछ देर बाद छाया हट जाने से उसके मुँह पर धूप पड़ने लगी। तब हंस ने अपने पंखों को फैला कर उसके मुँह पर छाया कर दी। इधर राही ने सोने ही में ज्यों ही मुँह खोला त्यों ही कौवा उसमें बीट कर के उड़ गया और बेचारा हंस राही के द्वारा मार डाला गया।

५ काक-वर्त्तक कथा

एक पेड़ पर कौवा और वत्तक साथ-साथ रहते थे। एक ग्वाला सिर पर दही का वर्तन रखे जा रहा था। कौवा बार-बार दही खा लिया करता था। जब ग्वाले ने दही का वर्तन नीचे रखकर ऊपर देखा तो कौवा तो भाग गया और बेचारा वत्तक पकड़ लिया गया और मार डाला गया।

६ रथकार कथा

श्रीनगर में एक बढ़ई रहता था। वह अपनी पत्नी को कुलटा तो समझता था किन्तु उसने कभी उसे जार के साथ देखा नहीं था। एक दिन वह घर में चारपाई के नीचे छिप गया। जिस समय जार उसी चारपाई पर सोकर उसकी पत्नी के साथ संभोग करने लगा उस समय उस स्त्री का कोई अंग बढ़ई से छू गया। वह यह जानकर उदास हो गई। जार ने जब उसकी उदासी का कारण पूछा तो वह अपने पति की प्रशंसा और उसके वियोग में दुःखी होने की बात कहने लगी जिसे सुनकर बढ़ई प्रसन्न हो गया और चारपाई को सिर पर उठा कर नाचने लगा।

७ नीलवर्ण शृगाल कथा

एक गीदड़ नगर के किनारे घूमता हुआ नील के भांड़ में गिर पड़ा। दूसरे दिन जब वह वन में गया तो अपने बदले हुए रंग को देखकर उसने गीदड़ों को बुलाकर कहा कि वनदेवियों ने अपने हाथ से मेरा रसौषधियों से अभिषेक किया है। गीदड़ों ने उसकी बात को सत्य मानकर उसे राजा मान लिया। धीरे-धीरे वह सभी जंगली पशुओं का राजा बन गया। वह व्याघ्र, सिंह आदि उत्तम सेवकों को पाकर अपनी जाति वालों का तिरस्कार करने लगा। इससे सभी दुखी गीदड़ों ने संध्या समय इकट्ठा होकर बोलना प्रारंभ किया। उस शब्द को सुनकर जाति स्वभाव से वह भी बोलने लगा और बाघ के द्वारा मार डाला गया।

८ वीरवर कथा

एक दिन राजा शूद्रक के दरबार में वीरवर नाम के राजकुमार ने आकर प्रतिदिन पाँच सौ स्वर्ण मुद्रा वेतन लेकर सेवा करने की प्रार्थना की। राजा ने मंत्रियों के कहने से उसे सेवा में नियुक्त कर लिया। एक दिन राजा को सोते

समय रोने की ध्वनि सुनाई पड़ी। उसने वीरवर को पता लगाने के लिए भेजा किन्तु स्वयं भी चुपचाप उसके पीछे चल पड़ा। वीरवर ने नगर के बाहर एक स्त्री को रोते हुए देखा जो शूद्रक की राज्यलक्ष्मी थी। उसने वीरवर से कहा कि मैं जा रही हूँ इसलिए रो रही हूँ। यदि तुम मुझे रोकना चाहते हो तो अपने पुत्र की बलि चढ़ा दो। वीरवर चुपचाप अपने घर गया और वहाँ से पुत्र तथा स्त्री के साथ देवी के मंदिर में पहुँचा। वहाँ उसने अपने पुत्र की बलि दे दी। इसके बाद उसने अपना भी सिर काट दिया। पति और पुत्र को इस प्रकार मरा देख उसकी स्त्री ने भी वैसा ही किया। राजा यह सब छिपकर देख रहा था। उसने भी अपना सिर काटने के लिए ज्यों ही तलवार हाथ में ली त्यों ही देवी ने प्रकट होकर उसका हाथ पकड़ लिया और राज्यलक्ष्मी के स्थिर होने का वरदान देकर वीरवर को भी स्त्री-पुत्र के साथ जीवित कर दिया। राजा चुपके से अपने महल में चला आया और जब दूसरे दिन उसने वीरवर से पूछा तो उसने कहा कि एक स्त्री रो रही थी और मुझे देखकर लुप्त हो गई। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और सभा करके उसमें सारी बातें कहकर वीरवर को कर्नाटक देश का राजा बना दिया।

६ निष्यर्थी नापित कथा

अयोध्या में चूडामणि नाम का एक क्षत्रिय रहता था। उसने धन के लिए शंकर जी की बड़ी आराधना की। भगवान शंकर ने उसे स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि आज प्रातःकाल बाल बनवाकर तुम डंडा लेकर अपने दरवाजे पर बैठे रहना और जब कोई भिक्षुक तुम्हारे द्वार पर आए तो तुम डंडे से उसे पीटना, जिससे वह भिक्षुक सोने का घड़ा बन जायगा। उस क्षत्रिय ने वैसा ही किया और भिक्षुक सोने का घड़ा बन गया। वहाँ बाल बनाने के लिए आए हुए नाई ने जब यह देखा तो उसने भी दूसरे दिन अपने घर आए हुए भिक्षुक को डंडे से मार डाला और इस अपराध में वह भी राजपुरुषों द्वारा मार डाला गया।



सन्धि

कथासार

मूलकथा

राजा हिरण्यगर्भ ने अपने मंत्री से पूछा कि मेरे किले में आग किसने लगाई थी। मंत्री चक्रवाक ने कहा कि उसी अकारण बन्धु बने हुए कौवे ने, जिसे आपने मेरे मना करने पर भी आश्रय दिया था। राजा ने कहा कि यह हमारा दुर्भाग्य था जो आपकी बात हमने नहीं सुनी। इसी बीच गुप्तचर ने आकर कहा कि 'वह कौवा आग लगा कर चित्रवर्ण के पास गया और उसने सारी बात कह सुनाई तो चित्रवर्ण ने उसे कर्पूर द्वीप का राजा बना देने का प्रस्ताव किया। तब मंत्री गृध्र ने दृष्टान्त देते हुए उसका विरोध किया और कहा कि राजा राजहंस से संधि कर लेनी चाहिये। इस पर राजा चित्रवर्ण ने कहा कि आपने पहिले ही क्यों नहीं कहा। तब गृध्र ने कहा कि आपने मेरी बात ही कहाँ सुनी। मैं तो पहिले ही संधि के पक्ष में था। आपने ही अपने मद में आकर लड़ाई ठानी। फिर भी जो हुआ सो हुआ, अब भी आपको राजहंस जैसे राजा के साथ संधि कर लेनी चाहिये। किन्तु हे राजन्, मंत्री गृध्र के कहने पर भी प्राप्त विजय के अभिमान में चित्रवर्ण संधि नहीं करना चाहता इसलिये अपने मित्र सिंहलद्वीप के राजा सारस को उसके प्रति भड़का देना चाहिये।' राजा हिरण्यगर्भ ने उसकी बात मानकर विचित्र नामक बगुले को गुप्त पत्र के साथ सिंहलद्वीप भेज दिया।

इसके बाद गुप्तचर ने आकर फिर कहा कि राजन् इस समय शत्रु पक्ष में जो हो रहा है उसे सुनिये। राजा चित्रवर्ण ने जब कौवे से आपके विषय में पूछा तो उसने आप की बड़ी प्रशंसा की। इस पर मंत्री गृध्र ने फिर कहा कि राजन् राजा राजहंस से संधि कर लेनी चाहिये। इस पर चित्रवर्ण ने कहा कि वह कैसे हो सकता है? हम विजयी हैं और वह पराजित है। इसी बीच चित्रवर्ण

के गुप्तचर शुक से आकर कहा कि महाबली सारस ने जम्बूद्वीप पर घेरा डाल दिया है। यह सुनते ही चित्रवर्ण क्रुद्ध हो गया और उससे लड़ने के लिये जाने को तैयार हो गया। इस पर मंत्री गृध्र ने समझाया कि एक ही साथ प्रहार करने वाले बहुत से शत्रुओं के साथ राजा को कभी नहीं लड़ना चाहिये इसलिये यहाँ से बिना संधि किये जाना उचित नहीं है क्योंकि यह पीछे से हम लोगों पर आक्रमण कर देगा। इसलिये इस समय मेरी बात मानकर संधि करके ही यहाँ से चलना ठीक होगा। इस पर राजा चित्रवर्ण ने कहा कि अब यह कैसे होगा? मंत्री गृध्र ने कहा—बहुत शीघ्र हो जायेगा। राजा हिरण्यगर्भ धर्मात्मा और उनका मंत्री चक्रवाक सर्वज्ञ है अतः वह दोनों आसानी से प्रसन्न हो जायँगे। तब राजा चित्रवर्ण ने कहा कि जैसा उचित समझो वैसा ही करो।

दूसरे दिन फिर गुप्तचर ने आकर राजा हिरण्यगर्भ से कहा कि 'राजन्, संधि करने के लिए महामन्त्री गृध्र आ रहे हैं।' राजा हिरण्यगर्भ ने मन्त्री चक्रवाक से कहा—मंत्री, क्या इसमें कोई रहस्य है? यह सुन कर मंत्री ने कहा—राजन्, डरने की बात नहीं है। उसके सत्कार के लिये रत्नादि उपहार सजा लेना चाहिये। ऐसा कहकर मंत्री चक्रवाक ने दुर्गद्वार पर जाकर मन्त्री गृध्र का सत्कार किया और उन्हें आदर के साथ राजा के पास लाकर आसन पर बिठाया। कुछ इधर-उधर की बातें होने के बाद गृध्र ने कहा कि मैं आप से संधि करके यहाँ से जाना चाहता हूँ। तब मंत्री चक्रवाक ने कहा कि आप किस प्रकार की संधि करना चाहते हैं। गृध्र ने सभी प्रकार की संधियों का वर्णन करते हुए कहा कि मैंने सभी प्रकार की सन्धियाँ बता दी हैं अब आप जिस प्रकार की संधि चाहें, कर लें। अंत में यह निश्चय हुआ कि कांचनाभिधान संधि कर ली जाय।

इसके पश्चात् राजा हिरण्यगर्भ ने वस्त्रालंकार से गृध्र को प्रसन्न किया। वह चक्रवाक को साथ लेकर अपने राजा चित्रवर्ण के पास गया। वहाँ राजा चित्रवर्ण ने गृध्र तथा चक्रवाक द्वारा बताई गई सन्धि को स्वीकार कर लिया और चक्रवाक को भेज दिया। तब गृध्र ने अपने राजा चित्रवर्ण से कहा कि राजन्, हम लोगों की अभिलाषा पूरी हो गई। अब हमें अपने देश को लौट चलना चाहिये।

प्रासंगिक कथाएँ

१. कूर्मकथा

मगध देश में एक तालाब था वहाँ सकट-विकट नाम के हंस रहते थे। वहीं उनका मित्र कम्बुग्रीव कछुआ भी रहता था। एक दिन वहाँ कछुओं ने आकर कहा कि कल प्रातःकाल मछलियों और कछुओं का शिकार किया जायगा। यह सुनकर कछुवे ने हंसों से कहा कि अब क्या करना चाहिए। उन्होंने कहा कि प्रातःकाल देखा जायगा। कछुवे ने कहा कि यह ठीक नहीं है, मैं एक उपाय बताता हूँ। उसी सहारे तुम दोनों मुझे दूसरे तालाब में पहुँचा दो। मैं एक काठ अपने मुँह में दबा लूँगा और तुम दोनों उसे लेकर उड़ चलना। हंसों ने कहा कि बोलना मत नहीं तो गिर पड़ोगे। कछुवे ने कहा कि मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ। किन्तु जिस समय ये दोनों हंस एक नगर से उड़े जा रहे थे उस समय कछुवे को लटकता हुआ देखकर लोगों ने कोलाहल करना शुरू किया जिसे सुनकर कछुवा बोल पड़ा और जमीन पर गिर पड़ा।

२. त्रिमत्स्य कथा

एक तालाब में तीन मछलियाँ रहती थीं। एक दिन मछुओं को वहाँ आया हुआ देख कर एक मछली ने कहा कि मैं तो अब दूसरे तालाब में जा रही हूँ। दूसरी ने कहा कि जब कोई बाधा होगी तो देखा जायगा। तीसरी ने कहा कि जो होगा वह होगा ही फिर डरने की क्या बात। प्रातःकाल दूसरी और तीसरी मछलियाँ जाल में फँस गईं। दूसरी मछली ने तो अपने को मरा हुआ सा दिखाया जिससे मछुवे ने उसे फेंक दिया और वह कूद कर पानी में चली गई किन्तु तीसरी मछुवों द्वारा मार डाली गई।

३. वणिग्भार्या कथा

त्रिविक्रमपुर में समुद्रदत्त नाम का एक बनिया था। उसकी स्त्री रत्नप्रभा अपने सेवक के साथ भोग करती थी। एक बार वह सेवक को चुम्बन दे रही थी कि समुद्रदत्त ने देख लिया। तब वह बनिये के पास जाकर बोली कि यह सेवक कपूर चुराकर खाता है। मैंने इसका मुँह सूँघ कर देखा है। सेवक ने कहा कि जिस घर में ऐसी औरत हो वहाँ कोई सेवक कैसे रह सकता है। यह

कह कर वह चल पड़ा। तब बनिये ने उसे किसी प्रकार मना कर लौटाया और वह फिर सुख से रहने लगा।

४ बक-नकुल कथा

एक पाकड़ के पेड़ पर बहुत से बगुले रहते थे। उस पेड़ के नीचे बिल में एक साँप रहता था। वह बगुले के अंडों को खा जाया करता था। यह देख कर एक बूढ़े बगुले ने कहा कि साँप के बिल से नेवले के बिल तक मछलियाँ बिखेर दो जिससे नेवला आकर साँप को मार डालेगा। बगुलों ने वैसा ही किया जिससे नेवले ने साँप को मार डाला किन्तु वृक्ष पर चढ़ कर वह बगुलों के बच्चों को खाने लगा।

५. मूषक-मुनि कथा

एक तपोवन में गौतम नाम के मुनि थे। उन्होंने कौवे के मुँह से गिरे हुए एक चूहे के बच्चे को पाया और उसे पाल-पोस कर बड़ा किया। जब वह बिल्ली से डरने लगा तो उसे मुनि ने बिल्ली बना दिया, फिर जब वह कुत्ते से डरने लगा तो उसे कुत्ता बना दिया और जब वह बाघ से डरने लगा तो उसे बाघ बना दिया। लेकिन मुनि उसे चूहा ही समझते थे और दूसरे लोग भी उसके इस रूप-परिवर्तन की चर्चा किया करते थे। इसलिए वह मुनि को मार डालने के लिए झपटा जिससे मुनि ने फिर उसे चूहा बना दिया।

६. बक-कर्कट कथा

मालव देश के एक तालाब के किनारे एक बगुला उदास होकर खड़ा था। एक बूढ़े केकड़े ने उसे देखकर पूछा कि आप इस तरह खाना-पीना छोड़ कर यहाँ क्यों पड़े हैं? बगुले ने कहा कि मछलियाँ मेरा भोजन हैं और उन्हें मछुवे पकड़ ले जायँगे इसीलिए मैंने आज ही से खाना-पीना छोड़ दिया है। मछलियों ने यह सुन कर कहा कि हमारी रक्षा कैसे हो सकती है। बगुले ने कहा कि मैं एक-एक करके तुम लोगों को दूसरे तालाब में पहुँचा दूँगा। इस प्रकार वह एक-एक को ले जाकर खाने लगा। एक दिन उसने केकड़े को खाना चाहा कि उसने बगुले का गला पकड़ लिया जिससे वह मर गया।

७. भग्नभांड ब्राह्मण कथा

देवकोट नगर मे देवशर्मा नाम का एक ब्राह्मण था। उसे सतुवा सक्रान्ति के दिन सतुवे से भरा एक घडा मिला। उसे लेकर वह कुम्हार के मंडप में सो गया जहाँ बहुत से वर्तन रखे हुए थे। ब्राह्मण हाथ मे एक डंडा लेकर सोचने लगा कि इस सतुवे को बेंचकर दश कौडी प्राप्त करूँगा, उससे घड़ा आदि खरीद बेंच कर धन इकठ्ठा करके फिर सुपारी वस्त्र आदि का व्यापार करके धनी बन जाऊँगा और चार स्त्रियों से विवाह करूँगा। जब वह झगडने लगेंगी तो इसी डंडे से मारूँगा। ऐसा कह कर उसने डंडा चला दिया जिससे कुम्हार के बहुत से वर्तन टूट गए जिसे देख कर कुम्हारने उसे अपने मंडप से बाहर निकाल दिया।

८. सुन्दोपसुन्द कथा

प्राचीन काल में सुन्द उपसुन्द नाम के दो सगे भाइयों ने तीनों लोकों के राज्य की कामना से शंकर जी की आराधना की। जब शंकर जी ने प्रसन्न होकर उनसे वर माँगने को कहा तो उन दोनों ने राज्य माँगने के बदले पार्वती को माँगा। शंकर ने क्रुद्ध होकर पार्वती को दे दिया। लेकिन दोनों उन्हें अपना-अपना बनाने के लिए आपस में लड़ मरे।

९. धूर्त एवं ब्राह्मण कथा

गौतमारण्य में एक ब्राह्मण रहता था। वह यज्ञ करने के लिए एक बकरा कंधे पर रखे लिए आ रहा था। रास्ते में तीनों धूर्तों ने उसे देखा और बकरा किसी प्रकार ले-लेने का षड्यंत्र किया। तीनों थोड़ी-थोड़ी दूर पर खडे हो गए। एक ने कहा कि ब्राह्मण देवता कुत्ता कंधे पर रखे क्यों जा रहे हो। ब्राह्मण ने कहा यह कुत्ता नहीं यह तो यज्ञ का बकरा है। फिर थोड़ी दूर पर जाने पर दूसरे ने भी वही कहा तब ब्राह्मण ने बकरे को उतार कर भली भाँति देखा और फिर कंधे पर रख कर चल दिया किंतु जब थोड़ी दूर जाने पर तीसरे ने भी उसे कुत्ता कहा तो ब्राह्मण ने उसे वहीं छोड़ दिया और स्वयं अपनी कुटी में चला गया।

१०. सिंह-व्याघ्र-काक-जम्बुक कथा

एक जंगल में एक सिंह था। उसके कौवा, बाघ और गीदड़ तीन सेवक थे। उन्होंने जंगल में भटका हुआ एक ऊँट देखा और उसे सिंह के पास पहुँचा दिया। सिंह ने उसे अभयदान देकर अपनी शरण में रख लिया। एक बार

सिंह बीमारी तथा वर्षा के कारण भोजन न मिलने से बड़ा दुःखी हो गया। तब उन्होंने आपस में विचार किया कि ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिससे स्वामी ऊँट को मार डाले। इसके बाद सब सिंह के पास गये और बाघ ने कहा कि आप मुझे मार कर खा जायँ, फिर इसी प्रकार कौवे और गीदड़ ने भी कहा किन्तु सिंह ने किसी को नहीं मारा। तब ऊँट ने भी वही कहा। इस पर बाघ ने उसे मार डाला और सब ने खूब पेट भर मांस खाया।

११. वृद्ध सर्प-मण्डूक कथा

एक पुराने बगीचे में मन्दविष नाम का एक साँप रहता था। वह बुढौती के कारण आहर खोजने में असमर्थ होकर तालाब के किनारे पड़ा था। उसे देख कर एक मेढक ने पूछा कि आप भोजन क्यों नहीं ढूँढते। साँप ने कहा कि मैंने ब्रह्मपुर के एक ब्राह्मण के नौजवान लड़के को काट लिया और वह मर गया। तब उसके पिता ने संन्यास ले लिया और मुझे मेढक ढोने का शाप दिया इसी लिए मैं यहाँ मेढ़कों के लिए आया हूँ। मेढ़क ने जब अपने स्वामी से यह चर्चा की तो वह साँप की पीठ पर चढ़ गया लेकिन जब दूसरे दिन उसने साँप से पूछा कि तुम चल क्यों नहीं पा रहे हो तो उसने कहा कि भोजन न मिलने से मेरी यह दशा हो गई हैं। तब मेढ़कों के स्वामी ने मरे मेढकों को खाने का आदेश दे दिया। जब सारे मेढ़क खतम हो गए तो उसने मेढ़कों के स्वामी को भी खा डाला।

१२. ब्राह्मण-नकुल कथा

उज्जैनी में माधव नामका एक ब्राह्मण था। एक दिन उसकी पत्नी अपने बच्चे को ब्राह्मण को सौंप कर स्नान करने गई। इसी बीच राजा ने ब्राह्मण को श्राद्ध कराने के लिए बुला भेजा ब्राह्मण ने अपने पालतू नेवले को बालक की रखवाली के लिए नियुक्त कर दिया और स्वयं राजा के यहाँ चला गया। बालक के पास आने वाले सांप को नेवले ने मार डाला और ब्राह्मण को आता देख खून भरे मुँह से उसके पास पहुँचा ब्राह्मण ने समझा कि इसने लड़के को ही खा लिया है जिससे उसने क्रुद्ध होकर नेवले को मार डाला। लेकिन जब उसने घर में आकर बालक को सोया देखा तो वह अपने क्रोध पर पश्चात्ताप करने लगा।

॥ श्रीः ॥

हितोपदेशः

सान्वय 'किरणावली' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतः

—:०:—

विग्रहः

अथ पुनः कथारम्भकाले राजपुत्रा ऊचुः—'आर्य ! राजपुत्रा वयम् । तद्विग्रहं श्रोतुं नः कुतूहलमस्ति ।' विष्णुशर्मणोक्तम्—'यदेवं भवद्भ्यो रोचते तत् कथयामि । विग्रहः श्रूयतां, यस्यायमाद्यः श्लोकः—

कथारम्भकाले=कथाप्रारम्भसमये । राजपुत्राः=राजकुमाराः । ऊचुः=उक्तवन्तः । विग्रहम्=युद्धम् । श्रोतुम्=आकर्णयितुम् । नः=अस्माकम् । कुतूहलम्=औत्सुक्यम् । श्रूयताम्=आकर्ण्यताम् । यस्य = विग्रहप्रसंगस्य । आद्यः=प्रथमः । श्लोकः=पद्यम् ।

फिर कथा आरंभ होने के समय राजकुमारों ने कहा—आर्य ! हमलोग राजकुमार हैं, अतः हमलोगों में विग्रह (युद्ध) सुनने की उत्सुकता हो रही है । विष्णुशर्माने कहा—'यदि आपलोगों की ऐसी रुचि है तो कह रहा हूँ । 'विग्रह' सुनिए, जिसका पहला श्लोक यह है—

'हंसैः सह मयूराणां विग्रहे तुल्यविक्रमे ।
विश्वास्य वञ्चिता हंसाः काकैः स्थित्वारिमन्दिरे' ॥१॥

अन्वयः—हंसैः सह मयूराणाम् तुल्यविक्रमे विग्रहे अरिमन्दिरे स्थित्वा (हंसान्) विश्वास्य काकैः हंसाः वञ्चिताः ॥ १ ॥

हंसैः=मरालैः । सह=साकम् । मयूराणाम्=बर्हिणाम् । तुल्यविक्रमे=समानबले । विग्रहे=युद्धे । अरिमन्दिरे=शत्रुगृहे; हंसभवने इत्यर्थः । स्थित्वा=निवासम् कृत्वा । विश्वास्य=विश्वासं विधाय । काकैः=वायसैः वञ्चिताः=प्रवञ्चनां प्रापिताः ॥१॥

समान बलवाले हंसों के साथ मोरों के युद्ध में कौवों ने शत्रु (हंसों) के घर में रहकर और उन्हें विश्वास दिलाकर धोखा दे दिया अर्थात् उन्हें पराजित कर दिया ॥ १ ॥

राजपुत्रा ऊचुः—कथमेतत् ? विष्णुशर्मा कथयति—

'अस्ति कर्पूरद्वीपे पद्मकेलिनामधेयं सरः। तत्र हिरण्यगर्भो नाम राजहंसः प्रतिवसति। स च सर्वैर्जलचरैः पक्षिभिर्मिलित्वा पक्षिराज्येऽभिषिक्तः। यतः—

कर्पूरद्वीपे=तन्नामकद्वीपे। पद्मकेलिनामधेयम्=पद्मकेलिनाम। सरः=कासारः। तत्र=तस्मिन् सरसि। राजहंसः=हंसानां राजा। प्रतिवसति=निवसति। सर्वैः=समग्रैः। जलचरपक्षिभिः=जलचारिभिः खगैः। पक्षिराज्ये=पक्षिणां राज्यपदे। अभिषिक्तः=प्रतिष्ठापितः।

राजकुमारों ने कहा—'यह कैसे'। विष्णुशर्मा ने कहा—

'कर्पूरद्वीप में पद्मकेलि नाम का एक तालाब है, वहाँ हिरण्यगर्भनाम का राजहंस रहता था। वह सभी जलचारी पक्षियों द्वारा राजा बना दिया गया था। क्योंकि—

'यदि न स्यान्नरपतिः सम्यङ्नेता ततः प्रजा।
अकर्णधारा जलधौ विप्लवेतेह नौरिव' ॥ २ ॥

अन्वयः—यदि सम्यक् नेता नरपतिः न स्यात्, ततः प्रजा जलधौ अकर्णधारा नौः इव इह विप्लवेत ॥ २ ॥

यदि=चेत्। सम्यक्=सर्वप्रकारेण। नेता=अग्रणीः, रक्षकः इत्यर्थः। नराणां पतिः नरपतिः=राजा। ततः=तदा। प्रजा=लोकः। जलधौ=समुद्रे। न कर्णधारः यस्याः सा अकर्णधारा=अनाविका। नौः=तरणिः। इव=सदृशम्। इह=जगति। विप्लवेत=निमज्जेत्, विनश्येत् ॥ २ ॥

यदि कोई राजा प्रजा का अच्छा नेता न हो तो प्रजा उसी प्रकार दुखों में डूब जाती है जैसे बिना मल्लाह की नाव समुद्र में डूब जाती है ॥ २ ॥

अपरञ्च—'प्रजां संरक्षति नृपः सा वर्द्धयति पार्थिवम्।
वर्द्धनाद्रक्षणं श्रेयस्तदभावे सदप्यसत्' ॥ ३ ॥

अन्वयः—नृपः प्रजाम् संरक्षति, सा पार्थिवम् वर्द्धयति, (किन्तु) वर्धनात् रक्षणम् श्रेयः (यतः) तदभावे सत् अपि असत् (भवति) ॥ ३ ॥

नृपः=राजा। प्रजाम्=लोकम्। संरक्षति=रक्षाम् करोति। सा=प्रजा। पार्थिवम्=नृपम्। वर्द्धयति=करदानादिना धनधान्यपूर्णं करोति। वर्द्धनात्=वर्धनमपेक्ष्य। रक्षणम्=पालनम्। श्रेयः=श्रेष्ठम्। तदभावे=रक्षणाभावे। सत् अपि=विद्यमानमपि। असत् एव=नष्टम् एव ॥ ३ ॥

और भी—राजा प्रजा की रक्षा करता है और प्रजा (धन धान्य से) राजा को समृद्धिशाली बनाती है। किन्तु किसी वस्तु को बढ़ाने से उसकी रक्षा करना ही श्रेष्ठ है, क्योंकि रक्षाके अभाव में विद्यमान वस्तु भी नष्ट हो जाती है ॥ ३ ॥

एकदासौ राजहंसः सुविस्तीर्णकमलपर्यंके सुखासीनः परिचारपरिवृतस्तिष्ठति। ततः कुतश्चिद्देशादागत्य दीर्घमुखो नाम बकः प्रणम्योपविष्टः। राजोवाच—'दीर्घमुख! देशान्तरादागतोऽसि, वार्त्तां कथय।' स ब्रूते–'देव! अस्ति महती वार्त्ता। तामाख्यातुकाम एव सत्वरमागतोऽहम्। श्रूयताम्—

एकदा=एकस्मिन्काले। सुविस्तीर्णम्=अतिप्रफुल्लितम् यत् कमलम् = नीरजम् तदेव पर्यंङ्कः=शय्या तस्मिन्। सुखेन=आनन्देन आसीनः=अधिष्ठितः। परिवारेण=स्वजनवर्गेण। परिवृतः=परिवेष्टितः। तिष्ठति=स्थितः अस्ति। कुतश्चिद्देशात्=कुतोऽपि विषयात्। प्रणम्य=नमस्कारं कृत्वा। उपविष्टः = आसनस्थो बभूव। देशान्तरात्=अन्यदेशात्। आगतोऽसि=आयातोऽसि। ब्रूते=उवाच। महती वार्ता=नितान्तगुर्वी वार्ता। ताम्=वार्ताम्। आख्यातुकामः=वक्तुकामः। सत्वरम्=शीघ्रम्।

एक बार वह राजहंस कमलों की विस्तृत शय्या पर आनन्द से बैठा हुआ था कि उसी समय किसी अन्य देश से आकर एक बगुला प्रणाम करके बैठ गया। राजाने कहा—'दीर्घमुख, तुम दूसरे देश से आ रहे हो। अतः वहाँ की बातें बताओ।' उसने कहा—'राजन् बहुत बड़ी बात है। उसी को सुनाने के लिए ही मैं शीघ्रता से आया हूँ। सुनिए—

'अस्ति जम्बूद्वीपे विन्ध्यो नाम गिरिः। तत्र चित्रवर्णो नाम मयूरः पक्षिराजो निवसति। तस्यानुचरैश्चरद्भिः पक्षिभिरहं दग्धारण्यमध्ये चरन्नवलोकितः, पृष्टश्च—'कस्त्वम्? कुतः समागतोऽसि? तदा मयोक्तम्—कर्पूरद्वीपस्य राजचक्रवर्त्तिनो हिरण्यगर्भस्य राजहंसस्यानुचरोऽहं, कौतुकाद् देशाऽन्तरं द्रष्टुमागतोऽस्मि। एतच्छ्रुत्वा पक्षिभिरुक्तम्–'अनयोर्देशयोः को देशो भद्रतरो, राजा च?'।

गिरिः=पर्वतः। अनुचरैः=सेवकैः। चरद्भिः=भ्रमद्भिः। दग्धारण्यमध्ये=दग्धनामककाननान्तरे। चरन्=भ्रमन्। अवलोकितः=दृष्टः। कुतः=कस्मात् स्थानात्। समागतोऽसि=समायातोऽसि। राजचक्रवर्तिनः=मंडलेश्वरस्य। अनुचरः=सेवकः। कौतुकात्=औत्सुक्यात्। द्रष्टुम्=अवलोकनार्थम्। एतत् श्रुत्वा=मद्वचनमाकर्ण्य। अनयोर्देशयोः=अनयोः द्वयोः देशयोः मध्ये। भद्रतरः=श्रेष्ठतरः।

जम्बूद्वीप में विन्ध्य नाम का पहाड़ है। वहाँ पक्षियों का राजा चित्रवर्ण नाम वाला मोर रहता है। मैं दग्धारण्य में भ्रमण कर रहा था कि उसके घूमने वाले सेवक पक्षियों ने मुझे देख लिया। उन्होंने मुझसे पूछा–'तुम कौन हो ?' 'और कहाँ से आए हो ?' तब मैंने कहा–'मैं कर्पूर द्वीपके चक्रवर्ती सम्राट् राजहंस हिरण्यगर्भ का सेवक हूँ। कुतूहलवश अन्यदेशों को देखने के लिए आया हूँ।' यह सुनकर उन पक्षियों ने कहा—'इन दोनों देशों में कौन देश और कौन राजा अच्छा है।'

ततो मयोक्तम्—'आः किमेवमुच्यते, महदन्तरम्। यतः कर्पूरद्वीपः स्वर्ग एव, राजहंसश्च द्वितीयः स्वर्गपतिः, कथं वर्णयितुं शक्यते। अत्र मरुस्थले पतिता यूयं किं कुरुथ, अस्मद्देशे गम्यताम्।' ततोऽस्मद्वचनमाकर्ण्य सर्व पक्षिणः सकोपा बभूवुः। तथा चोक्तम्—

किम्=कथम्। एवम्=अनेन प्रकारेण। उच्यते=कथ्यते। महदन्तरम्=महद्वैभिन्न्यम्। द्वितीयः=अन्यः। स्वर्गपतिः = इन्द्रः। कथं=केन प्रकारेण। वर्णयितुम्=कथयितुम्। शक्यते=पार्यते। अत्र मरुस्थले=अस्मिन् बालुकामये प्रान्ते, नीरसे देशे इत्यर्थः। सकोपाः=सक्रोधाः।

मैंने कहा-क्यों ऐसा कह रहे हो। बहुत अन्तर है। कर्पूर देश स्वर्ग है और राजहंस दूसरे इन्द्र हैं। इस मरुभूमि में पड़े हुए तुम लोग क्या कर रहे हो। हमारे देश में चलो।' तब मेरी बातें सुनकर सभी क्रुद्ध हो गए। जैसा कि कहा भी है—

'पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्द्धनम्।
उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये' ॥ ४॥

अन्वयः—भुजङ्गानाम् पयःपानम् केवलम् विषवर्धनम् (एव यथा भवति तथैव) मूर्खाणाम् उपदेशः हि प्रकोपाय (एव भवति) न शान्तये (भवति) ॥ ४॥

भुजङ्गानाम्=सर्पाणाम्। पयःपानम्=दुग्धपानम्। विषवर्धनम्=विषवृद्धेः कारणम्। मूर्खाणाम्=अज्ञानाम्। उपदेशः=शिक्षा। प्रकोपाय=क्रोधोत्पत्त्यै ॥४॥

जैसे साँपों को दूध पिलाना केवल उनके विष को बढ़ाना ही है, उसी प्रकार मूर्खों को उपदेश देना क्रोध को बढ़ाना है न कि शान्त करना ॥ ४॥

अन्यच्च—'विद्वानेवोपदेष्टव्यो, नाविद्वांस्तु कदाचन।
वानरानुपदिश्याऽथ स्थानभ्रष्टा ययुः खगाः ॥ ५॥

राजोवाच-'कथमेतत्' ? दीर्घमुखः कथयति—

अन्वयः—विद्वान् एव उपदेष्टव्यः, अविद्वान् तु कदाचन न (उपदेष्टव्यः)। अथ खगाः वानरान् उपदिश्य स्थानभ्रष्टाः ययुः ॥ ५ ॥

विद्वान्=प्राज्ञः। एव। उपदेष्टव्यः=उपदेशयोग्यः। अविद्वान्=अज्ञः। तु। कदाचन=कदापि। न। खगाः=पक्षिणः। वानरान्=कपीन्। उपदिश्य=उपदेशं कृत्वा। स्थानभ्रष्टाः=गृहरहिताः। ययुः=जग्मुः ॥ ५ ॥

और भी समझदार को ही उपदेश देना चाहिए, मूर्ख को तो कभी उपदेश नहीं देना चाहिए। पक्षियों ने वानरों को उपदेश दिया जिससे उन्हें बेघरबार का होना पड़ा ॥ ५ ॥

राजा ने कहा—'यह कैसे ?' दीर्घमुखने कहा—

कथा १

अस्ति नर्मदातीरे पर्वतोपत्यकायां विशालः शाल्मलीतरुः। तत्र निर्मितनीडक्रोडे पक्षिणः सुखेन निवसन्ति। अथैकदा वर्षासु नीलपटैरिव जलधरपटलैरावृते नभस्तले, धारासारैर्महती वृष्टिर्बभूव। ततो वानरांश्च तरुतलेऽवस्थिताञ्छीताकुलान्कम्पमानानवलोक्य, कृपया पक्षिभिरुक्तम्—'भो भो वानराः ! शृणुत—

नर्मदातीरे=नर्मदायास्तटे। पर्वतोपत्यकायाम् = अचलासन्नभूम्याम् (तराई में)। विशालः = महान्। शाल्मलीवृक्षः = शाल्मलीतरुः (सेमल का पेड़)। निर्मितनीडक्रोडे=रचितकुलायोत्संगे (घोंसले में)। सुखेन=आनन्देन। निवसन्ति=निवासं कुर्वन्ति। एकदा=एकस्मिन् काले। वर्षासु=वर्षाकाले 'प्रावृषि'। जलधरपटलैः=मेघवृन्दैः। आवृते=आच्छादिते। नभस्तले=आकाशतले। धारासारैः=सवेगवातवर्षैः। महती वृष्टिः=अत्यन्तजलपातः। तरुतले=वृक्षतले। अवस्थितान्=स्थितान्। शीतेन=शैत्येन। आकुलान्=व्यग्रान्। कम्पमानान्=कम्पनं कुर्वाणान्। वानरान्=मर्कटान्। अवलोक्य=दृष्ट्वा। कृपया = करुणया। पक्षिभिः = खगैः। उक्तम्=कथितम्।

नर्मदा के किनारे पहाड़ की तलहटी में सेमल का एक बहुत बड़ा पेड़ है। वहाँ घोंसले बनाकर बहुत से पक्षी सुख से रहा करते थे। एक बार वर्षा ऋतु में आकाश बादलों से ढँक गया और मूसलाधार वर्षा होने लगी तब वृक्ष के नीचे बैठे हुए बन्दरों को ठंढ से व्याकुल एवं काँपते हुए देखकर पक्षियों को दया आगई। उन्होंने कहा—अरे बन्दरों सुनो—

'अस्माभिर्निर्मिता नीडाश्चञ्चुमात्राहृतैस्तृणैः।
हस्तपादादिसंयुक्ता यूयं किमवसीदथ ?' ॥ ६ ॥

अन्वयः—चञ्चुमात्राहृतैस्तृणैः अस्माभिः नीडाः निर्मिताः, हस्तपादादिसंयुक्ताः (सन्तः) यूयम् किम् अवसीदथ ॥ ६ ॥

चंचुमात्रेणैव=केवलं चञ्च्वा एव । आहृतैः = आनीतैः तृणैः । अस्माभिः=खगैः । नीडाः=कुलायाः । निर्मिताः = रचिताः । हस्तपादादिसंयुक्ताः = करचरणादियुताः=करचरणादियुक्ताः समर्था इत्यर्थः । सन्तः । यूयं=भवन्तः । किम्=कस्मात् । अवसीदथ = कष्टम् प्राप्नुथ ॥ ६ ॥

'हम लोगों ने केवल चोंच से तिनकों को ला-लाकर घोंसले बना लिए और तुम लोग हाथ-पाँव रहते हुए भी क्यों दुख झेल रहे हो ?' ॥ ६ ॥

तच्छ्रुत्वा वानरैर्जाताऽमर्षैरालोचितम्—'अहो ! निर्वातनीडगर्भावस्थिताः सुखिनः पक्षिणोऽस्मान्निन्दन्ति'। तद् भवतु तावद् वृष्टेरुपशमः'। अनन्तरं शान्ते पानीयवर्षे, तैर्वानरैर्वृक्षमारुह्य, सर्वे नीडा भग्नाः, तेषामण्डानि चाऽधः पातितानि। अतोऽहं ब्रवीमि 'विद्वानेवोपदेष्टव्यः' इत्यादि ॥

राजोवाच-'ततस्तैः पक्षिभिः किं कृतम् ?'।

बकः कथयति—ततस्तैः पक्षिभिः कोपादुक्तं—'केनासौ राजहंसो राजा कृतः'? । ततो मयोपजातकोपेनोक्तम्—'अयं युष्मदीयो मयूरः केन राजा कृतः?' एतच्छ्रुत्वा ते पक्षिणो मां हन्तुमुद्यताः। ततो मयापि स्वविक्रमो दर्शितः। यतः—

तच्छ्रुत्वा=तदाकर्ण्य । जातामर्षैः=उत्पन्नकोपैः । आलोचितम्=विचारितम् । निर्वातनीडस्य=वायुरहितकुलायस्य । गर्भे = मध्ये, अवस्थिताः = स्थिताः । निन्दन्ति=निन्दां कुर्वन्ति । वृष्टेः उपशमः=वृष्टिनिवृत्तिः । अनन्तरम्=पश्चात् । शान्ते=निवृत्ते । पानीयवर्षे=जलवृष्टौ । वृक्षमारुह्य=वृक्षोपरि आरोहणं कृत्वा । भग्नाः=नष्टाः । अधः पातितानि=भूमौ क्षिप्तानि ।

किं कृतम्=किमाचरितम् । कोपात्=क्रोधात् । उपजातकोपेन=सञ्जातक्रोधेन । युष्मदीयः = युष्माकम् । हन्तुमुद्यताः = मारयितुम् उद्यताः । स्वविक्रमः = निजपराक्रमः । दर्शितः=प्रदर्शितः ।

यह सुनकर क्रुद्ध वानरों ने मन ही मन विचार किया 'वायुरहित घोसले में सुख से बैठे हुए ये पक्षी हमलोगों की निन्दा कर रहे हैं । अच्छा ! पानी बन्द होने दो !' इसके बाद पानी रुकते ही वे सभी बन्दर वृक्ष पर चढ़ गए उन्होंने घोसलों को तोड़ दिया और अंडों को नीचे गिरा दिया । इसीलिए मैं कह रहा हूँ—'विद्वान् को ही उपदेश देना चाहिए' इत्यादि ।

राजाने कहा—'तब उन्होंने क्या किया।' बगुले ने कहा—तब उन क्रुद्ध पक्षियों ने कहा—किसने राजहंस को राजा बनाया है ? तब मैंने भी क्रुद्ध होकर कहा—तुम्हारे मयूर को किसने राजा बनाया है। यह सुनकर वे सब मुझे मारने के लिए तैयार हो गए तब मैंने भी अपना बल दिखाया। क्योंकि—

'अन्यदा भूषणं पुंसः क्षमा लज्जेव योषितः।
पराक्रमः परिभवे, वैयात्यं सुरतेष्विव' ॥ ७ ॥

अन्वयः—अन्यदा योषितः (भूषणम्) लज्जा इव, पुंसः भूषणम् क्षमा (अस्ति, तु) सुरतेषु वैयात्यम् इव परिभवे पराक्रमः (भूषणम् अस्ति) ॥ ७ ॥

अन्यदा = पराभवातिरिक्तकाले, सुरतातिरिक्तसमये। योषितः=नार्याः। लज्जा इव=त्रपा इव। पुंसः=पुरुषस्य। भूषणम्=अलङ्कारः। क्षमा=क्षान्तिः। सुरतेषु=रतिक्रीडायाम्। वैयात्यम्=धृष्टता इव। परिभवे=पराजयकाले। पराक्रमः=बलप्रदर्शनम् एव ॥ ७ ॥

अन्य समय में जैसे लज्जा स्त्रियों का आभूषण है उसी प्रकार क्षमा पुरुषों का आभूषण है। किन्तु रतिकाल मे धृष्टता जैसे स्त्रियों की शोभा है उसी प्रकार अपमान के समय पराक्रम पुरुषों की शोभा है ॥ ७ ॥

राजा विहस्याऽऽह—

'आत्मनश्च परेषां च यः समीक्ष्य बलाऽबलम्।
अन्तरं नैव जानाति, स तिरस्क्रियतेऽरिभिः' ॥ ८ ॥

अन्वयः—आत्मनः परेषाम् च बलाबलम् समीक्ष्य यः अन्तरम् नैव जानाति सः अरिभिः तिरस्क्रियते ॥ ८ ॥

आत्मनः=स्वस्य च। परेषाम् च=शत्रूणाम् च। बलाबलम् = सामर्थ्यमसामर्थ्यञ्च। समीक्ष्य = दृष्ट्वा यः। अन्तरम् = प्रभेदम्। नैव, जानाति = वेत्ति। अरिभिः=शत्रुभिः। सः, तिरस्क्रियते=पराजितो भवति ॥ ८ ॥

राजा ने हँसकर कहा—

अपने और शत्रु के बलाबल को देखकर भी जो उनके अन्तर को नहीं समझता वह शत्रुओं से अपमानित होता है ॥ ८ ॥

'सुचिरं हि चरन्नित्यं क्षेत्रे सस्यमबुद्धिमान्।
द्वीपिचर्मपरिच्छन्नो, वाग्दोषाद् गर्दभो हतः' ॥ ९ ॥

बकः पृच्छति—कथमेतत् ? राजा कथयति—

अन्वयः—क्षेत्रे सुचिरम् नित्यम् चरन् हि द्वीपिचर्मपरिच्छन्नः अबुद्धिमान् गर्दभः वाग्दोषात् हतः ॥ ९ ॥

क्षेत्रे=सस्योत्पत्तिस्थले। सुचिरम्=बहुकालपर्यन्तम्। नित्यञ्च=प्रतिदिनम्। चरन्=तृणं भक्षयन्। हि द्वीपिचर्मपरिच्छन्नः=व्याघ्रचर्माच्छादितः। अबुद्धिमान्=मूर्खः! गर्दभः=खरः। वाग्दोषात्=शब्ददोषात्। हतः=मृतः॥ ९॥

और भी—बहुत दिनों तक नित्य ही खेत में चरने वाला व्याघ्र-चर्म से ढँका हुआ गदहा केवल अपने बोलने के दोष से ही मारा गया॥ ९॥

बगुले ने पूछा—'यह कैसे।' राजाने कहा—

कथा २

अस्ति हस्तिनापुरे विलासो नाम रजकः। तस्य गर्दभोऽतिभार-वहनाद् दुर्बलो मुमूर्षुरिवाऽभवत्। ततस्तेन रजकेनासौ व्याघ्र-चर्मणा प्रच्छाद्यारण्यकसमीपे सस्यक्षेत्रे विमुक्तः। ततो दूरात्तम-वलोक्य व्याघ्रबुद्ध्या क्षेत्रपतयः सत्वरं पलायन्ते।

हस्तिनापुरे = तन्नामनगरे। विलासो नाम = विलासाख्यः। रजकः = वस्त्र-निर्णजकः। अस्ति=विद्यते। तस्य गर्दभः=तस्य खरः। अतिभारवहनात्=अत्यन्त-भारधारणात्। दुर्बलः=शरीरतः क्षीणः। मुमूर्षुः इव = मृतकसदृशः। असौ=गर्दभः। व्याघ्रचर्मणा व्याघ्रत्वचा। प्रच्छाद्य=अवगुण्ठ्य। अरण्यसमीपे = वनस्य निकटे। सस्यक्षेत्रे=धान्यक्षेत्रे। नियुक्तः=नियोजितः। अवलोक्य=दृष्ट्वा। व्याघ्र-बुद्ध्या=व्याघ्रमत्या, व्याघ्रोऽयम् इति मत्वा इत्यर्थः। क्षेत्रपतयः=क्षेत्रस्वामिनः। सत्वरम्=शीघ्रम्। पलायन्ते=पलायनं चक्रुः।

हस्तिनापुर में विलास नाम का एक धोबी था। उसका गदहा बोझा से दुबला और मरने-मरने को हो गया। तब धोबी ने उसे बाघ के चमड़े से ढँक कर जंगल के पास धान के खेत में छोड़ दिया। खेत के रक्षकों ने उसे दूर ही से देखकर बाघ समझ लिया और वे वहाँ से शीघ्र ही भाग खड़े हुए।

अथैकदा केनापि सस्यरक्षकेण धूसरकम्बलकृततनुत्राणेन धनुष्काण्डं सज्जीकृत्यानतकायेनैकान्ते स्थितम्। तं च दूराद् दृष्ट्वा गर्दभः पुष्टाङ्गो, यथेष्टसस्यभक्षणजातबलो, 'गर्दभोऽय'मिति मत्वोच्चैः शब्दं कुर्वाणस्तदभिमुखं धावितः। ततस्तेन सस्यरक्षकेण चीत्कारशब्दाद् गर्दभोऽय'मिति निश्चित्य, लीलयैव व्यापादितः। अतोऽहं ब्रवीमि—'सुचिरं हि चरन्नित्यम्'—इत्यादि॥

सस्यरक्षकेण=धान्यरक्षकेण क्षेत्रस्वामिना। धूसरं धूम्रवर्णं यत् कम्बलम् तेन कृतम् विहितम् तनुत्राणम् देहावगुण्ठनं येन तेन। धनुःकाण्डम् = चाप-

दण्डम्। सज्जीकृत्य=ज्यायुक्तं कृत्वा। आनतकायेन=संकुचितशरीरेण। एकान्ते=रहसि। स्थितम्=अधिष्ठितम्। तं च=क्षेत्ररक्षकम् च। पुष्टांग:=परिपुष्टदेहः। यथेष्टसस्यभक्षणात्=यथेच्छधान्यचर्वणात्। उपजातबल:=उत्पन्नपराक्रमः। मत्वा=परिज्ञाय। तदभिमुखम्=क्षेत्ररक्षकं प्रति। धावितः=वेगेन चलितः। निश्चित्य=निश्चयम् कृत्वा। लीलया एव=अप्रयासेनैव, सारल्येन इत्यर्थः। व्यापादितः=मृत्युं प्रापितः।

एक दिन खेत का एक रखवाला मटमैले कम्बल को ओढ़कर और धनुष पर डोरी चढ़ाकर एकान्त में सिकुड़ कर बैठ गया उसे दूर ही से देखकर गदहे ने उसे भी गदहा समझ लिया। और वह इच्छानुसार धान चरने से बली और मोटा ताजा गदहा उसकी ओर चिल्लाते हुए दौड़ पड़ा। खेत के रखवाले उसके शब्द से उसे गदहा जानकर बड़ी आसानी से मार डाले। इसीलिए मैं कह रहा हूँ–'बहुत दिनों तक नित्य चरता हुआ' आदि।

दीर्घमुखो ब्रूते—ततः पश्चात् तैः पक्षिभिरुक्तम्–'अरे पाप दुष्ट-बक! अस्माकं भूमौ चरन्नस्माकं स्वामिनमधिक्षिपसि!। तन्न क्षन्तव्यमिदानीम्'। इत्युक्त्वा सर्वे मां चञ्चुभिर्हत्वा, सकोपा ऊचुः—'पश्य रे मूर्ख! स हंसस्तव राजा सर्वथा मृदुः। तस्य राज्याधिकारो नास्ति। यत एकान्तमृदुः करतलस्थमप्यर्थं रक्षितुमक्षमः। स कथं पृथिवीं शास्ति? राज्यं वा तस्य किम्?। त्वं च कूपमण्डूकः, तेन तदाश्रयमुपदिशसि'। शृणु—

पाप=पापात्मन्। अस्माकम् भूमौ=पृथिव्याम्। चरन्=विचरन्। स्वामिनम्=राजानम्। अधिक्षिपसि=निन्दसि। इदानीम्=अस्मिन् काले। चञ्चुभिः=तुण्डैः। हत्वा=प्रहारं कृत्वा। सर्वथा=सर्वप्रकारेण। मृदुः=कोमलः, पराक्रमहीन इत्यर्थः। तस्य=हंसस्य। एकान्तमृदुः=अत्यन्तकोमलः, तेजोहीन इत्यर्थः। करतलस्थम्=हस्तगतम्। अर्थम्=धनम्। रक्षितुमक्षमः=रक्षणे अशक्तः। शास्ति=रक्षति। कूपमण्डूकः=कूपमण्डूकतुल्यः, स्वदेशातिरिक्तान्यदेशज्ञानरहितः। तदाश्रयम्=राजहंसस्य आश्रयणम्।

दीर्घमुख ने कहा—इसके बाद उन पक्षियों ने मुझसे कहा कि 'अरे पापी दुष्ट बगुले तुम हमारी ही भूमि में चरते हो और हमारे राजा की निन्दा करते हो। इसलिए अब हमलोग तुम्हें क्षमा नहीं करेंगे।' ऐसा कहकर सभी मुझे चोंचों से मारने लगे और कहने लगे कि अरे दुष्ट तुम्हारा वह हंस अत्यन्त निर्बल है इसलिए वह राज्य का अधिकार नहीं पा सकता, क्योंकि अत्यन्त निर्बल व्यक्ति

हाथ में आई हुई वस्तु की भी रक्षा नहीं कर सकता फिर वह पृथ्वी का शासन कैसे करेगा? और उसका राज्य ही कैसा? तुम कुएँ के मेढक की तरह अपने देश को छोड़कर दूसरे देशों के बारे में कुछ जानते ही नहीं हो। इसीलिए अपने राजा के आश्रय में रहने का उपदेश दे रहे हो। सुनो—

'सेवितव्यो महावृक्षः फलच्छायासमन्वितः।
यदि दैवात्फलं नास्ति, च्छाया केन निवार्यते ?' ॥ १० ॥

अन्वयः—फलच्छायासमन्वितः महावृक्षः सेवितव्यः यदि दैवात् फलम् नास्ति (तर्हि) छाया केन निवार्यते ॥ १० ॥

फलच्छायासमन्वितः=फलच्छायायुक्तः। महावृक्षः = महातरुः। सेवितव्यः= सेव्यः। दैवात्=भाग्यात्। फलम् नास्ति = तस्मिन् फलागमो न भवेत्। छाया= अनातपः, केन निवार्यते = निषिध्यते ॥ १० ॥

'फल और छाया से युक्त बड़े वृक्ष की ही सेवा करनी चाहिए। यदि दैवात् उससे फल नहीं मिला तो छाया कौन रोक सकता है?' ॥ १० ॥

अन्यच्च—'हीनसेवा न कर्त्तव्या, कर्त्तव्यो महदाश्रयः।
पयोऽपि शौण्डिकीहस्ते 'वारुणी'त्यभिधीयते' ॥ ११ ॥

अन्वयः—हीनसेवा न कर्त्तव्या, महदाश्रयः कर्तव्यः। शौण्डिकीहस्ते पयः अपि वारुणी इति अभिधीयते ॥ ११ ॥

हीनसेवा=तुच्छस्य सेवा। न कर्तव्या = न करणीया। महदाश्रयः = श्रीमतः सेवा। शौण्डिकीहस्ते=कल्यपालिकाकरे। पयःअपि=जलमपि। वारुणी इति=मद्यम् इति। अभिधीयते = कथ्यते ॥ ११ ॥

और भी—'नीच की सेवा नहीं करनी चाहिए, बड़ों का ही सहारा लेना चाहिए। क्योंकि कलवारिन के हाथ में जल भी शराब ही समझा जाता है' ॥

अन्यच्च—'महानप्यल्पतां याति निर्गुणे गुणविस्तरः।
अधाराधेयभावेन गजेन्द्र इव दर्पणे' ॥ १२ ॥

अन्वयः—निर्गुणे (स्थितः) महान् गुणविस्तरः अपि आधाराधेयभावेन दर्पणे गजेन्द्रः इव अल्पताम् याति ॥ १२ ॥

निर्गुणे = गुणहीने, विद्यमानः। महान् अपि = अत्युत्कृष्टोपि। गुणविस्तरः= गुणप्रसरः। आधाराधेयभावेन=आश्रयाश्रयिभावेन, आश्रयस्य तुच्छतया। अल्पताम् = विस्तारशून्यताम्, सङ्कोचमित्यर्थः। याति = गच्छति। दर्पणे = आदर्शे गजेन्द्रः इव = करिराजतुल्यः ॥ १२ ॥

और भी—'निर्गुणी में रहने वाला महान् गुण भी आधार के प्रभाव से तुच्छ बन जाता है जैसे गजराज भी शीशे में उसके प्रभाव से छोटा दिखाई पड़ता है' ॥

किन्तु—'अजा सिंहप्रसादेन वने चरति निर्भयम् ।
राममासाद्य लङ्कायां लेभे राज्यं विभीषणः' ॥ १३ ॥

अन्वयः—सिंहप्रसादेन अजा वने निर्भयम् चरति । विभीषणः रामम् आसाद्य लङ्कायाम् राज्यम् लेभे ॥ १३ ॥

सिंहप्रसादेन = सिंहस्य कृपया । अजा = छागी । वने = अरण्ये । निर्भयम्= निःशंकम् । चरति=विचरति । विभीषणः=रावणस्य अनुजः । रामं=सीतापतिम् । आसाद्य=शरणं प्राप्य । लङ्कायां=तन्नामकपुर्याम् । राज्यं = राजपदम् । लेभे= प्राप्तवान् ॥ १३ ॥

किंतु—'सिंह की कृपा से बकरी भी जंगल में निर्भय होकर चरती है। विभीषण ने राम का आश्रय लेकर ही लंका में राज्य प्राप्त किया था' ॥ १३ ॥

विशेषतश्च—'व्यपदेशेऽपि सिद्धिः स्यादतिशक्ते नराधिपे ।
शशिनो व्यपदेशेन शशकाः सुखमासते' ॥ १४ ॥

मयोक्तं— कथमेतत् ? पक्षिणः कथयन्ति—

अन्वयः—अतिशक्ते नराधिपे व्यपदेशे अपि सिद्धिः स्यात् । शशकाः शशिनः व्यपदेशेन सुखमासते ॥ १४ ॥

अतिशक्ते = बलशालिनि । नराधिपे = नृपे सति । व्यपदेशेऽपि=तस्य नाम-ग्रहणे अपि । सिद्धिः=कार्यपूर्तिः । शशकाः=तन्नामकाः जन्तुविशेषाः (खरगोश) । शशिनः = चन्द्रस्य । व्यपदेशेन=व्याजेन नाम्ना । सुखं = सानन्दम् । आसते = निवसन्ति ॥ १४ ॥

प्रायः—'कभी-कभी अत्यन्त शक्तिशाली राजा के नाम से ही कार्य सिद्ध हो जाता है। जैसे खरगोशों ने चंद्रमा का नाम लेकर सुख प्राप्त किया था' ॥१४॥

कथा ३

कदाचिद्वर्षास्वपि वृष्टेरभावात्तृषार्त्तो गजयूथो यूथपतिमाह—'नाथ! कोऽभ्युपायोऽस्माकं जीवनाय ? नाऽस्ति क्षुद्रजन्तूनाम् (अपि) निमज्जनस्थानम् । वयं च निमज्जनस्थानाभावान्मृताः. अन्धा इव किं कुर्मः ?, क्व यामः ?' ततो हस्तिराजो नातिदूरं गत्वा निर्मलं ह्रदं दर्शितवान् ।

कदाचित्=कस्मिंश्चित् काले । वर्षास्वपि=प्रावृषि । वृष्टेरभावात्=जलवर्षणाभावात् । तृषार्त्तः = पिपासाकुलः । गजयूथः = हस्तिसमूहः । यूथपतिम् = गजनायकम् । आह=उक्तवान् । नाथ=स्वामिन् । अभ्युपायः = युक्तिः । जीवनाय=प्राणधारणाय । क्षुद्रजन्तूनाम्=स्वल्पानाम् जीवानाम् । निमज्जनस्थानम्=स्नानयोग्यः सरोवरः किं पुनः अस्मत्सदृशानां विशालकायानाम् इति शेषः । निमज्जनस्थानाभावात्=सरोवरं विना । मृताः=मृततुल्याः । हस्तिराजः = गजाधिपः । नातिदूरं=समीपम् । निर्मलम्=अतिस्वच्छम् । ह्रदम्=सरोवरम् ।

एक बार वर्षा ऋतु में भी पानी न बरसने के कारण प्यास से व्याकुल हाथियों के झुण्ड ने अपने स्वामी से कहा—'स्वामी ! हम लोगों के जीवन का कोई उपाय है ? छोटे-छोटे जन्तुओं के स्नान करने योग्य भी कोई जगह नहीं है। हमलोग तो स्नान करने की जगह के बिना मृतक तुल्य हो गए हैं। अब हम अन्धों की तरह क्या करें ? कहाँ जायँ ?' तब हाथियों के राजा ने थोड़ी दूर जाकर उन्हें एक निर्मल तालाब दिखाया ।

ततो दिनेषु गच्छत्सु तत्तीरावस्थिताः क्षुद्रशशका गजपादाहतिभिश्चूर्णिताः । अनन्तरं शिलीमुखो नाम शशकश्चिन्तयामास—'अनेन गजयूथेन पिपासाऽऽकुलितेन प्रत्यहमत्रागन्तव्यम्, ततो विनष्टमस्मत्कुलम् ।'

ततो विजयो नाम वृद्धशशकोवदत्—'मा विषीदत, मयात्र प्रतीकारः कर्त्तव्यः ।' ततोसौ प्रतिज्ञाय चलितः । गच्छता च तेनाऽऽलोचितम्—'कथं मया गजयूथनाथसमीपे स्थिता वक्तव्यम्' ? ।

दिनेषु गच्छत्सु=कतिपयदिवसातिक्रान्तेषु । तत्तीरावस्थिताः=सरोवरतटनिवासिनः । क्षुद्रशशकाः=स्वल्पदेहाः शशकाः । गजपादाहतिभिः = हस्तिचरणताडनैः । चूर्णिताः=नष्टाः । अनन्तरम्=तत्पश्चात् । चिन्तयामास=विचारयामास । पिपासाकुलितेन = तृषार्तेन । प्रत्यहम् = प्रतिदिनम् । कुलम् = वंशः । अवदत्=उक्तवान् । मा विषीदत=विषादं न कुरुत । प्रतीकारः = रक्षाया उपायः । प्रतिज्ञाय=प्रतिज्ञां कृत्वा । चलितः=प्रस्थितः । आलोचितम्=विचारितम् । गजयूथनाथसमीपे=हस्तियूथाधिपनिकटे ।

कुछ समय बाद तालाब के किनारे रहने वाले छोटे खरगोश हाथियों के पैरों से दबकर कुचल गए । इसके पश्चात् शिलीमुख नाम के खरगोश ने विचार

किया—'प्यास से व्याकुल हाथियों का झुण्ड तो यहाँ प्रतिदिन आयेगा। इससे तो हमारा सारा वंश ही नष्ट हो जायगा' तब विजय नाम के एक बूढ़े खरगोश ने कहा—'डरो मत, मैं विपत्ति को दूर करने का उपाय करूंगा।' तब वह प्रतिज्ञा करके चला। चलते-चलते उसने विचार किया कि मैं हाथियों के झुण्ड के स्वामी के पास खड़ा होकर कैसे बातचीत करूंगा ? क्योंकि—

यतः—'स्पृशन्नपि गजो हन्ति, जिघ्रन्नपि भुजङ्गमः।
पालयन्नपि भूपालः, प्रहसन्नपि दुर्जनः' ॥ १५ ॥

अन्वयः—गजः स्पृशन् अपि हन्ति, भुजङ्गमः जिघ्रन् अपि (हन्ति) भूपालः पालयन् अपि (हन्ति) दुर्जनः प्रहसन् अपि (हन्ति) ॥ १५ ॥

गजः=करी। स्पृशन् अपि = स्पर्शमात्रेणापि। हन्ति = प्राणान्तं करोति। भुजङ्गमः=सर्पः। जिघ्रन् अपि=आघ्राणं कुर्वन्नपि (सूंघते ही)। भूपालः=नृपतिः। पालयन् अपि=पोषयन् अपि। दुर्जनः—दुष्टः। प्रहसन् अपि = हसन् अपि। स्वप्रसन्नतां प्रकटीकुर्वन् अपि (हन्ति) ॥ १५ ॥

छूने मात्र से हाथी, सूंघने मात्र से सर्प, पालन करते हुए भी राजा, और हँसते हुए भी दुर्जन प्राणों का घातक बन जाता है ॥ १५ ॥

अतोहं पर्वतशिखरमारुह्य यूथनाथं संवादयामि।' तथानुष्ठिते सति यूथनाथ उवाच—'कस्त्वम् ? कुतः समायातः ?'।

स ब्रूते—'शशकोहम्, भगवता चन्द्रेण भवदन्तिकं प्रेषितः।' यूथपतिराह—'कार्यमुच्यताम्'। विजयो ब्रूते—

आरुह्य=आरोहणं कृत्वा। संवादयामि=वार्तालापं करोमि। तथाऽनुष्ठिते= पूर्वोक्तप्रकारेण कृते सति। समायातः=आगतोऽसि। भवदन्तिकम् = त्वत्पार्श्वम्, विजयः = वृद्धशशकः।

इसलिए मैं पहाड़ की चोटी पर चढ़कर हाथियों के स्वामी से बातचीत करूँगा।, ऐसा करने के बाद गजस्वामी ने कहा—'तुम कौन हो ? कहाँ से आए हो।' उसने कहा—'मैं खरगोश हूँ। भगवान चन्द्रदेव ने मुझे आप के पास भेजा है।' गजपति ने कहा-'बताओ, किस काम के लिए भेजा है।' तब विजय ने कहा—

'उद्यतेष्वपि शस्त्रेषु दूतो वदति नान्यथा।
सदैवावध्यभावेन यथार्थस्य हि वाचकः' ॥ १६ ॥

अन्वयः—शस्त्रेषु उद्यतेषु अपि दूतः अन्यथा न वदति। हि अवध्यभावेन (निर्भयः सः) सदैव यथार्थस्य वाचकः (भवति) ॥ १६ ॥

शस्त्रेषु उद्यतेषु अपि=शस्त्रप्रहारकरणाय तत्परेषु अपि, प्राणभयेनापि इत्यर्थः। दूतः=वार्त्ताहरः। अन्यथा=असत्यम्। न वदति = न कथयति। हि = निश्चयेन। अवध्यभावेन=अहं तु अवध्यः इत्यनेन मनसः निश्चयेन। यथार्थस्य=सत्यस्य। वाचकः = वक्ता ॥ १६ ॥

'दूत अपने ऊपर हथियारों का प्रहार करने के लिए तैयार होने पर भी झूठ नहीं बोलता, क्योंकि अवध्य होने के कारण वह सदा सत्य ही बोलने वाला होता है' ॥ १६ ॥

तदहं तदाज्ञया ब्रवीमि, शृणु—यदेते चन्द्रसरोरक्षकाः शशकास्त्वया निःसारितास्तदनुचितं कृतम्। ते शशकाश्चिरमस्माकं रक्षिताः। अत एव मे 'शशाङ्क' इति प्रसिद्धिः।'

एवमुक्तवति दूते यूथपतिर्भयादिदमाह—'प्रणिधे! इदमज्ञानतः कृतम्, पुनर्न तत्र गमिष्यामि'।

दूत उवाच—'यद्येवं तदत्र सरसि कोपात्कम्पमानं भगवन्तं शशाङ्कं प्रणम्य, प्रसाद्य च गच्छ।'

ततस्तेन रात्रौ यूथपतिं नीत्वा, तत्र जले चञ्चलं चन्द्रबिम्बं दर्शयित्वा, स यूथपतिः प्रणामं कारितः।

उक्तञ्च तेन—'देव! अज्ञानादनेनापराधः कृतः ततः क्षम्यताम्, नैवं वारान्तरं विधास्यते।' इत्युक्त्वा प्रस्थापितः। अतो वयं ब्रूमः—'व्यपदेशेऽपि सिद्धिः स्यात्' इति ॥

तदाज्ञया=स्वामिनः चन्द्रस्यादेशेन। ब्रवीमि = कथयामि। चन्द्रसरोरक्षकाः=चन्द्रसरोवरस्य रक्षायाम् नियुक्ताः। निःसारिताः=निष्कासिताः। अनुचितं कृतम्=अन्याय्यं विहितम्। चिरम् = बहुकालात्। रक्षिताः=पालिताः। शशाङ्कः=शशलाञ्छनः। एवमुक्तवति=अनेन प्रकारेण कथितवति। आह = उक्तवान्। प्रणिधे=दूत!। अज्ञानतः=ज्ञानाभावात्। कोपात्=क्रोधात्। कम्पमानम्=वेपमानम्। शशांकम्=चन्द्रम्। प्रणम्य = प्रणामं कृत्वा। प्रसाद्य=प्रसन्नं कृत्वा। चन्द्रबिम्बम् = शशिमण्डलम्। तेन = शशकेन। क्षम्यताम् = क्षमा क्रियताम्। वारान्तरम्=पुनरपि। विधास्यते=करिष्यते।

इसलिए मैं उनकी आज्ञा से कह रहा हूँ। सुनो—'यह जो तुमने चन्द्रसरोवर के रक्षक खरगोशों को निकाल दिया है वह बड़ा ही अनुचित किया है। क्योंकि वे खरगोश बहुत दिनों से मेरे द्वारा रक्षित हैं, इसीलिए मैं शशांक (खरगोश हैं जिसकी गोद में) नाम से प्रसिद्ध हूँ।' दूत के ऐसा कहने पर गजपति ने भयभीत होकर कहा—'क्षमा करो। मैंने यह काम अनजाने ही किया है। फिर

वहाँ नहीं जाऊँगा।' दूत ने कहा—'यदि ऐसी बात है तो इस तालाब में क्रोध से काँपते हुए भगवान् चन्द्रदेव को प्रणाम करके और प्रसन्न करके चले जाओ।'

तब दूत ने गजपति को रात में लेजाकर जल में चंद्रमा की छाया दिखाई और उसे प्रणाम कराया। उसने कहा—'देव, अनजान में ही इन्होंने यह अपराध किया है। इसलिए क्षमा करें। अब आगे ऐसा नहीं करेंगे।' ऐसा कहकर उसे भेज दिया। इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि 'बड़ों के बहाने से सिद्धि हो जाती है' इत्यादि।

ततो मयोक्तम्—'स एवाऽस्मत्प्रभू राजहंसो महाप्रतापोतिसमर्थः। त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं तत्र युज्यते, किं पुना राज्यम्—' इति। तदाहं तैः पक्षिभिः—'दुष्ट! कथमस्मद्भूमौ चरसि'—इत्यभिधाय, 'राज्ञश्चित्रवर्णस्य समीपं नीतः। ततो राज्ञः पुरो मां प्रदर्श्य तैः प्रणम्योक्तम्—देव! अवधीयताम्, एष दुष्टोस्मद्देशे चरन्नपि देवपादानधिक्षिपति'!।

राजाह—'कोयम्?, कुतः समायातः।' ते ऊचुः—'हिरण्यगर्भनाम्नो राजहंसस्यानुचरः कर्पूरद्वीपादागतः।'

अथाहं गृध्रेण मन्त्रिणा पृष्टः—'कस्तत्र मुख्यो मन्त्रीति?'। मयोक्तम्—'सर्वशास्त्रार्थपारगः सर्वज्ञो नाम चक्रवाकः।'

गृध्रो ब्रूते—'युज्यते। स्वदेशजोसौ'। यतः—

मया=बकेन। महाप्रतापः=अमिततेजाः। अतिसमर्थः=महाशक्तः। त्रैलोक्यस्य=त्रिलोक्याः। अपि प्रभुत्वम्=स्वामित्वम्। युज्यते=योग्यमस्ति। इत्यभिधाय=इत्युक्त्वा। राज्ञः पुरः=नृपस्य संमुखे। प्रदर्श्य=उपस्थित कृत्वा। अवधीयताम्=सावधानतया श्रूयताम्। देवपादान्=महाराजान्। अधिक्षिपति=निन्दति। समायातः=समागतः। तत्र=कर्पूरद्वीपे। सर्वशास्त्रपारगः=सर्वशास्त्रकुशलः। स्वदेशजः=स्वदेशोत्पन्नः।

तब मैंने कहा—'वह हमारे स्वामी राजहंस बड़े प्रतापी और शक्तिशाली हैं। उनके लिए तीनों लोकों का प्रभुत्व उचित है फिर पक्षियों के राजा बनने की तो बात ही क्या!' तब उन पक्षियों ने मुझसे कहा कि 'तुम हमारे राज्य में क्यों घूम रहे हो?' ऐसा कहकर वे मुझे पकड़कर राजा चित्रवर्ण के पास ले गए। उन्होंने मुझे राजा के सामने उपस्थित किया और उन्हें प्रणाम करके कहा—राजन्, सावधानी से सुनिए हमारे ही देश में विचरण करता हुआ यह बगुला आप की निन्दा करता है।'

राजा ने कहा—'यह कौन है और कहाँ से आया है!' उन्होंने कहा—'यह हिरण्यगर्भ नाम राजहंस का सेवक है और कपूर द्वीप से आया है।'

तब मंत्री गृद्ध ने मुझसे पूछा—'वहाँ मुख्य मंत्री कौन है ?' मैंने कहा—'सभी शास्त्रों में कुशल सर्वज्ञ नाम का चकवा है।'

गृध्र ने कहा बिल्कुल ठीक। यह राजहंस के देश में ही पैदा हुआ है। क्योंकि—

'स्वदेशजं, कुलाचारविशुद्धमुपधाशुचिम्।
मन्त्रज्ञमव्यसनिनं, व्यभिचारविवर्जितम्॥ १७॥
अधीतव्यवहारार्थं मौलं, ख्यातं, विपश्चितम्।
अर्थस्योत्पादकं चैव, विदध्यान्मन्त्रिणं नृपः'॥ १८॥

अन्वयः—नृपः स्वदेशजम्, कुलाचारविशुद्धम्, उपधाशुचिम्, मन्त्रज्ञम्, अव्यसनिनम्, व्यभिचारवर्जितम्, अधीतव्यवहारार्थम्, मौलम्, ख्यातम्, विपश्चितम्, अर्थस्योत्पादकम् च एव मन्त्रिणम् विदध्यात्॥ १७-१८॥

स्वदेशजम्=स्वदेशोत्पन्नम्। कुलाचारविशुद्धम् = कुलाचारेण=कुलव्यवहारेण, विशुद्धम्, उत्तमकुलोत्पन्नम् इत्यर्थः। उपधाशुचिम् = धर्मपरीक्षासु पवित्रम् 'लोभादिप्रसंगेषु अनुल्लंघितस्वमर्यादम्' इत्यर्थः। मन्त्रज्ञम्=मन्त्रणातत्त्ववेत्तारम्। अव्यसनिनम्=मद्यद्यूतादिव्यापारशून्यम्। व्यभिचारवर्जितम् = परधनदारादिग्रहणे अनभिलाषुकम्। अधीतव्यवहारार्थम्=धर्मशास्त्रोक्ताचारेषु च निष्णातम्। मौलम्=वंशपरम्परागतम्। ख्यातम् = स्वगुणेन लोकवर्गे प्रसिद्धम्। विपश्चितम् = पंडितम्। अर्थस्योत्पादकम् = वित्तोपार्जकम्। विदध्यात्=नियुक्तं कुर्यात्॥ १७-१८॥

अपने ही राष्ट्र में उत्पन्न होने वाले, कुलीन, आचरणों से पवित्र, धार्मिक परीक्षणों में उत्तीर्ण, राजनीति के ज्ञाता, किसी भी प्रकार के व्यसन (मद्यपानादि) से रहित, व्यभिचार से हीन अर्थात् सदाचारी, व्यवहारकुशल, कुलक्रमागत प्रसिद्ध, विद्वान् तथा धनोपार्जन में निपुण व्यक्ति को ही मंत्रीपद पर नियुक्त करना चाहिए॥ १७-१८॥

अत्रान्तरे शुकेनोक्तम्—'देव! कर्पूरद्वीपादयो लघुद्वीपा जम्बूद्वीपान्तर्गता एव, तत्रापि देवपादानामेवाधिपत्यम्। ततो राज्ञाप्युक्तम्—'एवमेव'। यतः—

अत्रान्तरे = अस्मिन्नेव समये। लघुद्वीपाः=क्षुद्रद्वीपाः। जम्बूद्वीपान्तर्गताः= जम्बूद्वीपस्य मध्ये स्थिताः। तत्रापि = लघुद्वीपेऽपि। देवपादानाम्=भवताम्। आधिपत्यम्=स्वामित्वम्।

इसी बीच सुग्गे ने कहा—'राजन्, कर्पूर द्वीप आदि छोटे-छोटे द्वीप जम्बू द्वीप के ही अन्तर्गत है। इसलिए वहाँ भी आप का ही स्वामित्व है।' तब राजा ने कहा—हाँ, ऐसा ही है। क्योंकि—

'राजा, मत्तः, शिशुश्चैव, प्रमदा, धनगर्वितः।
अप्राप्यमपि वाञ्छन्ति, किं पुनर्लभ्यतेऽपि यत्' ॥ १९ ॥

अन्वयः—राजा, मत्तः, शिशुः, च एव प्रमदा, धनगर्वितः, अप्राप्यम् अपि, वाञ्छन्ति, किं पुनः यत् लभ्यते अपि ॥ १९ ॥

राजा=नृपः । मत्तः=उन्मादग्रस्तः । शिशुः = बालकः । प्रमदा = कामोन्मत्ता युवतिः । धनगर्वितः=धनावलेपी । अप्राप्यम् अपि=अलभ्यमपि । वाञ्छन्ति = इच्छन्ति । लभ्यते = प्राप्यते ॥ १९ ॥

राजा, पागल, बालक, मतवाली स्त्री और धन के अभिमानी व्यक्ति अप्राप्य वस्तु की भी अभिलाषा करते रहते हैं, फिर जो वस्तु प्राप्त हो सकती है उसकी तो चर्चा ही क्या है? अर्थात् उसे तो वह अवश्य ही चाहेंगे ॥ १९ ॥

ततो मयोक्तम्—'यदि वचनमात्रेणैवाधिपत्यं सिद्ध्यति, तदा जम्बूद्वीपेऽप्यस्मत्प्रभोर्हिरण्यगर्भस्य स्वाम्यमस्ति।' शुको ब्रूते—'कथमत्र निर्णयः?'। मयोक्तम्—'संग्राम एव।'

राज्ञा विहस्योक्तम्—'स्वस्वामिनं गत्वा सज्जीकुरु।' तदा मयोक्तम्—'स्वदूतोऽपि प्रस्थाप्यताम्'। राजोवाच—'कः प्रयास्यति दौत्येन?। यत एवम्भूतो दूतः कार्यः'—

वचनमात्रेणैव=कथनमात्रेणैव । स्वाम्यम् = आधिपत्यम् । संग्रामः=युद्धम् । सज्जीकुरु = युद्धाय सन्नद्धं कुरु । एवम्भूतः = एवंविधः ।

तब मैंने कहा—'यदि केवल कहने से ही स्वामित्व मिल जाय तो जम्बूद्वीप पर भी हमारे राजा हिरण्यगर्भ का प्रभुत्व है।' सुग्गे ने कहा—'तो इसका निर्णय कैसे हो?' मैंने कहा—'युद्ध द्वारा ही इसका निर्णय होगा।'

राजा ने हँसकर कहा—'तो जाकर अपने राजा को (युद्ध के लिए) तैयार करो।' तब मैंने कहा—'आप अपना दूत भी भेज दें।' राजा ने कहा 'दूत बनकर कौन जाएगा?' क्योंकि दूत इस प्रकार का होना चाहिए।

'भक्तो, गुणी, शुचिर्दक्षः, प्रगल्भोऽव्यसनी क्षमी।
ब्राह्मणः, परमर्मज्ञो, दूतः स्यात्प्रतिभानवान्' ॥ २० ॥

अन्वयः—दूतः, भक्तः, गुणी, शुचिः, दक्षः, प्रगल्भः, अव्यसनी, क्षमी, ब्राह्मणः, परमर्मज्ञः, प्रतिभानवान्, स्यात् ॥ २० ॥

भक्तः=स्वस्वामिनम् प्रति श्रद्धालुः । गुणी=सर्वगुणोपेतः । शुचिः=व्यवहारशुद्धः । दक्षः=विचक्षणः । प्रगल्भः=वाक्पटुः । अव्यसनी=व्यसनरहितः । क्षमी=

क्षमाशीलः, परमर्मज्ञः—अन्यस्य रहस्यविज्ञः। प्रतिभानवान् = प्रतिभाशीलः। दूतः—सन्देशहरः। स्यात्—भवेत् ॥ २० ॥

स्वामी के प्रति श्रद्धालु, गुणवान्, पवित्र, चतुर, निडर, व्यसनरहित, क्षमाशील तथा दूसरों के मर्म को समझने में बुद्धिमान, पटु एवं ब्राह्मण (त्यागी तथा निर्लोभी) व्यक्ति को ही दूत बनाना चाहिए ॥ २० ॥

गृध्रो वदति—सन्त्येव दूता बहवः, किन्तु ब्राह्मण एव कर्त्तव्यः। यतः—

गृद्ध ने कहा—'यों तो दूत बहुत से हैं किन्तु ब्राह्मण को ही दूत बनाना चाहिये। क्योंकि—

'प्रसादं कुरुते पत्युः, सम्पत्तिं नाभिवाञ्छति।
कालिमा कालकूटस्य नापैतीश्वरसङ्गमात्' ॥ २१ ॥

अन्वयः—(ब्राह्मणः) पत्युः प्रसादम् कुरुते (तस्य) सम्पत्तिम् न अभिवाञ्छति (यथा) कालकूटस्य कालिमा ईश्वरसङ्गमात् न अपैति ॥ २१ ॥

पत्युः=प्रभोः, राज्ञश्च। प्रसादम् = प्रसन्नताम्। सम्पत्तिम् = ऐश्वर्यम्। न अभिवाञ्छति = अभिलषति। कालकूटस्य कालिमा = विषस्य कालुष्यम्। ईश्वरसङ्गमात्=शम्भुकण्ठसंसर्गात्। न अपैति—न अपगच्छति। ब्राह्मणः स्वनिर्लोभत्वम् कदापि न जहाति यतः तदेव तत्प्रकृतिः इत्यर्थः ॥ २१ ॥

ब्राह्मण स्वामी को प्रसन्न रखता है और किसी भी प्रकार की सम्पत्ति की अभिलाषा नहीं रखता (निःस्वार्थ भाव से स्वामी की प्रसन्नता का ध्यान रखता है।) शंकर का सहवास पाकर भी विष की कालिमा दूर नहीं होती। अर्थात् ब्राह्मण सम्पत्ति के बीच में रहकर भी अपनी निर्लोभी प्रकृति का परित्याग नहीं करता ॥ २१ ॥

राजाह—'ततः शुक एव व्रजतु। शुक ! त्वमेवानेन सह तत्र गत्वास्मदभिलषितं ब्रूहि।' शुको ब्रूते—'यथाज्ञापयति देवः। किन्त्वयं दुर्जनो बकः, तदनेन सह न गच्छामि'। तथा चोक्तम्—

शुकः एव=पक्षिषु ब्राह्मणः शुकः एव। व्रजतु—गच्छतु। अनेन सह=बकेनसार्द्धम्। अभिलषितम्—अभीष्टम्। दुर्जनः = दुष्टस्वभावः।

राजा ने कहा—'तो यह सुग्गा ही दूत बनकर जाये। सुग्गे, इसके साथ जाकर (राजहंस से) हमारी इच्छा कह सुनाओ।' सुग्गे ने कहा—'स्वामी की जैसी आज्ञा। किन्तु यह बगुला बड़ा दुष्ट है। इसलिए इसके साथ नहीं जाऊँगा।' जैसा कि कहा भी गया है—

क्षमाशील:, परमर्मज्ञः=अन्यस्य रहस्यविज्ञः। प्रतिभानवान् = प्रतिभाशीलः। दूतः=सन्देशहरः। स्यात्=भवेत् ॥ २० ॥

स्वामी के प्रति श्रद्धालु, गुणवान्, पवित्र, चतुर, निडर, व्यसनरहित, क्षमाशील तथा दूसरों के मर्म को समझने में बुद्धिमान, पटु एवं ब्राह्मण (त्यागी तथा निर्लोभी) व्यक्ति को ही दूत बनाना चाहिए ॥ २० ॥

गृध्रो वदति—सन्त्येव दूता बहवः, किन्तु ब्राह्मण एव कर्त्तव्यः। यतः—

गृद्ध ने कहा—'यों तो दूत बहुत से हैं किन्तु ब्राह्मण को ही दूत बनाना चाहिये। क्योंकि—

'प्रसादं कुरुते पत्युः, सम्पत्तिं नाभिवाञ्छति।
कालिमा कालकूटस्य नापैतीश्वरसङ्गमात्' ॥ २१ ॥

अन्वयः—(ब्राह्मणः) पत्युः प्रसादम् कुरुते (तस्य) सम्पत्तिम् न अभिवाञ्छति (यथा) कालकूटस्य कालिमा ईश्वरसङ्गमात् न अपैति ॥ २१ ॥

पत्युः=प्रभोः, राज्ञश्च। प्रसादम् = प्रसन्नताम्। सम्पत्तिम् = ऐश्वर्यम्। न अभिवाञ्छति = अभिलषति। कालकूटस्य कालिमा = विषस्य कालुष्यम्। ईश्वरसङ्गमात्=शम्भुकण्ठसंसर्गात्। न अपैति=न अपगच्छति। ब्राह्मणः स्वनिर्लोभत्वम् कदापि न जहाति यतः तदेव तत्प्रकृतिः इत्यर्थः ॥ २१ ॥

ब्राह्मण स्वामी को प्रसन्न रखता है और किसी भी प्रकार की सम्पत्ति की अभिलाषा नहीं रखता (निःस्वार्थ भाव से स्वामी की प्रसन्नता का ध्यान रखता है।) शंकर का सहवास पाकर भी विष की कालिमा दूर नहीं होती। अर्थात् ब्राह्मण सम्पत्ति के बीच में रहकर भी अपनी निर्लोभी प्रकृति का परित्याग नहीं करता ॥ २१ ॥

राजाह—'ततः शुक एव व्रजतु। शुक! त्वमेवानेन सह तत्र गत्वास्मदभिलषितं ब्रूहि।' शुको ब्रूते—'यथाज्ञापयति देवः। किन्त्वयं दुर्जनो बकः, तदनेन सह न गच्छामि'। तथा चोक्तम्—

शुकः एव=पक्षिषु ब्राह्मणः शुकः एव। व्रजतु=गच्छतु। अनेन सह=बकेनसार्द्धम्। अभिलषितम्=अभीष्टम्। दुर्जनः = दुष्टस्वभावः।

राजा ने कहा—'तो यह सुग्गा ही दूत बनकर जाये। सुग्गे, इसके साथ जाकर (राजहंस से) हमारी इच्छा कह सुनाओ।' सुग्गे ने कहा—'स्वामी की जैसी आज्ञा। किन्तु यह बगुला बड़ा दुष्ट है। इसलिए इसके साथ नहीं जाऊँगा।' जैसा कि कहा भी गया है—

'खलः करोति दुर्वृत्तं, नूनं फलति साधुषु ।
दशाननोऽहरत्सीतां, बन्धनं स्यान्महोदधेः' ॥ २२ ॥

अन्वयः—खलः दुर्वृत्तम् करोति (किन्तु तत्) साधुषु नूनम् फलति । (यथा) दशाननः सीताम् अहरत् (किन्तु) महोदधेः बन्धनम् स्यात् ॥ २२ ॥

खलः=दुर्जनः । दुर्वृत्तम्=दुश्चरित्रम् । करोति=आचरति । साधुषु=सद्वृत्तेषु । नूनम्=निश्चयेन । फलति=फलदायकः भवति । दुष्टस्य दुराचारेण सज्जनोपि प्रभावितो भवति इत्यर्थः । दशाननः=रावणः । सीताम्=जानकीम् । अहरत्=अपहृतवान् । महोदधेः = सागरस्य । रावणस्य दुष्कृत्येन सागरः अमर्यादितोऽभूत् इत्यर्थः ॥ २२ ॥

दुष्टता तो दुष्ट करता है किन्तु उसका फल सज्जन को भोगना पड़ता है । सीता का हरण रावण ने किया था किन्तु बाँधा गया बेचारा समुद्र ॥ २२ ॥

अपरञ्च—'न स्थातव्यं न गन्तव्यं दुर्जनेन समं क्वचित् ।
काकसङ्गाद्धतो हंसस्तिष्ठन् गच्छंश्च वर्त्तकः' ॥ २३ ॥

राजोवाच—'कथमेतत् ?' ! शुकः कथयति—

अन्वयः—दुर्जनेन समम् क्वचित् न स्थातव्यम् न गन्तव्यम्, काकसंसर्गात् तिष्ठन् हंसः गच्छन् च वर्तकः हतः ॥ २३ ॥

दुर्जनेन=दुष्टेन । समम्=साद्धम् । क्वचित्=कदापि । न स्थातव्यम्=न वस्तव्यम् । न गन्तव्यम् = न गमनीयम् । काकसंसर्गात् = काकेन सह संगमात् । तिष्ठन्=वसन् । वर्तकः (वत्तक) पक्षिविशेषः । हतः=व्यापादितः ॥ २३ ॥

और भी—'दुष्ट के साथ न तो रहना चाहिए और न तो कहीं जाना ही चाहिए । कौवे के साथ रहने से हंस और साथ जाने से बत्तक मारा गया' ॥

राजा ने कहा—'यह कैसे हुआ ।' सुग्गे ने कहा—

कथा ४

अस्त्युज्जयिनीवर्त्मप्रान्तरे प्लक्षतरुः । तत्र हंस-काकौ निवसतः । कदाचित् ग्रीष्मसमये परिश्रान्तः कश्चित्पथिकस्तत्र तरुतले धनुष्काण्डं संनिधाय सुप्तः । तत्र क्षणान्तरे तन्मुखाद् वृक्षच्छायापगता । ततः सूर्यतेजसा तन्मुखं व्याप्तमवलोक्य, तद्वृक्षस्थितेन पुण्यशीलेन शुचिना राजहंसेन कृपया पक्षौ प्रसार्य पुनस्तन्मुखे

छाया कृता। ततो निर्भरनिद्रासुखिना पथिभ्रमणपरिश्रान्तेन पान्थेन मुखव्यादानं कृतम्।

अथ परसुखमसहिष्णुः स्वभावदौर्जन्येन स काकस्तस्य मुखे पुरीषोत्सर्गं कृत्वा पलायितः। ततो यावदसौ पान्थ उत्थायोर्ध्वं निरीक्षते, तावत्तेनावलोकितो हंसः काण्डेन हतो, व्यापादितः। अतोहं ब्रवीमि-'न स्थातव्य'मिति ॥ ❀ ॥

'देव ! वर्त्तककथामपि कथयामि। श्रूयताम्—

उज्जयिनीवर्त्मप्रान्तरे = उज्जयिनीदूरशून्यमार्गे। प्लक्षतरुः = पर्कटीवृक्षः। तत्र = तस्मिन्वृक्षे। कदाचित् = कस्मिश्चित् काले। ग्रीष्मसमये = ग्रीष्मर्तौ। परिश्रान्तः=मार्गक्लान्तः (थका हुआ) धनुष्काण्डम् = धनुर्दण्डम्। संनिधाय= शिरस्तले कृत्वा। सुप्तः = सुप्तवान्। क्षणान्तरे = मुहूर्तान्तरे। तन्मुखात् =पथिकस्य आननात्। अपगता=दूरीभूता। सूर्यतेजसा = रव्यातपेन। व्याप्तम् = परिपूर्णम्। पुण्यशीलेन = पुण्यस्वभावेन। शुचिना = पवित्राचरणेन। कृपया= दयया। पक्षौ प्रसार्य=पक्षप्रसारणं विधाय। तन्मुखे = पथिकानने। निर्भरनिद्रासुखिना (निर्भरा निर्भया या निद्रा तस्याम् सुखी यः सः तेन) = निःशंकनिद्रासुखं लभमानेन। तेन=पान्थेन। मुखव्यादानम् = मुखविवरणम्। परसुखमसहिष्णुः=अन्यानन्दसहने अशक्तः। स्वभावदौर्जन्येन=प्रकृतिदुष्टत्वेन। पुरीषोत्सर्गम्= विष्ठात्यागम्। पलायितः=पलायनम् कृतवान्। उत्थाय = विष्टरं त्यक्त्वा। ऊर्ध्वं= वृक्षोपरि। निरीक्षते=पश्यति। अवलोकितः=दृष्टः। काण्डेन = दण्डेन। हतः= ताडितः। व्यापादितः = मारितः।

उज्जयिनी जाने वाले मार्ग में एक पाकड़ का वृक्ष है। वहाँ हंस और कौवा एक साथ रहते थे। एकबार गर्मी के मौसम में कोई थका हुआ राही उस वृक्ष के नीचे धनुष को रखकर सो गया। कुछ ही देर में उसके मुख के ऊपर से पेड़ की छाया हट गयी। उसके मुख पर पड़ती हुई सूर्य की धूप को देखकर उसी वृक्ष पर बैठे हुए हंस ने दया करके अपने पंखों को फैलाकर फिर उसके मुँह पर छाया कर दी। नींद में सुख से निश्चित सोए हुए राही ने अपना मुँह खोल दिया। दूसरों के सुखको न सहन कर सकने वाले तथा स्वभाव ही से दुष्ट कौवे ने उसके मुख में बीट कर दिया और वहाँ से उड़ भी गया। जब उस राही ने उठकर ऊपर देखा तो उसने हंस को देखा और उसे धनुष के डंडे से मार डाला। इसलिए मैं कह रहा हूँ कि 'नहीं रहना चाहिए' इत्यादि। राजन्, बत्तक की भी कहानी सुना रहा हूँ। सुनिए—

कथा ६

एकत्र वृक्षे काक-वर्त्तकौ सुखं निवसतः। एकदा भगवतो गरुडस्य यात्राप्रसङ्गेन सर्वे पक्षिणः समुद्रतीरङ्गताः। ततः काकेन सह वर्त्तकश्चलितः। अथ गच्छतो गोपालस्य मस्तकावस्थितदधिभाण्डाद्वारं वारं तेन काकेन दधि खाद्यते। ततो यावदसौ दधिभाण्डं भूमौ निधायोर्ध्वमवलोकते, तावत्तेन काकवर्त्तकौ दृष्टौ। ततस्तेन दृष्टः काकः पलायितः। वर्त्तकः स्वभावनिरपराधो, मन्दगतिस्तेन प्राप्तो, व्यापादितः। अतोहं ब्रवीमि-'न गन्तव्यम्' इत्यादि ॥ ❀ ॥

ततो मयोक्तम्—'भ्रातः शुक! किमेवं ब्रवीषि? मां प्रति यथा श्रीमद्देवपादास्तथा भवानपि।' शुकेनोक्तम्—'अस्त्वेवम्'। किन्तु-

एकदा=एकस्मिन् काले। यात्राप्रसङ्गेन=दर्शनप्रसङ्गेन। पक्षिणः=खगाः। समुद्रतीरम् = सागरस्य तटम्। गताः = प्राप्ताः। गोपालस्य=गोपस्य। मस्तकावस्थितदधिभाण्डात्=(मस्तके अवस्थितम् यत् दधिभाण्डम् तस्मात्) शिरःस्थितदधिपात्रात्। असौ=गोपः। स्वभावनिरपराधः = प्रकृत्या दोषरहितः। मन्दगतिः (मन्दा गतिर्यस्य सः)=मन्दं मन्दम् संचरणशीलः। श्रीमद्देवः=अस्मत्प्रभुः।

एक वृक्ष पर कौवा और बत्तक एक साथ सुख से रहते थे। एक बार घूमते घामते हुए सारे पक्षी समुद्र के किनारे भगवान् गरुड़ का दर्शन करने चले। उस समय कौवे के साथ बत्तक भी चला। कौवा रास्ते में जाते हुए ग्वाले के दही के बर्तन से बार-बार दही खा लिया करता था। जब उसने दही का बर्त्तन जमीन पर रखकर ऊपर देखा तब उसे कौवा और बत्तक दोनों दिखाई पड़े। उसने दोनों को दौड़ाया, लेकिन कौवा तो भाग गया और स्वभाव से ही भोला भाला तथा धीरे-धीरे चलने वाला बत्तक पकड़ा गया और मार डाला गया। इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि—'न चलना चाहिए' इत्यादि। तब मैंने कहा—'भाई सुग्गे, ऐसा क्यों कह रहे हो। मेरे लिए जैसे महाराज हैं वैसे ही तुम भी हो।' सुग्गे ने कहा—'ऐसा हो सकता है' किन्तु—

> 'दुर्जनैरुच्यमानानि संमतानि, प्रियाण्यपि।
> अकालकुसुमानीव भयं सञ्जनयन्ति हि' ॥ २४ ॥

अन्वयः—संमतानि प्रियाणि अपि दुर्जनैः उच्यमानानि अकालकुसुमानि इव हि भयं संजनयन्ति ॥ २४ ॥

सम्मतानि=अभीष्टानि । प्रियाणि=मधुराणि । दुर्जनैः=दुष्टैः । उच्यमानानि=कथ्यमानानि । वचनानि । अकालकुसुमानि एव=असमयपुष्पाणि इव । भयं=भीतिम् । संजनयन्ति = उत्पादयन्ति ॥ २४ ॥

दुर्जनों की कही हुई मीठी बातें अनुकूल तथा प्रिय होने पर भी असमय के फूल के समान भय उत्पन्न करने वाली होती हैं ॥ २४ ॥

'दुर्जनत्वं च भवतो वाक्यादेव ज्ञातं, यदनयोर्भूपालयोर्विग्रहे भवद्वचनमेव निदानम्' । पश्य—

दुर्जनत्वम्=दुष्टता । भवत वाक्यात्=तव वचनात् । अनयोर्भूपालयोः = अनयोर्नृपयोः हंसमयूरयोः । विग्रहे = युद्धे । निदानम् = आदि कारणम् ।

दुष्टता तो तुम्हारी बात से ही टपक रही है क्योंकि इन दोनों राजाओं में युद्ध का आदि कारण तुम्हारी बात ही है । देखो—

'प्रत्यक्षेपि कृते दोषे, मूर्खः सान्त्वेन तुष्यति ।
रथकारो निजां भार्यां सजारां शिरसाकरोत्' ॥ २५ ॥

राज्ञोक्तम्—कथमेतत् ? शुकः कथयति—

अन्वयः—मूर्खः प्रत्यक्षेऽपि कृते दोषे सान्त्वेन तुष्यति । (यथा) रथकारः सजाराम् निजाम् भार्याम् शिरसा अकरोत् ॥ २५ ॥

मूर्खः = अज्ञः । प्रत्यक्षेऽपि = नेत्रसम्मुखेऽपि । कृते दोषे=विहिते अवगुणेऽपि । सान्त्वेन=सान्त्वनायाः वचनेन । तुष्यति=संतोषमायाति । रथकारः=रथनिर्माता, वर्द्धकिः । सजाराम् = जारसहिताम् । निजाम् = स्वकीयाम् । भार्याम्=पत्नीम् । शिरसा अकरोत्=मूर्ध्नाऽवहत् ॥ २५ ॥

प्रत्यक्ष दोष देखकर भी मूर्ख सान्त्वना की बातों से प्रसन्न हो जाता है । जैसे बढ़ई ने जार के साथ सोई हुई अपनी स्त्री को सिर पर उठा लिया था ॥

राजा ने कहा—यह कैसे ? सुग्गे ने कहा—

कथा ६

अस्ति यौवनश्रीनगरे मन्दमतिर्नाम रथकारः । स च स्वभार्यां बन्धकीं जानाति । किन्तु जारेण समं स्वचक्षुषा नैकस्थाने पश्यति । ततोऽसौ रथकारः 'अहमन्यं ग्रामं गच्छामी' त्युक्त्वा चलितः । स कियद्दूरं गत्वा पुनरागत्य पर्यङ्कतले स्वगृहे निभृतं स्थितः । 'अथ रथकारो ग्रामान्तरं गत' इत्युपजातविश्वासः स जारः सन्ध्याकाल

एवागतः। पश्चात्तेन जारेण समं तस्मिन् पर्यङ्के निर्भरं क्रीडन्ती, पर्यङ्कतलस्थितस्य भर्तुः किञ्चिदङ्गस्पर्शात्स्वामिनं मायाविनं विज्ञाय, मनसि सा विषण्णाभवत्।

ततो जारेणोक्तम्—'किमिति त्वमद्य मया सह निर्भरं न रमसे ?। विस्मितेव प्रतिभासि मे त्वम् ?।' अथ तयोक्तम्—'अनभिज्ञोऽसि, योऽसौ मम प्राणेश्वरो—येन ममाकौमारं सख्यं, सोद्य ग्रामान्तरं गतः। तेन विना सकलजनपूर्णोऽपि ग्रामो मां प्रत्यरण्यवत्प्रतिभाति। किं भावि ? तत्र परस्थाने किं खादितवान् ?। कथं वा प्रसुप्तः' ?—इत्यस्मद्धृदयं विदीर्यते।

जारो ब्रूते—'तव किमेवंविधा स्नेहभूमी रथकारः ?।'

बन्धक्यवदत्—'रे बर्बर ! किं वदसि ?। शृणु—

बन्धकीं=कुलटाम्। जारेण समम्=जारेण सह। स्वचक्षुषा=स्वनेत्रेण। एकस्थाने=एकस्मिन् स्थले, एकान्ते इत्यर्थः। कियद्दूरम्=किञ्चित् मार्गम्। पर्यङ्कतले = शय्यातले। निभृतम् = प्रच्छन्नम्। ग्रामान्तरम्=अन्यग्रामम्। उपजातविश्वासः=विश्वस्तः सन्। आगतः=रथकारस्य गृहे आगतवान्। क्रीडन्ती = विनोदं कुर्वन्ती। पर्यङ्कतलस्थितस्य=शय्यातले उपविष्टस्य। भर्तुः=स्वस्वामिनः। अङ्गस्पर्शात्=अंगसंगात्। मायाविनम्=कपटकारिणम्। विज्ञाय=ज्ञात्वा। विषण्णा=नितान्तम् उदासीना। निर्भरम् = भृशम्, एकचित्तेन इत्यर्थः। विस्मिता इव = चकिता इव। अनभिज्ञः=अज्ञः। आकौमारम् सख्यम् = कौमार्यावस्थायाः आरभ्य अद्यावधि प्रीतिः। सकलजनपूर्णः = मनुष्यसंकुलः अपि। अरण्यवत् = काननवत् निर्जनः। प्रतिभाति=ज्ञायते। किं भावि=किं भविष्यति। परस्थाने=अन्यस्थाने। स्नेहभूमिः=स्नेहस्थानम्, प्रियः इत्यर्थः।

यौवनश्रीनगर में मंदमति नाम का एक बढ़ई रहता था, वह अपनी पत्नी को दुराचारिणी तो समझता था किन्तु उसने अपनी आँखों से उसे जार के साथ कभी नहीं देखा था। एक दिन वह–'मैं दूसरे गाँव में जा रहा हूँ' ऐसा कहकर चला गया किन्तु दूर जाकर वह फिर लौट आया और अपने घर ही में चारपाई के नीचे चुपचाप बैठ गया। 'बढ़ई तो दूसरे गाँव में चला गया है'–इस विचार से निश्चिन्त होकर वह जार शाम ही को आ गया। इसके बाद चारपाई पर उसके साथ उपभोग करते समय बढ़ई की स्त्री का कोई अंग चारपाई के नीचे पड़े हुए पति के शरीर से छूता था। उसने छल करने वाले स्वामी को पहिचान लिया और वह उदास हो गई। तब जार ने कहा—'आज तुम निश्चिन्त होकर

मेरे साथ क्यों नहीं रमण कर रही हो। आज तुम मुझे कुछ चकित-सी दिखाई पड़ रही हो।' तब उसने कहा—'क्या तुम नहीं जानते हो कि कुमारावस्था ही से प्रिय, मेरे स्वामी आज दूसरे गाँव गए हैं। सभी लोगों से भरा हुआ यह गाँव आज मुझे जंगल जैसा लग रहा है। दूसरी जगह पता नहीं कहाँ होंगे, क्या खाये होंगे, कैसे सोए होंगे।' यह सोचकर मेरा हृदय फट रहा है। जार ने कहा—'क्या वह बढ़ई तुम्हें इतना प्रिय है!' उस कुलटाने कहा—'रे जंगली क्या कह रहा है? सुनो—

'परुषाण्यपि या प्रोक्ता, दृष्टा या क्रोधचक्षुषा।
सुप्रसन्नमुखी भर्तुः, सा नारी धर्मभाजनम्' ॥ २६ ॥

अन्वयः—या (नारी पत्या) परुषाणि अपि प्रोक्ता, क्रोधचक्षुषा दृष्टा भर्तुः (अग्रे) प्रसन्नमुखी (दृश्यते) सा (नारी) धर्मभाजनम् (भवति) ॥ २६ ॥

परुषाणि=कठोराणि वचनानि। क्रोधचक्षुषा=क्रोधपूर्णनेत्रेण। भर्तुः=स्वामिनः अग्रे। प्रसन्नमुखी=प्रसन्नवदना। धर्मभाजनम्=धर्मभागिनी ॥ २६ ॥

पति द्वारा कठोर बातें कहने पर और क्रोध भरी आँखोंसे देखनेपर भी जो स्त्री प्रसन्नमुख रहती है वही धर्मभागिनी होती है ॥ २६ ॥

अपरञ्च—'नगरस्थो, वनस्थो वा, पापो वा, यदि वा शुचिः।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्त्ता, तासां लोका महोदयाः' ॥२७॥

अन्वयः—नगरस्थः वनस्थः वा, पापः वा यदि वा शुचिः भर्ता यासाम् स्त्रीणाम् प्रियः तासाम् महोदयाः लोकाः (भवन्ति) ॥ २० ॥

नगरस्थः=नगरे स्थितः। वनस्थः=अरण्ये स्थितः। पापः = पापाचारी। शुचिः=सच्चरित्रः। भर्त्ता=पतिः। प्रियः=प्रियतरः। महोदयाः = सम्पूर्णसुखदाः। लोकाः=स्वर्गादयः ॥ २७ ॥

और भी—चाहे नगरों में रहने वाला हो या जंगल में, चाहे पापी हो या पुण्यात्मा, फिर भी जो स्त्री अपने पति से प्रेम करती है वह उत्तम लोकों (स्वर्गादि) को प्राप्त करती है ॥ २७ ॥

अन्यच्च—'भर्त्ता हि परमं नार्या भूषणं भूषणैर्विना।
एषा विरहिता तेन शोभनापि न शोभते' ॥ २८ ॥

अन्वयः—भूषणैः बिना (अपि) भर्ता हि नार्याः परमम् भूषणम् (अस्ति) तेन विरहिता (भूषणैः) शोभनापि एषा न शोभते ॥ २८ ॥

भूषणैः विना=अलङ्कारैः रहिता । भर्त्ता=पतिः । नार्याः=ललनायाः । परमम् भूषणम्=सर्वोत्कृष्टालङ्कारः । तेन विरहिता=भर्त्रा हीना । शोभना=सुशोभिता । एषा=नारी । न शोभते=शोभां न धत्ते ॥ २८ ॥

और भी—चाँदी सोने के गहनों से रहित होने पर भी पति ही स्त्री का सबसे श्रेष्ठ आभूषण होता है क्योंकि गहनों से लदी होने पर भी पतिहीना स्त्री सुशोभित नहीं होती है ॥ २८ ॥

त्वञ्च जारः पापमतिः, मनोलौल्यात्पुष्पताम्बूलसदृशः कदाचित्सेव्यसे, कदाचिन्न सेव्यसे च। स च पुनर्मे स्वामी, मां विक्रेतुं, देवेभ्यो, ब्राह्मणेभ्यो वा दातुमीश्वरः। किं बहुना ? 'तस्मिञ्जीवति जीवामि, तन्मरणे चानुमरणं करिष्यामी'ति प्रतिज्ञा वर्त्तते। यतः—

जारः=परदारोपभोगी । पापमतिः=दुष्टबुद्धिः । मनोलौल्यात् = चित्तचाञ्चल्यात् । पुष्पताम्बूलसदृशः=कुसुमनागवल्लीपत्रसदृशः । सेव्यसे=उपभुज्यसे । ईश्वरः=प्रभुः समर्थश्च । तस्मिन्=पत्यौ । जीवति=प्राणधारणं कुर्वति सति । अनुमरणम्=तस्यानुगमनम् ।

तुम जार और पापी हो । मन की चंचलता से फूल-पान की तरह कभी स्त्री का भोग करते कभी नहीं करते हो । वह मेरा पति मुझे बेच भी सकता है तथा देवताओं और ब्राह्मणों को दे भी सकता है । अधिक क्या कहें । यह मेरी प्रतिज्ञा है कि 'उसके जीते जी जीती रहूँगी और मरने पर सती हो जाऊँगी ।' क्योंकि—

'तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च यानि लोमानि मानवे ।
तावत्कालं वसेत्स्वर्गं भर्त्तारं योऽनुगच्छति' ॥ २९ ॥

अन्वयः—या (नारी) भर्त्तारम् अनुगच्छति सा, मानवे यानि तिस्रः कोट्यः अर्धकोटी च लोमानि तावत् कालम् स्वर्गं वसेत् ॥ २९ ॥

भर्तारम्=स्वामिनम् । अनुगच्छति=अनुसरति । मानवे=मनुष्यदेहे । तिस्रः-कोट्यः अर्धकोटी च = (सार्धकोटित्रयमितानि) साढ़े तीन करोड़ । लोमानि=रोमाणि । तावत्कालम्=तावत्कालपर्यन्तम्, सार्धत्रिकोटिवर्षपर्यन्तम् ॥ २९ ॥

जो स्त्री स्वामी के मरने पर सती हो जाती है वह मनुष्य शरीर में जो साढ़े तीन करोड़ रोएँ होते हैं उतने ही अर्थात् साढ़े तीन करोड़ वर्ष तक स्वर्ग में निवास करती है ॥ २९ ॥

अन्यच्च—'व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् ।
तद्वद्भर्त्तारमादाय स्वर्गलोके महीयते' ॥ ३० ॥

अन्वयः—यथा व्यालग्राही बिलात् व्यालम् बलात् उद्धरते तद्वत् (नारी) भर्तारम् । (नरकात्) आदाय स्वर्गलोके महीयते ॥ ३० ॥

व्यालग्राही=सर्पग्राही (सँपेरा) । व्यालम्=सर्पम् । बलात्=हठात् । तद्वत्=तेन प्रकारेणैव । आदाय=नरकात् उद्धृत्य । महीयते=पूज्यते ॥ ३० ॥

और भी—जैसे सँपेरा बलपूर्वक बिल से साँप को खींचकर अपने साथ ले जाता है उसी प्रकार सती स्त्री भी अपने स्वामी को नरक से खींचकर अपने साथ स्वर्ग ले जाती है ॥ ३० ॥

अपरञ्च—'चितौ परिष्वज्य विचेतनं पतिं,
प्रिया हि या मुञ्चति देहमात्मनः ।
कृत्वापि पापं शतलक्षमप्यसौ,
पतिं गृहीत्वा सुरलोकमाप्नुयात्' ॥ ३१ ॥

अन्वयः—या हि प्रिया चितौ विचेतनम् पतिम् परिष्वज्य आत्मनः देहम् मुञ्चति असौ शतसंख्यम् पापम् कृत्वापि पतिं गृहीत्वा सुरलोकमाप्नुयात् ॥३१॥

या हि प्रिया=या स्त्री । चितौ=चितायाम् । विचेतनम्=मृतम् । पतिं=स्वामिनम् । परिष्वज्य=आलिङ्गनं कृत्वा । आत्मनः=स्वस्य । देहम्=शरीरम् । मुञ्चति=त्यजति । असौ=सती नारी । पतिं गृहीत्वा=भर्त्तारमादाय । सुरलोकम्=स्वर्गम् । आप्नुयात्=गच्छेत् ॥ ३१ ॥

और भी—

इसके अतिरिक्त भी चिता पर मरे हुए पति को छाती से लगाकर जो स्त्री अपने शरीर का परित्याग कर देती है वह सैकड़ों पाप करने पर भी पति को लेकर स्वर्ग चली जाती है ॥ ३१ ॥

यतः—'यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां, भ्राता वानुमते पितुः ।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं, संस्थितञ्च न लङ्घयेत्' ॥ ३२ ॥

अन्वयः—पिता वा पितुः अनुमते भ्राता यस्मै एनाम् दद्यात् (नारी) जीवन्तम् तं शुश्रूषेत; संस्थितञ्च न लङ्घयेत् ॥ ३२ ॥

पितुः अनुमते=पितुः अनुमोदिते सति । यस्मै=पुरुषाय । एनाम्=कन्याम् । जीवन्तम्=श्वसन्तम् । तम्=पुरुषम् पतिमित्यर्थः । शुश्रूषेत=सेवेत । संस्थितञ्च=मृतम् च । न लङ्घयेत्=न अतिचरेत् । तमनुम्रियेत इत्यर्थः ॥ ३२ ॥

क्योंकि—

'स्त्री को चाहिए कि उसका पिता या पिता की राय से भाई भी उसे जिस पुरुष को समर्पित कर दे, उसकी वह जीवन भर सेवा करे और उसके मरने पर भी उसका साथ न छोड़े' ॥ ३२ ॥

एतत्सर्वं श्रुत्वा मन्दमतिः स रथकारः—'धन्योऽहं यस्येदृशी प्रियवादिनी, स्वामिवत्सला च भार्ये'ति मनसि निधाय, तां खट्वां स्त्रीपुरुषसहितां मूर्ध्नि कृत्वा, सानन्दं ननर्त्त। अतोऽहं ब्रवीमि—'प्रत्यक्षेऽपि कृते दोषे'—इत्यादि ॥

अतोऽहं तेन राज्ञा यथाव्यवहारं सम्पूज्य प्रस्थापितः। शुकोऽपि मम पश्चादागच्छन्नास्ते। एतत्सर्वं परिज्ञाय यथाकर्त्तव्यमनुसन्धीयताम्।

चक्रवाको विहस्याह—'देव! बकेन तावद् देशान्तरमपि गत्वा यथाशक्ति राजकार्यमनुष्ठितम्। किन्तु देव! स्वभाव एष मूर्खाणाम्'।

मन्दमतिः=कुण्ठितबुद्धिः। धन्योऽहम् = प्रशस्योऽहम्। प्रियवादिनी = मधुरभाषिणी। स्वामिवत्सला=पतिप्रेमकारिणी। निधाय = संस्थाप्य, विचार्येत्यर्थः। स्त्रीपुरुषसहिताम् = निजपत्नीजारसंयुक्ताम्। मूर्ध्नि कृत्वा = शिरसि आदाय। सानन्दम्=सहर्षम्। ननर्त=नृत्यं कृतवान्। ततः = तदनन्तरम्। तेन राज्ञा=मयूरनृपेण। यथाव्यवहारम्=यथायोग्यम्। संपूज्य = सम्मान्य। प्रस्थापितः=प्राहिणोत्। परिज्ञाय=विमृश्य। यथाकर्तव्यम्=यथाकरणीयम्। अनुसंधीयताम्=विचार्यताम्। देशान्तरमपि गत्वा=अन्यदेशमपि प्राप्य। राजकार्यमनुष्ठितम्=राजकार्यम् कृतम्। अत्र व्यङ्ग्योक्तिः स्वदौर्जन्येन भवान् विग्रहे निपातितः बकेनेत्यर्थः।

यह सब सुनकर उस बढ़ई ने कहा—'मैं धन्य हूँ। जिससे इतनी मधुरभाषिणी और पतिप्रिया स्त्री प्राप्त हुई है।' वह मन में इस प्रकार सोचते हुए स्त्री पुरुष सहित चारपाई को सिर पर उठाकर नाचने लगा। इसीलिए मैं कह रहा हूँ—'प्रत्यक्ष दोष करने पर भी' इत्यादि।

इसके बाद राजा चित्रवर्ण ने मेरा यथोचित सम्मान करके मुझे बिदा किया। सुग्गा भी मेरे पीछे आ रहा है। यह सब जानकर अब क्या करना चाहिए, इस पर आप बिचार करें।

चकवे ने हँसकर कहा—'देव! इस बगुले ने बिदेश में जाकर भी यथाशक्ति राज्यकार्य ही किया है। (अपनी दुष्टता से राज्य को युद्ध में फँसा दिया)। किन्तु हे राजन्, मूर्खों का तो स्वभाव ही यही है। क्योंकि—

यतः—'शतं दद्यान्न विवदे'दिति विज्ञस्य संमतम् ।
विना हेतुमपि द्वन्द्वमेतन्मूर्खस्य लक्षणम्' ॥ ३३ ॥

अन्वयः—शतं दद्यात् (किन्तु) न विवदेत् इति विज्ञस्य संमतम् । हेतुं विनापि द्वन्द्वम् एतत् मूर्खस्य लक्षणम् (अस्ति) ॥ ३३ ॥

न विवदेत्=विवादं न कुर्यात् । विज्ञस्य=विदुषः । संमतम्=सिद्धान्तः अस्ति । हेतुं विनापि=कारणम् विनापि । द्वन्द्वम्=कलहः ॥ ३३ ॥

नीतिज्ञों का यह सिद्धान्त है कि सैकड़ों देकर भी झगड़ा नहीं करना चाहिए और अकारण ही संघर्ष करना तो मूर्खों का काम है ॥ ३३ ॥

राजाह—'अलमनेनातीतोपालम्भनेन, प्रस्तुतमनुसन्धीयताम् ।' चक्रवाको ब्रूते—'देव ! विजने ब्रवीमि' । यतः—

अतीतोपालम्भेन=अतीतस्य=व्यतीतस्य, उपालम्भेन = निन्दया । प्रस्तुतम्=यदुपस्थितम् । विजने=एकान्ते । ब्रवीमि=कथयामि ।

राजा ने कहा—'बीती हुई बात पर किसी को उलाहना देना ठीक नहीं । अब जो सामने है उस पर विचार करो ।' चक्रवाक ने कहा—'देव मैं एकान्त में कहूँगा ।' क्योंकि—

**'वर्णाकार-प्रतिध्वानैर्नेत्रवक्त्रविकारतः ।
अप्यूहन्ति मनो धीरास्तस्माद्रहसि मन्त्रयेत्' ॥ ३४ ॥**

अन्वयः—धीराः वर्णाकारप्रतिध्वानैः नेत्रवक्त्रविकारतः मनः अपि ऊहन्ति तस्मात् रहसि मन्त्रयेत् ॥ ३४ ॥

वर्णाकारप्रतिध्वानैः=वर्णैः = रङ्गैः, आकारैः = आकृतिभिः । प्रतिध्वानैः=शब्दैः । नेत्रवक्त्रविकारतः=नयनमुखभङ्गीभेदेन । धीराः=परेङ्गितज्ञानकुशलाः । मन =मनोगतम् भावम् । ऊहन्ति = कलयन्ति । रहसि = एकान्ते । मन्त्रयेत्=मन्त्रणाम् कुर्यात् ॥ ३४ ॥

रूप, रंग, आकृति, शब्द और आँख-मुँह का बनना-बिगड़ना देखकर गम्भीर व्यक्ति मन की थाह पा जाता है अतः विचार-विमर्श एकान्त में करना चाहिए ॥

ततो राजा, मन्त्री च तत्र स्थितौ, अन्येऽन्यत्र गताः । चक्रवाको ब्रूते—'देव ! अहमेवं जानामि—'कस्याप्यस्मन्नियोगिनः प्रेरणया बकेनेदमनुष्ठितम्' । यतः—

अन्ये=अपरजनाः । एवं जानामि=एवं तर्कयामि । अस्मान्नियोगिनः = अस्म-
ाजकर्मचारिणः । प्रेरणया=उत्तेजनया । इदम् = विग्रहः । अनुष्ठितम्=कृतम् ।

राजा और मंत्री वहीं बैठे रहे और दूसरे लोग दूसरी जगह चले गए ।
ाकवे ने कहा—'राजन्, मुझे तो ऐसा लगता है कि किसी राज्य-कर्मचारी के
ाकसान से ही बगुले ने ऐसा किया है ।' क्योंकि—

'वैद्यानामातुरः श्रेयान्, व्यसनी यो नियोगिनाम् ।
विदुषां जीवनं मूर्खः, सद्वर्णो जीवनं सताम्' ॥ ३५ ॥

अन्वयः—वैद्यानाम् आतुरः नियोगिनाम् यः व्यसनी (स नृपः) श्रेयान् ।
ूर्खः विदुषाम् जीवनम् (अस्ति) सद्वर्णः सताम् जीवनम् (अस्ति) ॥ ३५ ॥

आतुरः = रोगी । नियोगिनाम् = राजपुरुषाणाम् । यः = नृपः । व्यसनी=
वेपत्तिग्रस्तः, मद्यमृगयादिव्यसनेषु आसक्तश्च । श्रेयात् = श्रेष्ठः, जीविकादानेन
सुखदः इत्यर्थः । विदुषाम्=विद्यावताम् । जीवनम्=वृत्तिप्रदानेन जीवनदायकः ।
सताम्=सज्जनानाम् । सद्वर्ण =ब्राह्मण-क्षत्रियादिवर्णः ॥ ३५ ॥

वैद्यों के लिए रोगी, कर्मचारियों के लिए स्वामी का आपत्तियों मे फँसना,
विद्वानों के लिए मूर्ख, सज्जनों के लिए कुलीन ही उनका जीवन होता है ॥३५॥

राजाब्रवीत्—'भवतु, कारणमत्र पश्चान्निरूपणीयम्, सम्प्रति यत्कर्त्तव्यं तन्निरूप्यताम् ।' चक्रवाको ब्रूते—'देव ! प्रणिधिस्तावत्तत्र प्रहीयताम् । ततस्तदनुष्ठानं, बलाबलं च जानीमः' । तथाहि—

अत्र=अस्मिन् उपस्थिते विषये । कारणम्=हेतुः, निरूपणीयम् = विचारणी-
यम् । सम्प्रति=अधुना । यत्कर्तव्यम्=यदाचरणीयम् । निरूप्यताम् = उच्यताम् ।
प्रणिधिः = गुप्तचरः । प्रहीयताम्=प्रेष्यताम् । तत् = तस्य शत्रोः । अनुष्ठानम्=
अभिमतम् कर्तव्यम् वा ।

राजा ने कहा—'अच्छा, जो हो, किंतु कारण पर पीछे विचार करो ।
इस समय क्या करना चाहिए उसे निश्चय करो ।' चकवे ने कहा— राजन् पहले
गुप्तचर भेजिए । जिससे शत्रु की अभिलाषा और उसकी सबलता तथा निर्बलता
को हम लोग जान लें ।' जैसा कि—

'भवेत्स्व-पर-राष्ट्राणां कार्याकार्यावलोकने ।
चारश्चक्षुर्महीभर्त्तुर्यस्य नास्त्यन्ध एव सः' ॥ ३६ ॥

अन्वयः—स्वपरराष्ट्राणाम् कार्याकार्यावलोकने (नृपः) चारचक्षुः (भवति)
यस्य महीभर्तुः (तत् चक्षुः) नास्ति सः अन्धः एव (भवति) ॥ ३६ ॥

अन्ये=अपरजनाः । एवं जानामि=एवं तर्कयामि । अस्मान्नियोगिनः = अस्मद्राजकर्मचारिणः । प्रेरणया=उत्तेजनया । इदम् =विग्रहः । अनुष्ठितम्=कृतम् ।

राजा और मंत्री वहीं बैठे रहे और दूसरे लोग दूसरी जगह चले गए । चकवे ने कहा—'राजन्, मुझे तो ऐसा लगता है कि किसी राज्य-कर्मचारी के उकसान से ही बगुले ने ऐसा किया है ।' क्योंकि—

'वैद्यानामातुरः श्रेयान्, व्यसनी यो नियोगिनाम् ।
विदुषां जीवनं मूर्खः, सद्वर्णो जीवनं सताम्' ॥ ३५ ॥

अन्वयः—वैद्यानाम् आतुरः नियोगिनाम् यः व्यसनी (स नृपः) श्रेयान् । मूर्खः विदुषाम् जीवनम् (अस्ति) सद्वर्णः सताम् जीवनम् (अस्ति) ॥ ३५ ॥

आतुरः = रोगी । नियोगिनाम् = राजपुरुषाणाम् । यः = नृपः । व्यसनी= विपत्तिग्रस्तः, मद्यमृगयादिव्यसनेषु आसक्तश्च । श्रेयान् = श्रेष्ठः, जीविकादानेन सुखदः इत्यर्थः । विदुषाम्=विद्यावताम् । जीवनम्=वृत्तिप्रदानेन जीवनदायकः । सताम्=सज्जनानाम् । सद्वर्ण =ब्राह्मण-क्षत्रियादिवर्णः ॥ ३५ ॥

वैद्यों के लिए रोगी, कर्मचारियों के लिए स्वामी का आपत्तियों मे फँसना, विद्वानों के लिए मूर्ख, सज्जनों के लिए कुलीन ही उनका जीवन होता है ॥३५॥

राजाब्रवीत्—'भवतु, कारणमत्र पश्चान्निरूपणीयम्, सम्प्रति यत्कर्त्तव्यं तन्निरूप्यताम् ।' चक्रवाको ब्रूते—'देव ! प्रणिधिस्तावत्तत्र प्रहीयताम् । ततस्तदनुष्ठानं, बलाबलं च जानीमः' । तथाहि—

अत्र=अस्मिन् उपस्थिते विषये । कारणम्=हेतुः, निरूपणीयम् = विचारणीयम् । सम्प्रति=अधुना । यत्कर्तव्यम्=यदाचरणीयम् । निरूप्यताम् = उच्यताम् । प्रणिधिः = गुप्तचरः । प्रहीयताम्=प्रेष्यताम् । तत् = तस्य शत्रोः । अनुष्ठानम्= अभिमतम् कर्तव्यम् वा ।

राजा ने कहा—'अच्छा, जो हो, किंतु कारण पर पीछे विचार करो । इस समय क्या करना चाहिए उसे निश्चय करो ।' चकवे ने कहा— राजन् पहले गुप्तचर भेजिए । जिससे शत्रु की अभिलाषा और उसकी सबलता तथा निर्बलता को हम लोग जान लें ।' जैसा कि—

'भवेत्स्व-पर-राष्ट्राणां कार्याकार्यावलोकने ।
चारश्चक्षुर्महीभर्त्तुर्यस्य नास्त्यन्ध एव सः' ॥ ३६ ॥

अन्वयः—स्वपरराष्ट्राणाम् कार्याकार्यावलोकने (नृपः) चारचक्षुः (भवति) यस्य महीभर्तुः (तत् चक्षुः) नास्ति सः अन्धः एव (भवति) ॥ ३६ ॥

स्वपरराष्ट्राणाम् = निजशत्रुराज्यानाम् । कार्याकार्यावलोकने—कार्यस्य अनुचितकर्तव्यस्य, अवलोकने=दर्शने । चारचक्षुः = चरनेत्रः । महीभर्तुः = नृपस्य। अन्धः = नेत्रहीनः । चाररहितो नृपः नेत्रहीनः अन्धः इव लोकदर्शनेऽशक्तः इत्यर्थः ॥ ३६ ॥

राजा अपने देश तथा अन्य देशों के अच्छे बुरे कार्यों का ज्ञान गुप्तचर रूपी आँख से ही प्राप्त करता है। अतः जिस राजा के पास गुप्तचर नहीं होता वह आँख होते हुए भी अंधा होता है ॥ ३६ ॥

स च द्वितीयं विश्वासपात्रं गृहीत्वा यातु। तेनासौ स्वयं तत्रावस्थाय, द्वितीयं तत्रत्यमन्त्रकार्यं सुनिभृतं निश्चित्य, निगद्य, प्रस्थापयति। तथा चोक्तम्—

द्वितीयम्=अन्यम् गुप्तचरम् । विश्वासपात्रम्=विश्वासयोग्यम् । यातु=गच्छतु । असौ—गुप्तचरः। तत्र=शत्रुराज्ये। अवस्थाय=वसतिं कृत्वा। तत्रत्यमन्त्रकार्यम्=शत्रुनृपस्य मंत्रणादीनि, तेन निश्चितानि कार्याणि च। सुनिभृतम् = अतिगोप्येन। निश्चित्य=निश्चयं कृत्वा। निगद्य—उक्त्वा। प्रस्थापयति=प्रेषयति।

वह एक दूसरे विश्वासपात्र गुप्तचर को अपने साथ लेकर जाय। वह तो वहीं स्वयम् रहे और वहाँ के सभी कार्यों को छिपकर भली भाँति समझकर दूसरे सहायक को समझा कर वहाँ भेज दे। जैसा कि कहा भी है—

'तीर्था-श्रम-सुरस्थाने शास्त्रविज्ञानहेतुना।
तपस्विव्यञ्जनोपेतैः स्वचरैः सह संवसेत्' ॥ ३७ ॥

अन्वयः—तीर्थाश्रमसुरस्थाने शास्त्रविज्ञानहेतुना तपस्विव्यञ्जनोपेतैः स्वचरैः सह संवसेत् ॥ ३७ ॥

तीर्थे=पुण्यस्थाने। आश्रमे = तपोवने। सुरस्थाने = देवालये। शास्त्रविज्ञानहेतुना—शास्त्रकलाकौशलादिशिक्षणस्य व्याजं कृत्वा। तपस्विव्यञ्जनैः = मुनिजनोचितलक्ष्मभिः। उपेतैः=युक्तैः। स्वचरैः = निजप्रणिधिभिः। सह = सार्धम्। संवसेत्=निवासं कुर्यात् ॥ ३७ ॥

तीर्थ स्थान में, किसी साधु के आश्रम में अथवा देवालय में तपस्वियों का वेश धारण करके शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने के बहाने प्रधान गुप्तचर को अपने सहायक गुप्तचरों के साथ निवास करना चाहिए ॥ ३७ ॥

गूढचारश्च—यो जले स्थले च चरति। ततोऽसावेव बको

नियुज्यताम् । एतादृश एव कश्चिद्बको द्वितीयत्वेन प्रयातु । तद्गृह-लोकाश्च राजद्वारे तिष्ठन्तु । किन्तु एतदपि सुगुप्तमनुष्ठातव्यम्' ।

गूढचार: = गुप्तदूत: । जले स्थले=सर्वत्र समानतया । चरति = गच्छति । नियुज्यताम् = चारकर्मणि नियुक्त: क्रियताम् । द्वितीयत्वेन=सहायकरूपेण । प्रयातु=गच्छतु । तद्गृहलोका:=तयो: स्वजना: । राजद्वारे=राजगृहे । तिष्ठन्तु=निवासं कुर्वन्तु । एतत् अपि=चरप्रेषणमपि । सुगुप्तम्=सुनिभृतम् । अनुष्ठातव्यम्=कर्त्तव्यम् ।

गुप्तचर वही हो सकता है जो जल और स्थल में समान रूप से आ जा सके । इसलिए इसी बगुले को ही गुप्तचर नियुक्त करें । ऐसा ही एक दूसरा बगुला भी इसके साथ जाय और इसके घर के लोग राजदरबार में आकर रहें किन्तु राजन्, यह सभी गुप्त रूप से होना चाहिए । क्योंकि—

यतः—'षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रस्तथा प्राप्तश्च वार्त्तया' ।
इत्यात्मना द्वितीयेन मन्त्रः कार्यो महीभृता ॥ ३८ ॥

अन्वयः—षट्कर्ण: तथा वार्त्तया प्राप्तश्च मन्त्र: भिद्यते (अत:) महीभृता आत्मना द्वितीयेन मन्त्र: कार्य: ॥ ३८ ॥

षट्कर्ण: = त्रिभि: जनै: कृत: । वार्त्तया प्राप्त: = पुरुषान्तरेण संदिष्ट: । मन्त्र:=मन्त्रणा । भिद्यते=भेदमुपयाति । इति = इति हेतो: । आत्मना = निजेन, द्वितीयेन येन सह मन्त्र: कार्य: तेन, द्वाभ्यामेवेति भाव: । महीभृता=नृपेण ॥३८॥

छ: कानों में पड़ी हुई तथा सन्देश रूप से कहलाई गई मन्त्रणा प्रकट हो जाती है । अत: राजा को चाहिए कि वह स्वयं अपने निजी आदमी के साथ विचार विमर्श करे ॥ ३८ ॥

पश्य—'मन्त्रभेदे हि ये दोषा भवन्ति पृथिवीपतेः ।
न शक्यास्ते समाधातुमिति नीतिविदां मतम्' ॥ ३९ ॥

अन्वयः—मन्त्रभेदे (सति) पृथिवीपते: ये दोषा: भवन्ति ते समाधातुम् न शक्या: इति नीतिविदाम् मतम् ॥ ३९ ॥

मन्त्रभेदे=मन्त्रस्य भेदमुपगते । पृथिवीपते=भूपते: ये दोषा: = विपत्त्यादय: । समाधातुम्=समाधानम् कर्तुम् न शक्या: = न योग्या: । नीतिविदाम् = नीतिज्ञ-पुरुषाणाम् । मतम्=विचार: ॥ ३९ ॥

देखो—

नीतिज्ञों का यह दृढ़ बिचार है कि मंत्रणा के फूट जाने से जो दोष राजा में आ जाते हैं उनका समाधान किसी भी प्रकार नहीं किया जा सकता ॥ ३९ ॥

राजा विमृश्योवाच—'प्राप्तस्तावन्मयोत्तमः प्रणिधिः ।' मन्त्री ब्रूते-'देव ! सङ्ग्रामे विजयोऽपि प्राप्तः ।'

विमृश्य = विचार्य । उत्तमः = श्रेष्ठः गुप्तचरः । प्राप्तः = लब्धः, पूर्वमेव नियुक्तः इत्यर्थः ।

राजा ने विचार करके कहा कि—'मुझे अच्छा गुप्तचर मिल गया है ।' मंत्री ने कहा-'तो संग्राम में विजय भी प्राप्त होगी ।'

अत्रान्तरे प्रतीहारः प्रविश्य प्रणम्योवाच—'देव ! जम्बूद्वीपादागतो द्वारि शुकस्तिष्ठति ।' राजा चक्रवाकमालोकते ।

चक्रवाकेणोक्तम्—'कृतावासे तावद् गत्वा तिष्ठतु, पश्चादानीय द्रष्टव्यः ।' 'यथाज्ञापयति देवः' इत्यभिधाय प्रतीहारः शुकं गृहीत्वा तमावासस्थानं गतः । राजाह—'विग्रहस्तावत्समुपस्थितः ।' चक्रवाको ब्रूते—'देव ! तथापि प्रागेव विग्रहो न विधिः' । यतः—

अत्रान्तरे=अस्मिन्नेव काले । प्रतीहारः = द्वारपालः । प्रविश्य = तत्रागत्य । आगतः = आयातः । आलोकते = 'किं विधेयम्' इत्याशयेन पश्यति । आवासे = अतिथिगृहे । तिष्ठतु=आवासं करोतु । विग्रहः = युद्धम् । उपस्थितः = सम्मुखागतः । प्रागेव=प्रथममेव । न विधिः=नोचितः ।

इसी बीच द्वारपाल ने आकर राजा को प्रणाम किया और कहा—'राजन् जम्बूद्वीप से आया हुआ सुग्गा द्वार पर खड़ा है ।' राजा ने चकवे की ओर देखा।

चकवे ने कहा—'ले जाकर अतिथिशाला में ठहरा दो । फिर ले आकर दर्शन कराना ।' 'जैसी श्रीमान् की आज्ञा' यह कहकर द्वारपाल उसे लेकर अतिथिशाला में चला गया । राजा ने कहा—'अब तो युद्ध सामने आ गया ।' चकवे ने कहा—'देव, पहले ही युद्ध करना उचित नहीं है ।' क्योंकि—

'स किंभृत्यः, स किंमन्त्री य आदावेव भूपतिम् ।'
युद्धोद्योगं, स्वभूत्यागं निर्दिशत्यविचारितम्' ॥ ४० ॥

अन्वयः—यः आदावेव भूपतिम् युद्धोद्योगम् स्वभूत्यागम् निर्दिशति सः किंभृत्यः स किंमंत्री (भवति) ॥ ४० ॥

यः = भृत्यः मंत्री च। आदावेव = प्रथममेव, अन्योपाये विद्यमाने सति प्रथममेव इत्यर्थः। भूपतिम्=नृपतिम्। अविचारितम् = विचारं विनैव। युद्धोद्योगम् = विग्रहाय प्रयत्नम्। स्वभूत्यागम् = स्वदेशात् पलायनम्। निर्दिशति= उपदिशति। किंभृत्यः=कुत्सितः सेवकः। किम्मन्त्री=अयोग्योऽमात्यः॥ ४०॥

बिना सोचे समझे पहले ही राजा को लड़ाई करने अथवा देश-त्याग की राय देने वाला मंत्री दुष्ट मंत्री और सेवक दुष्ट सेवक होता है॥ ४०॥

अपरं च—'विजेतुं प्रयतेतारीन्न युद्धेन कदाचन।
अनित्यो विजयो यस्माद् दृश्यते युध्यमानयोः'॥ ४१॥

अन्वयः—कदाचन युद्धेन अरीन् विजेतुम् न प्रयतेत। यस्मात् युद्धमानयोः विजयः अनित्यः दृश्यते॥ ४१॥

कदाचन=जातुचित्। युद्धेन = विग्रहेण। अरीन् = शत्रून्। विजेतुम्=विजयं कर्तुम्। प्रयतेत=प्रयत्नम् कुर्यात्। यस्मात्=यतः। युद्ध्यमानयोः=युद्धं कुर्वाणयोः। विजयः=विजयलाभः। अनित्यः=अनियतः। दृश्यते=अवलोक्यते॥ ४१॥

इसके अतिरिक्त—युद्ध द्वारा शत्रु को जीतने का प्रयत्न कभी नहीं करना चाहिए, क्योंकि दोनों लड़ने वाले की विजय अनिश्चित दिखाई देती है (जीतने वाला भी पीछे हार सकता है अतः विजय अनिश्चित होती है)॥ ४१॥

अन्यच्च—'साम्ना, दानेन, भेदेन, समस्तैरथवा पृथक्।
साधितुं प्रयतेतारीन्, न युद्धेन कदाचन'॥ ४२॥

अन्वयः—साम्ना दानेन भेदेन समस्तैः अथवा पृथक् अरीन् साधयितुम् प्रयतेत, किन्तु युद्धेन कदाचन न॥ ४२॥

साम्ना=सान्त्वेन। दानेन = धनादिप्रदानेन। भेदेन=शत्रुसहायकेषु भेदोत्पादनेन। एभिः त्रिभिः उपायैः, समस्तैः=सर्वोपायैः। अथवा पृथक्= एकैकेनोपायेन। अरीन्=शत्रून्। साधयितुम् = वशीकर्तुम्। प्रयतेत = प्रयत्नम् कुर्यात्॥ ४२॥

और भी—

शत्रु को युद्ध द्वारा नहीं बल्कि साम, दान, भेद–तीनों अथवा अलग-अलग उपायों से जीतने का प्रयत्न करना चाहिए॥ ४२॥

अपरञ्च—'सर्व एव जनः शूरो ह्यनासादितविग्रहः।
अदृष्टपरसामर्थ्यः सदर्पः को भवेन्न हि' ? ॥ ४३ ॥

अन्वयः—अनासादितविग्रहः सर्वं एव जनः शूरः (भवति)। अदृष्टपरसामर्थ्यः हि कः सदर्पः न भवेत् ॥ ४३ ॥

अनासादितविग्रहः=अप्राप्तयुद्धः। सर्वं एव जनः=सर्वं एव लोकः। शूरः=वीरः। अदृष्टपरसामर्थ्यः=अनवलोकितशत्रुबलः। सदर्पः=गर्वयुक्तः ॥ ४३ ॥

जब तक युद्ध सिर पर नहीं आ जाता तब तक सभी अपने को बहादुर समझते हैं। दूसरे की शक्ति को बिना देखे कौन अभिमानी नहीं होता है ॥४३॥

किञ्च—'न तथोत्थाप्यते ग्रावा प्राणिभिर्दारुणा यथा।
अल्पोपायान्महासिद्धिरेतन्मन्त्रफलं महत्' ॥ ४४ ॥

अन्वयः—यथा प्राणिभिः दारुणा ग्रावा उत्थाप्यते तथा (तेन दारुणा बिना) न (उत्थाप्यते एवमेव) अल्पोपायात् महासिद्धिः (भवेत्)। एतत् महत् मन्त्रफलम् (अस्ति) ॥ ४४ ॥

यथा=येन प्रकारेण अनायासेनेत्यर्थः। प्राणिभिः=जनैः। दारुणा=काष्ठदण्डेन। ग्रावा = प्रस्तरः। तथा = तेन प्रकारेण। न उत्थापयितुं शक्यते। अल्पोपायात् = स्तोकोद्यमात्। महासिद्धिः = महाकार्यस्य सफलता। महत्=श्रेष्ठम्। मन्त्रफलम्=मन्त्रस्य परिणामः ॥ ४४ ॥

इसके अतिरिक्त और भी—

पत्थर की चट्टान लकड़ी द्वारा जितनी सरलता से उठाई जा सकती है उतनी अन्य किसी भी साधन से नहीं। इसलिए थोड़े प्रयत्न से बड़ी सफलता ही मन्त्रणा का महान फल है ॥ ४४ ॥

किन्तु विग्रहमुपस्थितं विलोक्य व्यवह्रियताम्। यतः—

विग्रहम्=युद्धम्। उपस्थितम् = सम्मुखागतम्। विलोक्य = दृष्ट्वा। व्यवह्रियताम्=उपायः क्रियताम्।

किन्तु युद्ध सामने आया हुआ जान कर उपाय ढूंढ़ो। क्योंकि—

'यथा कालकृतोद्योगात्कृषिः फलवती भवेत्।
तद्वन्नीतिरियं देव ! चिरात्फलति, न क्षणात्' ॥ ४५ ॥

अन्वयः—हे देव, यथा कृषिः कालकृतोद्योगात् फलवती भवेत् तद्वत् इयं नीतिः रक्षणात् चिरात्फलति ॥ ४५ ॥

देव=राजन् । काले=समये । कृतः=विहितः । यः उद्योगः = प्रयत्नः । तस्मात् । फलवती=सफला । तद्वत् = एवमेव । इयं नीतिः = इयं राजनीतिः । रक्षणात्=सम्यक् रूपेण पालनात् । चिरात्=कियता कालेन । फलति = सफला भवति ॥ ४५ ॥

जैसे समय पर किए गए प्रयत्न से खेती कुछ समय बाद होती है, उसी प्रकार नीति की समय पर उचित रक्षा करने से वह दूर में फल देती है न कि तत्काल ही ॥ ४५ ॥

अपरं च—'दूरे भीरुत्वमासन्ने शूरता महतो गुणः ।
विपत्तौ हि महाँल्लोके धीरत्वमधिगच्छति' ॥ ४६ ॥

अन्वयः—दूरे भीरुत्वम् (किन्तु) आसन्ने शूरता महतः गुणः । लोके विपत्तौ च महान् धीरत्वम् अनुगच्छति ॥ ४६ ॥

दूरे भीरुत्वम्=भये दूरे सति भीरुता । आसन्ने=निकटे सति । शूरता=शौर्यम् । महतः=महापुरुषस्य । गुणः=विशेषता । लोके=जगति । विपत्तौ=विपदि । महान=महापुरुषः । धीरत्वम् = धैर्यम् । अनुगच्छति = अनुव्रजति ॥ ४६ ॥

और भी—

विपत्तियों को दूर देख कर डरना किन्तु निकट आ जाने पर पराक्रम दिखाना बड़े लोगों का गुण होता है । इसीलिए बड़े लोग संसार में विपत्ति के समय धैर्य का आश्रय लेते हैं ॥ ४६ ॥

अन्यच्च—'प्रत्यूहः सर्वसिद्धीनामुत्तापः प्रथमः किल ।
अतिशीतलमप्यम्भः किं भिनत्ति न भूभृतः ?' ॥ ४७ ॥

विशेषतश्च देव ! महाबलोऽसौ चित्रवर्णो राजा । यतः—

अन्वयः—उत्तापः सर्वसिद्धीनाम् प्रथमः प्रत्यूहः । अतिशीतलमपि अम्भः किं भूभृतः न भिनत्ति ॥ ४७ ॥

उत्तापः=क्रोधः । सर्वसिद्धीनाम्=सर्वकार्यसफलतानाम् । प्रथमः=मुख्यः । प्रत्यूहः = विघ्नः । अतिशीतलमपि = अत्यन्तहिममपि । अम्भः = जलम् । भूभृतः=पर्वतान् । न भिनत्ति=न विदारयति, विदारयति एवेत्यर्थः ॥ ४७ ॥

और भी—

प्रारंभ में ही गरम हो जाना (क्रुद्ध हो जाना) सभी प्रकार की सफलताओं की बहुत बड़ी बाधा है। क्या अत्यन्त ठंडा पानी पहाड़ को नहीं तोड़ देता है? अर्थात् क्रोध के स्थान पर शान्ति से भी सफलता मिल सकती है ॥ ४७ ॥

विशेषकर यह राजा चित्रवर्ण महान बली है। क्योंकि—

'बलिना सह योद्धव्य'मिति नाऽस्ति निदर्शनम्।
तद्युद्धं हस्तिना सार्द्धं नराणां मृत्युमावहेत्' ॥ ४८ ॥

अन्वयः—बलिना सह योद्धव्यम् इति निदर्शनम् नास्ति। हस्तिना सार्द्धम् नराणाम् युद्धम् मृत्युम् आवहेत् ॥ ४८ ॥

बलिना सह = बलशालिना सह। योद्धव्यम् = विग्रहः करणीयः। इति = एवम्। निदर्शनम् = प्रमाणम्। हस्तिना सार्द्धम् = गजेन सह। नराणाम् = मनुष्याणाम्। युद्धम्=विग्रहः। मृत्युम्=मरणम्। आवहेत्=धारयेत् ॥ ४८ ॥

बलवान के साथ युद्ध करना नीति नहीं है क्योंकि मनुष्य का हाथी के साथ लड़ना अपनी मौत को बुलाना है ॥ ४८ ॥

अन्यच्च—'स मूर्खः कालमप्राप्य योऽपकर्त्तरि वर्त्तते।
कलिर्बलवता सार्धं कीटपक्षोद्गमो यथा' ॥ ४९ ॥

अन्वयः—यः कालमप्राप्य अपकर्तरि वर्तते स मूर्खः बलवता सार्धम् कलिः कीटपक्षोद्गमः यथा (भवति) ॥ ४९ ॥

यः = पुरुषः। कालमप्राप्य = अवसरं विनैव। अपकर्तरि = शत्रौ। वर्तते=विद्यते, शत्रुणा सह कलहं करोति इत्यर्थः। सः मूर्खः=सः अज्ञः। बलवता सार्द्धम्=बलशालिना सह। कलिः=कलहः। कीटपक्षोद्गमः=कीटानाम् पक्षोद्गमः (फतिंगों के पंख आने)। यथा=इव ॥ ४९ ॥

और भी—

जो उपयुक्त समय देखे बिना ही शत्रु पर चढ़ाई करता है वह मूर्ख होता है। और बलवान के साथ लड़ना तो फतिङ्गों के पर निकलने के समान है ॥ ४९ ॥

किञ्च—'कौर्मं सङ्कोचमास्थाय प्रहारमपि मर्षयेत्।
प्राप्तकाले तु नीतिज्ञ उत्तिष्ठेत्क्रूरसर्पवत्' ॥ ५० ॥

अन्वयः—नीतिज्ञः कौर्मम् संकोचमास्थाय प्रहारमपि मर्षयेत् (किन्तु) प्राप्तकाले तु क्रूरसर्पवत् उत्तिष्ठेत् ॥ ५० ॥

नीतिज्ञः=नीतिकुशलः । कौर्मम्=कच्छपसम्बन्धिनम् । संकोचम् = अंगसंकोचनम्, क्रोधसङ्कोचञ्च । आस्याय=आश्रित्य । प्रहारमपि=शत्रुणा कृतम् आघातमपि । मर्षयेत् = क्षमेत । प्राप्तकाले = लब्धावसरे । क्रूरसर्पवत्=दुष्टसर्पतुल्यः । उत्तिष्ठेत्=उत्थानम् कुर्यात् ॥ ५० ॥

अतः—

जिस प्रकार कछुआ (समय पर) अपने अंगों को समेट कर अपने ऊपर होने वाली चोट को भी सहन कर लेता है उसी प्रकार नीतिज्ञ को समयानुसार सब सहन करना चाहिए । और समय पाकर ही क्रुद्ध सर्प के समान उठ खड़ा होना चाहिए ॥ ५० ॥

'महत्यल्पेऽप्युपायज्ञः सममेव भवेत्क्षमः ।
समुन्मूलयितुं वृक्षांस्तृणानीव नदीरयः' ॥ ५१ ॥

अन्वयः—उपायज्ञः महति अल्पे (शत्रौ) अपि समम् एव क्षमः भवेत् । वृक्षांस्तृणानि, समुन्मूलयितुं नदीरयः इव ॥ ५१ ॥

उपायज्ञः=विधिज्ञः । महति = बलशालिनि शत्रौ । अल्पे = अल्पबले शत्रौ । सममेव = तुल्यमेव । वृक्षांस्तृणानि = महतः वृक्षान् अल्पानि तृणानि । समुन्मूलयितुम्=उत्पाटयितुम् । नदीरयः=सरिद्वेगः । इव=तुल्यः । क्षमः=समर्थः भवेत् ॥

उपाय का जानने वाला बड़ी छोटी सभी प्रकार की कठिनाइयों (बड़े छोटे शत्रुओं) को दूर करने में उसी प्रकार समर्थ होता है जैसे नदी की धारा वृक्षों और तृणों को समान रूप से उखाड़ने में समर्थ होती है ॥ ५१ ॥

अतो दूतोऽयं शुकोऽत्राश्वास्य तावद्ध्रियतां यावद्दुर्गं सज्जीक्रियते । यतः—

अतः=अस्मात्कारणात् । दूतः=मयूरेण प्रेषितः शुकः । आश्वास्य = सामवचनैः आश्वासनम् विधाय । ध्रियताम्=अत्रैव स्थाप्यताम् ।

इसलिए जब तक किले की तैयारी हो तब तक दूत को समझा बुझा कर रोके रहें ! क्योंकि—

'एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः ।
शतं शतसहस्राणि, तस्माद् दुर्गं विशिष्यते' ॥ ५२ ॥

अन्वयः—एकः प्राकारस्थः धनुर्धरः शतम् योधयति (एवम्) शतं शतसहस्राणि (योधयन्ति) तस्मात् दुर्गम् विशिष्यते ॥ ५२ ॥

प्राकारस्थः=दुर्गस्य समन्तात् यः प्राचीरस्तस्यान्तरे स्थितः । एकः धनुर्धरः=

एकः भटः । शतम्=शतसंख्यकान् भटान् । योधयति = योद्धुं शक्नोति । शतं शत-सहस्राणि=लक्षाणि । विशिष्यते=प्रशस्यते ॥ ५२ ॥

किले की दीवारों के भीतर रहने वाला एक ही धनुषधारी वीर सैकड़ों वीरों तथा सौ वीर लाखों वीरों के साथ युद्ध कर सकता है। इसीलिए युद्ध में किले का विशेष महत्त्व है ॥ ५२ ॥

किञ्च—'अदुर्गविषयः कस्य नारेः परिभवास्पदम् ।
अदुर्गोऽनाश्रयो राजा पोतच्युतमनुष्यवत्' ॥ ५३ ॥

अन्वयः—अदुर्गविषयः (नृपः) कस्य अरेः परिभवास्पदम् न (भवति) अदुर्गः अनाश्रयः राजा पोतच्युतमनुष्यवत् (भवति) ॥ ५३ ॥

अदुर्गविषयः=दुर्गरहितराज्यः । कस्य अरेः=कस्य शत्रोः । परिभवास्पदम्=पराजयस्थानम्, पराश्रेयः इत्यर्थः । न भवति=भवत्येवेत्यर्थः । अदुर्गः=दुर्गरहितः । अनाश्रयः=अतएव आश्रयहीनः । राजा=नृपः । पोतच्युतमनुष्यवत्=जलवाहनात्पतितपान्थवत्, यथा पोतच्युतः सांयात्रिकः जले निमज्जति तथैव राजापि विपत्तिसागरे निमग्नो भवति ॥ ५३ ॥

किला-रहित किस राजा का देश शत्रु द्वारा विजित नहीं हो जाता ? दुर्ग तथा आश्रय के बिना राजा जहाज से गिरे हुये मनुष्य के समान डूब जाता है ॥

'दुर्गं कुर्यान्महाखातमुच्चप्राकारसंयुतम् ।
सयन्त्रं, सजलं, शैल-सरिन्मरु-वनाश्रयम्' ॥ ५४ ॥

अन्वयः—महाखातम्, उच्चप्राकारसंयुतम्, सयन्त्रम्, सजलम्, शैल-सरिन्-मरु-वनाश्रयम्, दुर्गम्, कुर्यात् ॥ ५४ ॥

महाखातम्=महापरिखोपेतम् । उच्चप्राकारसंयुतम्=उच्चप्राचीरेण समन्ताद्वेष्टितम् । सयन्त्रम्=युद्धोपयोगिभिः यन्त्रैः युक्तम् । सजलम्=जलाशययुक्तम् । शैल-सरिन्मरुवनाश्रयम्=पर्वतनदीमरुभूमिकाननादिदुर्गमभूमिसंस्थितम् । दुर्गं कुर्यात्=दुर्गस्य निर्माणम् कारयेत् ॥ ५४ ॥

किला बहुत बड़ी खाई से घिरा हुआ, ऊँची चहार-दीवारी, युद्ध के यन्त्रों एवं जल (कुआँ, बावली आदि) से युक्त तथा पहाड़, नदी, मरुभूमि अथवा वन के किनारे बनवाना चाहिए ॥ ५४ ॥

'विस्तीर्णतातिवैषम्यं, रसधान्येध्मसंग्रहः ।
प्रवेशश्चापसारश्च सप्तैता दुर्गसम्पदः' ॥ ५५ ॥

अन्वयः—विस्तीर्णता, अतिवैषम्यम्, रसधान्येध्मसंग्रहः, प्रवेशः, अपसारश्च एताः सप्त दुर्गसम्पदः (सन्ति) ॥ ५५ ॥

विस्तीर्णता=आयामः विशालता च। अतिवैषम्यम् = अत्यन्तदुर्गमत्वम्। रसधान्येध्मसंग्रहः = जलान्नेन्धनसंग्रहः। प्रवेशः=निगूढनानाप्रवेशपथः। अपसारः=निगूढनिर्गमनमार्गः। दुर्गसम्पदः=दुर्गसम्पत्तयः ॥ ५५ ॥

विस्तीर्णता (काफी लम्बाई-चौड़ाई) अत्यन्त दुर्गमता (पहुँचने की कठिनाई), रस, अन्न और लकड़ी का संग्रह तथा आने-जाने के गुप्त मार्ग—किले की यह सात विशेषताएँ होती हैं ॥ ५५ ॥

राजाह—'दुर्गानुसन्धाने को नियुज्यताम्' ? चक्रवाको ब्रूते-

दुर्गानुसन्धाने=दुर्गपरीक्षणे। नियुज्यताम्=नियुक्तः क्रियताम्।

राजा ने कहा—'दुर्ग का अन्वेषण करने के लिए किसे नियुक्त करना चाहिए' ? चकवे ने कहा—

'यो यत्र कुशलः कार्ये तं तत्र विनियोजयेत्।
कर्मस्वदृष्टकर्मा यः शास्त्रज्ञोऽपि विमुह्यति' ॥ ५६ ॥

अन्वयः—यः यत्र कार्ये कुशलः तं तत्र विनियोजयेत् (यतः) कर्मसु यः अदृष्टकर्मा (भवति सः) शास्त्रज्ञः अपि विमुह्यति ॥ ५६ ॥

यः=पुरुषः। यत्र कार्ये=यस्मिन्कर्मणि। कुशलः=चतुरः। तं=पुरुषम्। तत्र = तस्मिन् कार्ये। विनियोजयेत्=नियुक्तं कुर्यात्। कर्मसु=कर्तव्यकार्येषु। अदृष्टकर्मा=अनवलोकितकार्यः। शास्त्रज्ञः=शास्त्रेषु कुशलः। विमुह्यति=मोहं गच्छति, व्याकुलो भवतीत्यर्थः ॥ ५६ ॥

जो व्यक्ति जिस कार्य में कुशल हो उसे वहीं नियुक्त करना चाहिए क्योंकि शास्त्र का ज्ञाता होने पर भी किसी कार्य मे अनुभव न होने से वह उस कार्य में मूर्ख बन जाता है ॥

'तदाहूयतां सारसः'। तथानुष्ठिते सति समागतं सारसमवलोक्य राजोवाच—'भोः सारस ! त्वं सत्वरं दुर्गमनुसन्धेहि।'

सारसः प्रणम्योवाच—'देव ! दुर्गं तावदिदमेव चिरात्सुनिरूपितमास्ते महत्सरः। किन्त्वेतन्मध्यद्वीपे द्रव्यसंग्रहः क्रियताम्।' यतः—

सत्वरम्=शीघ्रम्। अनुसंधेहि = अनुसंधानम् कुरु, 'कुत्र दुर्गम् निर्मेयम्' इति परीक्षणम् कुरु इति भावः। चिरात्=बहुकालात्। सुनिरूपितम्=सुपरीक्षितम्। महत्सरः = महान् सरोवरः। मध्यवर्तिद्वीपे = मध्यभागे स्थिते भूप्रान्ते। द्रव्यसंग्रहः=वस्तुसंग्रहः, धान्येन्धनादिसंग्रहः।

'इसलिए सारस को बुलाइए ।' ऐसा करने पर आए हुए सारस को देख कर राजा ने कहा—'सारस, तुम शीघ्र ही किले की छान-बीन कर डालो ।'

सारस ने प्रणाम करके कहा—राजन् बहुत दिनों से देखा भाला हुआ यह तालाब ही हम लोगों का किला है । किन्तु इसके बीच के टापू पर सभी द्रव्यों (अन्न, लकड़ी आदि) को इकट्ठा कर लेना चाहिए । क्योंकि—

'धान्यानां सङ्ग्रहो राजन्नुत्तमः सर्वसङ्ग्रहात् ।
निक्षिप्तं हि मुखे रत्नं न कुर्यात्प्राणधारणम्' ॥ ५७ ॥

अन्वयः—हे राजन् ! धान्यानाम् संग्रहः सर्वसंग्रहात् उत्तमः (यतः) हि मुखे निक्षिप्तम् रत्नम् प्राणधारणम् न कुर्यात् ॥ ५७ ॥

धान्यानाम्=अन्नानाम् । संग्रहः = आकलनम् । सर्वसंग्रहात् = संपूर्णवस्तुसंग्रहात् । उत्तमः=श्रेष्ठः । मुखे निक्षिप्तम्=आनने स्थापितम् । प्राणधारणम्=उदरपूर्त्या प्राणरक्षणम् ॥

हे राजन्, सभी वस्तुओं के संग्रह से अन्न का संग्रह करना उत्तम है, क्योंकि मुख में पड़ा हुआ रत्न भी प्राणों की रक्षा नहीं कर सकता ॥ ५७ ॥

किञ्च—'ख्यातः सर्वरसानां हि लवणो रस उत्तमः ।
गृह्णीयात्तं, विना तेन व्यञ्जनं गोमयायते' ॥ ५८ ॥

अन्वयः—सर्वरसानाम् लवणः उत्तमः ख्यातः । तेन विना गृहीतं व्यञ्जनम् गोमयायते ॥ ४८ ॥

सर्वरसानाम्=षड्रसानाम् । उत्तमः=श्रेष्ठः । ख्यातः=प्रसिद्धः । तेन विना=लवणम् विना । व्यञ्जनम् = भोज्यवस्तु । गोमयायते=गोमयः (गोबर) इव आस्वादरहितम् भवति ॥

और भी—

सभी रसों में नमक सबसे प्रसिद्ध और उत्तम रस कहा जाता है । अतः उसका संग्रह अवश्य करना चाहिए । क्योंकि उसके बिना अच्छे से अच्छा भोजन भी गोबर के समान लगता है ॥ ५८ ॥

राजाह—'सत्वरं गत्वा सर्वमनुष्ठीयताम् ।' पुनः प्रविश्य प्रतीहारो ब्रूते—'देव ! सिंहलद्वीपादागतो मेघवर्णो नाम वायसः सपरिवारो द्वारि वर्त्तते । स च देवपादान् द्रष्टुमिच्छति ।' राजाह—काकः प्राज्ञो, बहुदृश्वा च, तद्भवति स संग्राह्यः ।

चक्रवाको ब्रूते—'देव ! अस्त्येवं, किन्तु अस्मद्विपक्षः काकः स्थलचरः । तेनास्मद्विपक्षपक्षे नियुक्तः कथं सङ्गृह्यते ? तथा चोक्तम्—

सर्वमनुष्ठीयताम्=सर्वम् क्रियताम् । आगतः = आयातः । वायसः = काकः । देवपादान् = श्रीमतः । द्रष्टुमिच्छति=दर्शनमभिवाञ्छति । प्राज्ञः=पण्डितः । बहुदृश्वा=बहुश्रुतः । संग्राह्यः=स्वाश्रये रक्षणीयः । स्थलचरः = स्थलवासी । विपक्षपक्षे नियुक्तः=शत्रुपक्षे अनुरक्तः ।

राजा ने कहा—'तो शीघ्र ही जाकर सभी आवश्यक कार्य करो ।' फिर द्वारपाल ने आकर कहा–राजन् सिंहल द्वीप से आया हुआ मेघवर्ण नाम का एक कौवा अपने परिवार के साथ द्वार पर खड़ा है । वह आप का दर्शन करना चाहता है । राजा ने कहा—'कौवे एक तो सभी बातों को जानने वाले, दूसरे बहुत सी वस्तुओं को देखने वाले होते हैं । इसलिए मेरी राय है कि उसे रख लेना चाहिए ।'

चकवे ने कहा—'राजन्, यह तो ठीक है किन्तु कौवा भूमि का पक्षी है । इसलिए वह हमारे शत्रु के पक्ष का है अतः उसे किस प्रकार रखा जाये ? कहा भी है—

'आत्मपक्षं परित्यज्य, परपक्षेषु यो रतः ।
स परैर्हन्यते मूढो, नीलवर्णश्रृगालवत्' ॥ ५९ ॥

राजोवाच—'कथमेतत् ?' मन्त्री कथयति—

अन्वयः—यः आत्मपक्षम् परित्यज्य परपक्षेषु रतः सः मूढः नीलवर्णश्रृगालवत् परैः हन्यते ॥ ५९ ॥

आत्मपक्षम्=स्वपक्षम् । परित्यज्य=त्यक्त्वा । परपक्षेषु=शत्रुपक्षेषु । रतः=अनुरक्तः । मूढः=मूर्खः । परैः=शत्रुभिः । हन्यते=म्रियते ॥ ५९ ॥

अपने पक्ष को छोड़ कर जो दूसरे पक्ष वालों से अनुराग करता है वह मूर्ख नीलवर्ण गीदड़ के समान दूसरों (शत्रुओं) से अवश्य मारा जाता है ॥ ५९ ॥

राजा ने कहा—'यह कैसे ?' मंत्री ने कहा—

कथा ७

[अस्त्यरण्ये] कश्चिच्छृगालः स्वेच्छया नगरोपान्ते भ्राम्यन्नीलीभाण्डे निपतितः । पश्चात्तत उत्थातुमसमर्थः, प्रातरात्मानं मृतवत्सन्दर्श्य स्थितः । अथ नीलीभाण्डस्वामिना 'मृत' इति ज्ञात्वा, तस्मात्समुत्थाप्य, दूरे नीत्वासौ परित्यक्तः, तस्मात्पलायितः ।

अरण्ये = कानने । स्वेच्छया = यदृच्छया । नगरोपान्ते=नगरस्य सन्निकटे । भ्राम्यन् = विचरन् । नीलीभाण्डे = नीलीरागनिर्माणपात्रे । ततः = तस्माद् भाण्डात् । उत्थातुम्=बहिरागन्तुम् । असमर्थः = अशक्तः । आत्मानम् = स्वम् । मृतवत् संदर्श्य = मृतकतुल्यम् प्रदर्श्य । ज्ञात्वा = अवगम्य । समुत्थाप्य = बहिः-कृत्वा । परित्यक्तः=अपसारितः ।

एक जंगल में एक गीदड़ था । वह नगर के किनारे इच्छानुसार घूम रहा था कि एक नील के बर्तन मे गिर पड़ा । वहाँ से निकलने में असमर्थ होने के कारण वह प्रातःकाल मरा हुआ सा उसी में पड़ा रहा । उस नील के बर्तन के स्वामी ने उसे मरा हुआ समझ कर दूर ले जाकर फेंक दिया । तब वह वहाँ से भाग गया ।

ततोऽसौ वने गत्वा आत्मानं नीलवर्णमवलोक्याचिन्तयत्—'अहमिदानीमुत्तमवर्णः, तदहं स्वकीयोत्कर्षं किं न साधयामि'—इत्यालोच्य शृगालानाहूय, तेनोक्तम्—'अहं भगवत्या वनदेवतया स्वहस्तेनारण्यराज्ये सर्वौषधिरसेनाभिषिक्तः । [पश्यन्तु मम वर्णम्] । तदद्यारभ्यास्मदाज्ञयास्मिन्नरण्ये व्यवहारः कार्यः ।'

शृगालाश्च तं विशिष्टवर्णमवलोक्य, साष्टाङ्गपातं प्रणम्योचुः—'यथाज्ञापयति देवः' इति । अनेनैव क्रमेण सर्वेष्वरण्यवासिष्वाधिपत्यं तस्य बभूव । ततस्तेन स्वज्ञातिभिरावृतेनाधिक्यं साधितम् । ततस्तेन व्याघ्रसिंहादीनुत्तमपरिजनान्प्राप्य, सदसि शृगालानवलोक्य लज्जमानेनावज्ञया स्वज्ञातयः सर्वे दूरीकृताः । ततो विषण्णान् शृगालानवलोक्य केनचिद् वृद्धशृगालेनैतत्प्रतिज्ञातं—'मा विषीदत, यदनेनानीतिज्ञेन वयं मर्मज्ञाः । [स्वसमीपात्] परिभूतास्तद्यथायं नश्यति तथा विधेयम् । यतोऽमी व्याघ्रादयो वर्णमात्रविप्रलब्धाः शृगालमज्ञात्वा राजानमिमं मन्यन्ते । तद्यथायं परिचीयते तथा कुरुत । तत्र चैवमनुष्ठेयं, यथा वदामि—सर्वे सन्ध्यासमये तत्सन्निधाने महारावमेकदैव करिष्यथ । ततस्तं शब्दमाकर्ण्य जातिस्वभावात्तेनापि शब्दः कर्त्तव्यः' । यतः—

असौ=शृगालः । नीलवर्णम्=नीलरागम् । इदानीम्=साम्प्रतम् । उत्तमवर्णः=श्रेष्ठरागः । स्वकीयोत्कर्षम्=स्वोन्नतिम् । आलोच्य = विचार्य । वनदेवतया=वनदेव्या । स्वहस्तेन = स्वकरेण । अरण्यराज्ये=काननराज्ये । अभिषिक्तः=राज्ये स्थापितः । व्यवहारः=विवाद-निर्णयः (मुकदमा) । साष्टाङ्गपातम्=साष्टाङ्गप्रणा-

मम् । अरण्यवासिषु = काननचारिषु जीवेषु । आधिपत्यम् = प्रभुत्वम् । स्वज्ञातिभिः=स्वपरिवारैः । आवृतेन=परिवेष्टितेन । आधिक्यम्=स्वजातिश्रेष्ठत्वम् । साधितम्=अधिगतम् । उत्तमपरिजनान्=जात्या श्रेष्ठान् अनुचरान् । तेन=शृगालेन । सदसि=सभायाम् । लज्जमानेन = लज्जामनुभवता । अवज्ञया = अपमानेन । दूरीकृताः=निष्कासिताः । विषण्णान् = दुःखितान् । प्रतिज्ञातम् = प्रतिज्ञा कृता । अनीतिज्ञेन=अज्ञेन । मर्मज्ञाः=स्वरहस्यविदः । परिभूताः=अपमानिताः । विधेयम्=करणीयम् । वर्णमात्रविप्रलब्धाः = वर्णपरिवर्तनमात्रेण वञ्चिताः । इमम्=नीलवर्णम्, शृगालम् । परिचीयते=व्याघ्रादिभिः स्वशृगालरूपतः ज्ञायते । तत्-सन्निधाने=तत्समीपे । महारावम्=महान्तं शब्दम् । जातिस्वभावात्=जातिप्रकृत्या ॥

इसके बाद जंगल में जाकर उसने अपने नीले रंग को देखकर विचार किया—'मैं अब उत्तम वर्ण का हो गया हूँ। इसलिए मैं इससे अपनी उन्नति क्यों न कर लूँ।' ऐसा सोचकर उसने गीदड़ों को बुला कर कहा—'मुझे भगवती वनदेवी ने अपने हाथ से सभी औषधियों एवं रसों से नहला कर मेरा राज्याभिषेक किया है। इसलिए आज से इस जंगल में मेरी आज्ञा के अनुसार ही सभी काम किए जायँ।'

गीदड़ों ने उसके विशेष रंग को देखकर प्रणाम करते हुए कहा—'राजन् आप की आज्ञा शिरोधार्य है।' इस प्रकार धीरे-धीरे वह सभी जंगली जानवरों का राजा बन गया। इसके पश्चात् वह अपने को अपनी जाति वालों के बीच में उत्तम समझने लगा। और सिंह, व्याघ्र आदि उत्तम कुल के परिजनों को पाकर तथा अपनी सभा में गीदड़ों को देख कर वह लज्जित हो गया। तब उसने अपनी जाति के सभी लोगों को अपमानित करके वहाँ से निकाल दिया। इस पर गीदड़ों को दुखी देख कर एक बुड्ढे गीदड़ ने कहा—तुम लोग दुखी मत बनो। इस मूर्ख ने हम मर्मज्ञों को अपने पास से अपमानित करके हटा दिया है इसलिए मैं वही करूंगा जिससे इसका विनाश हो। क्योंकि ये बाघ आदि इसके रंग के धोखे में आकर इसे गीदड़ नहीं समझ रहे हैं इसीलिए इसे राजा मानते हैं।' इसलिए ऐसा काम करो जिससे यह परिचित हो जाय (इसे सब गीदड़ जान जायँ)। तुम लोग अब ऐसा करो कि संध्या के समय सभी लोग इसके पास इकट्ठे होकर एक ही साथ चिल्लाना शुरू करो। जिससे उस शब्द को सुन कर जाति स्वभाव से यह भी चिल्लाने लगेगा। ऐसा होने पर इसे सभी पहचान लेंगे। क्योंकि—

'यः स्वभावो हि यस्यास्ति स नित्यं दुरतिक्रमः।
श्वा यदि क्रियते राजा, तत्किं नाश्नात्युपानहम्' ॥ ६० ॥

अन्वयः—यस्य यः स्वभावः अस्ति सः नित्यम् दुरतिक्रमः (भवति) श्वा यदि राजा क्रियते तत्किम् उपानहम् न अश्नाति ॥ ६० ॥

यस्य=पुरुषस्य । यः स्वभावः=या प्रकृतिः । दुरतिक्रमः=दुर्लंघ्यः । श्वा=कुक्कुरः । उपानहम्=चर्मणा निर्मितम् पादत्राणम् । न अश्नाति=न भक्षयति ? ॥

जिसका जो स्वभाव है वह सर्वदा रहने वाला तथा अमिट होता है । यदि कुत्ते को राजा बना दिया जाय तो क्या वह जूता नहीं चबाएगा ? ॥ ६० ॥

ततः शब्दादभिज्ञाय स व्याघ्रेण हन्तव्यः । ततस्तथानुष्ठिते सति तद् वृत्तम् । तथा चोक्तम्—

शब्दात्=तस्य रावात् । अभिज्ञाय=शृगालः अयम् इति परिज्ञाय । हन्तव्यः=व्यापादितव्यः ।

इसके बाद शब्द द्वारा पहचाने जाने पर बाघ उसे मार डालेगा । जैसा कि कहा भी गया है—

'छिद्रं, मर्म च, वीर्यं च, सर्वं वेत्ति निजो रिपुः ।
दहत्यन्तर्गतश्चैव शुष्कं वृक्षमिवानलः' ॥ ६१ ॥

अन्वयः—(यः) निजः रिपुः, छिद्रम्, मर्म, वीर्यम्, च सर्वम्, वेत्ति (सः) अन्तर्गतश्च शुष्कवृक्षम् अनलः इव दहति ॥ ६१ ॥

निजः=स्वजनः । रिपुः=शत्रुः । छिद्रम्=रन्ध्रम्, दौर्बल्यञ्च । मर्म=रहस्यम् । वीर्यम्=पराक्रमम् । सर्वम् वेत्ति = सर्वम् जानाति । अन्तर्गतः = अन्तः स्थितः । अनलः=अग्निः । इव=सदृशः । यथा वृक्षमध्ये स्थितः अग्निः वृक्षम् दहति तथैव राज्ञः स्वजनो भूत्वा शत्रुरपि राजानम् नाशयति ॥

जो व्यक्ति अपनी दुर्बलता, अपने रहस्य, बल और मित्र तथा शत्रु सभी को भलीभाँति समझ लेता है वह शत्रु के भीतर प्रवेश करके उसे उसी प्रकार जला देता है जैसे काठ के भीतर रहने वाली आग उसे जला देती है ॥ ६१ ॥

अतोऽहं ब्रवीमि—'आत्मपक्षं परित्यज्ये' त्यादि ॥ ❀ ॥

राजाह—'यद्येवं तथापि दृश्यतां तावदयं दूरादागतः । तत्सङ्ग्रहे विचारः कार्यः' । चक्रो ब्रूते—'देव ! प्रणिधिस्तावत् प्रहितो, दुर्गञ्च सज्जीकृतम् । अतः शुकोऽप्यानीय प्रस्थाप्यताम् । किन्तु योधबलसमन्वितो भूत्वा, दूरादेव तमवलोकय' । ततः—

दृश्यताम्=विलोक्यताम् । दूरादागतः=दूरेणायातः । तस्यातिथ्यं करणीयम् पश्चात् संग्रहविषये विचारणीयम् इत्यर्थः । प्रणिधिः=गुप्तचरः । प्रहितः=प्रेषितः । सज्जीकृतम्=आवश्यकद्रव्यैः पूरितम् । आनीय=समायाम् उपस्थाप्य । योधबल-समन्वितः=स्वसैनिकबलयुक्तः । तम्=दूतम् ॥

इसलिए मैं कह रहा हूँ—'अपने पक्ष को छोड़कर' इत्यादि। राजा ने कहा—यद्यपि यह ठीक है फिर भी यह दूर से आ रहा है, अतः इससे मिलना आवश्यक है और इसे अपने पास रखने का विचार भी जरूरी है। चकवे ने कहा—राजन्, दूत भेज दिया गया और किला भी तैयार हो गया अतः सुग्गे को भी अब यहाँ बुला लेना चाहिए। किन्तु अपने सैनिक आदि दल-बल के साथ आप उससे दूर ही से बात करें। क्योंकि—

'नन्दं जघान चाणक्यस्तीक्ष्णदूतप्रयोगतः।
तद् दूरान्तरितं दूतं पश्येद्वीरसमन्वितः'॥ ६२॥

अन्वयः—चाणक्यः तीक्ष्णदूतप्रयोगतः नन्दं जघान तत् (नृपः) वीरसमन्वितः दूरान्तरितम् दूतम् पश्येत्॥ ६२॥

चाणक्यः = कौटिल्यः। तीक्ष्णदूतप्रयोगतः = कपटवेशधारिबलिष्ठच्छद्मदूतप्रयोगेण। नन्दम् = तन्नामानं नृपम्। जघान=मारयति स्म। तत्=तस्मात् कारणात्। वीरसमन्वितः=वीरैः परिवेष्टितः सन्। दूरान्तरितम्=दूरेस्थितम्॥६२॥

चाणक्य ने तीक्ष्ण कपट दूत के द्वारा नंद को मार डाला था अतः आप उसे दूर ही रख कर मंत्रियों से युक्त होकर उसे देखें॥ ६२॥

ततः सभां कृत्वाहूतः शुकः, काकश्च। शुकः किञ्चिदुन्नतशिरा दत्तासने उपविश्य ब्रूते—'भो हिरण्यगर्भ! त्वां महाराजाधिराजः श्रीमच्चित्रवर्णः समाज्ञापयति—'यदि जीवितेन, श्रिया वा प्रयोजनमस्ति, तदा सत्वरमागत्यास्मच्चरणौ प्रणम। नो चेदवस्थातुं स्थानान्तरं परिचिन्तय'। राजा सकोपमाह—'आः, सभायामस्माकं न कोऽपि विद्यते य एनं गलहस्तयति?।' तत उत्थाय मेघवर्णो ब्रूते—'देव! आज्ञापय, हन्मि चैनं दुष्टशुकम्।' सर्वज्ञो राजानं, काकं च सान्त्वयन् ब्रूते—'भद्र! मा मैवं। शृणु तावत्—

उन्नतशिराः=गर्वोन्नतमस्तकः। दत्तासने=दत्तलघुविष्टरे। समाज्ञापयति=समादिशति। जीवितेन=प्राणैः। श्रिया=राजलक्ष्म्या। प्रयोजनम्=कार्यम्। सत्वरम्=शीघ्रमेव। अवस्थातुम्=निवासार्थम्। स्थानान्तरम्=अन्यत् स्थानम्। परिचिन्तय=विचारय। एनम्=दूतम्, शुकम्। गलहस्तयति=बहिः निष्कासयति। आज्ञापय=आदेशय। सर्वज्ञः=तन्नामा चक्रवाकः।

इसके पश्चात् राजहंस ने सभा करके सुग्गे और कौवे को वहाँ बुलवाया। अभिमान से सिर उठाये हुए, सुग्गे ने दिए हुए आसन पर बैठकर कहा—'हे हिरण्यगर्भ, महाराजाधिराज श्रीमान चित्रवर्ण ने आप को आदेश दिया है कि

यदि प्राणों और राज्यलक्ष्मी से आपको मतलब हो तो शीघ्र ही आकर तुम मेरे चरणों में प्रणाम करो। नहीं तो दूसरे स्थान पर रहने की बात सोचो।' राजा ने क्रुद्ध होकर कहा—'अरे यहाँ ऐसा कोई नहीं है जो इसके गर्दन में हाथ लगा कर मेरे सामने से इसे हटा दे।' मेघवर्ण ने उठकर कहा—'राजन्, आज्ञा दीजिए। मैं इस दुष्ट सुग्गे को मारूँगा।' सर्वज्ञ नामके चकवे ने राजा और कौवे को शान्त करते हुए कहा—थोड़ा सुनिए तो सही।

'न सा सभा, यत्र न सन्ति वृद्धा,
वृद्धा न ते, ये न वदन्ति धर्मम्।
धर्मः स नो, यत्र न सत्यमस्ति,
सत्यं न तद्यच्छलमभ्युपैति' ॥ ६३ ॥

अन्वयः—यत्र वृद्धाः न सन्ति सा सभा न, ये धर्मम् न वदन्ति ते वृद्धा न यत्र सत्यम् न अस्ति स धर्मः न यत् छलमभ्युपैति स सत्यं न (भवति) ॥ ६३ ॥

यत्र=यस्याम् सभायाम्। सा सभा न = सा सभा नोच्यते। धर्मम्= धर्मवचनम्। न वदन्ति=न कथयन्ति। यत्र सत्यम् = यस्मिन् धर्मे तत्त्वम्। छलमभ्युपैति=कपटेन युक्तः भवति ॥ ६३ ॥

वह सभा, सभा नहीं है जिसमें वृद्ध न हों, वह वृद्ध, वृद्ध नहीं जो धर्म की बातें न कहता हो, वह धर्म-धर्म भी नहीं; जिसमें सत्य न हो और वह सत्य, सत्य भी नहीं जो कपट से भरा हुआ हो ॥ ६३ ॥

यतो राजधर्मश्चैषः—

'दूतो म्लेच्छोऽप्यवध्यः स्याद्राजा दूतमुखो यतः।
उद्यतेष्वपि शस्त्रेषु दूतो वदति नान्यथा' ॥ ६४ ॥

अन्वयः—म्लेच्छः अपि दूतः अवध्यः यतः राजा दूतमुखः स्यात्। शस्त्रेषु उद्यतेषु अपि दूतः अन्यथा न वदति ॥ ६४ ॥

म्लेच्छः = हीनजातिः अस्पृश्यः अपि। अवध्यः = हन्तुमयोग्यः। दूतमुखः= दूतेन स्वाज्ञाप्रेषकः। उद्यतेषु=उत्थापितेषु। शस्त्रेषु, अन्यथा=असत्यम्। न वदति= नोच्चारयति ॥ ६५ ॥

क्योंकि यही राजधर्म है—

जाति से म्लेच्छ (नीच वर्ण का) होने पर भी दूत अवध्य होता है। क्योंकि राजा दूतमुख (दूत द्वारा अपनी बातें कहलाने वाला) होता है। इसीलिए उठे हुए हथियारों के बीच भी दूत झूठी बातें नहीं कहता है। ६४ ॥

अन्यच्च—'स्वापकर्षं, परोत्कर्षं दूतोक्तैर्मन्यते तु कः ?।
सदैवावध्यभावेन दूतः सर्वं हि जल्पति' ॥ ६५ ॥

अन्वयः—दूतोक्तैः स्वापकर्षम्, परोत्कर्षम् तु कः मन्यते। दूतः सदैव अवध्यभावेन सर्वं जल्पति ॥ ६५ ॥

दूतोक्तैः = दूतवचनैः। स्वापकर्षम् = निजावनतिम्। परोत्कर्षम् = अन्यस्य शत्रोश्चोन्नतिम्। कः मन्यते = कः कल्पयति। अवध्यभावेन = निर्भयः सन्। सर्वम्=उत्कर्षापकर्षञ्च निन्दास्तुतिम् वा। जल्पति=कथयति ॥ ६५ ॥

और भी—दूत के मुँह से अपनी तुच्छता और शत्रु की उच्चता सुन कर भला कौन राजा उस पर ध्यान देता है ? क्योंकि अवध्य होने के नाते निर्भय होकर दूत अच्छी बुरी सभी बातें कहता है ॥ ६५ ॥

ततो राजा, काकश्च स्वां प्रकृतिमापन्नौ। शुकोऽप्युत्थाय चलितः। पश्चाच्चक्रवाकेणानीय, प्रबोध्य, कनकालङ्कारादिकं दत्त्वा, सम्प्रेषितः स्वदेशं ययौ। शुकोऽपि विन्ध्याचलं गत्वा, स्वस्य राजानं चित्रवर्णं प्रणतवान्।

तं विलोक्य राजोवाच—'शुक ! का वार्त्ता ?, कीदृशोऽसौ देशः ?'।

शुको ब्रूते—'देव ! संक्षेपादियं वार्त्ता,-सम्प्रति युद्धोद्योगः क्रियताम्। देशश्चासौ कर्पूरद्वीपः स्वर्गैकदेशो, राजा च द्वितीयः स्वर्गपतिः कथं वर्णयितुं शक्यते।' ततः सर्वाञ्छिष्टानाहूय राजा मन्त्रयितुमुपविष्टः। आह च तान्—'सम्प्रति कर्त्तव्ये विग्रहे यथाकर्त्तव्यमुपदेशं ब्रूत। विग्रहः पुनरवश्यं कर्त्तव्यः'। तथा चोक्तम्—

प्रकृतिमापन्नौ=शान्ति प्राप्तौ। प्रबोध्य=सान्त्ववचनैः आश्वास्य। संप्रेषितः= संग्रहितः। ययौ=गतवान्। विन्ध्याचलं=विन्ध्यदेशम्। प्रणतवान्=नमश्चक्रे।

संप्रति = इदानीम्। युद्धोद्योगः = युद्धाय प्रयत्नः। स्वर्गैकदेशः = स्वर्गस्य एकांशः। द्वितीयः=अपरः। स्वर्गपतिः=इन्द्रः। शिष्टान्=सभ्यान्। मन्त्रयितुम्= मन्त्रणां कर्तुम्। कर्तव्यविग्रहे = करणीययुद्धे। यथाकर्तव्यम् = यथाकरणीयम्। उपदेशम=उपायवचनम्।

तब राजा और कौवा शान्त हुए। सुग्गा भी उठकर चला। किन्तु चकवे ने उसे बुला कर सोने के आभूषण आदि देकर विदा किया और वह चला गया। सुग्गे ने जाकर विन्ध्याचल के राजा चित्रवर्ण को प्रणाम किया।

राजा ने उसे देखकर कहा—'क्या समाचार है ? वह देश कैसा है ?'

सुग्गे ने कहा—राजन्, थोड़े मे समाचार यह है कि इस समय आप युद्ध की तैयारी करें। कर्पूरद्वीप स्वर्ग का एक टुकड़ा है और राजा दूसरा इन्द्र है। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।' तब सभी सभासदों को बुलाकर राजा ने विचार करना प्रारम किया। और उसने कहा—इस समय किए जाने वाले युद्ध में क्या करना चाहिए। उसे आप लोग बतायें। लड़ाई तो अवश्य ही करनी है। जैसा कि कहा भी गया है—

'असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः, सन्तुष्टाश्च महीभुजः।
सलज्जा गणिका नष्टा, निर्लज्जाश्च कुलाङ्गनाः' ॥ ६६ ॥

अन्वयः—असंतुष्टा द्विजाः, सन्तुष्टाः च महीभुजः, नष्टाः। सलज्जाः गणिकाः, निर्लज्जाः कुलाङ्गनाः च नष्टाः ॥ ६६ ॥

असंतुष्टाः = संतोषमनापन्नाः। द्विजाः = ब्राह्मणाः। संतुष्टाः=स्ववैभवेन तुष्टिं गताः। महीभुजः=नृपाः। नष्टाः=नष्टप्रायाः। सलज्जाः = लज्जाशीलाः। गणिकाः=वेश्याः। निर्लज्जाः=लज्जाहीनाः। कुलाङ्गनाः=कुलकामिन्यः ॥ ६६ ॥

'असंतुष्ट ब्राह्मण, संतुष्ट (जितना है उतना बहुत है, ऐसा सोचने वाला) राजा, लज्जा करने वाली वेश्या तथा निर्लज्ज कुलीन स्त्री अवश्य नष्ट हो जाती हैं' ॥

दूरदर्शी नाम गृध्रो मन्त्री ब्रूते-'देव ! व्यसनितया विग्रहो न विधिः'। यतः—

व्यसनितया = प्रजापरिजनादिविरुद्धत्वात् आपद्ग्रस्ततया। विग्रहः = युद्धं। न विधिः=नोचितः।

दूरदर्शी नाम के गृद्ध्र ने कहा—राजन्, व्यसन के समय—(मित्र, प्रजा, मंत्री तथा अधिकारी आदि के अनुकूल न होने पर) युद्ध करना ठीक नहीं है क्योंकि—

'मित्रामात्यसुहृद्वर्गा यदा स्युर्दृढभक्तयः।
शत्रूणां विपरीताश्च, कर्त्तव्यो विग्रहस्तदा' ॥ ६७ ॥

अन्वयः—यदा मित्रामात्यसुहृद्वर्गाः दृढभक्तयः शत्रूणाम् विपरीताश्च स्युः तदा विग्रहः कर्तव्यः ॥ ६७ ॥

यदा=यस्मिन्काले। मित्रामात्यसुहृद्वर्गाः=मित्रमंत्रिस्वजनवर्गाः। दृढभक्तयः= स्वराष्ट्रे नृपे च दृढानुरक्ताः, विपरीताः=विरुद्धाः। तदा = तस्मिन्काले। विग्रहः= युद्धं। कर्त्तव्यः=करणीयः ॥ ६७ ॥

मित्र, मंत्री, संबंधी लोग जब राजा के प्रति दृढ़ भाव से श्रद्धा करते हों और शत्रु के विपरीत हों उस समय युद्ध करना चाहिए ॥ ६७ ॥

अन्यच्च—'भूमिर्मित्रं, हिरण्यं च, विग्रहस्य फलं त्रयम्।
यदैतन्निश्चितं भावि, कर्त्तव्यो विग्रहस्तदा' ॥ ६८ ॥

अन्वयः—भूमिः मित्रं हिरण्यं च विग्रहस्य त्रयम् फलम्। यदा एतत् निश्चितम् भावि तदा विग्रहः कर्तव्यः ॥ ६८ ॥

भूमिः=भूभागः। मित्रम्=सुहृत्। हिरण्यम्=सुवर्णम्। विग्रहस्य=युद्धस्य। एतत्=भूम्यादि त्रयम्। निश्चितम्=अवश्यमेव प्राप्तव्यम्। भावि=स्यात् ॥ ६८ ॥

भूमि प्राप्त करना, मित्र प्राप्त करना तथा धन प्राप्त करना यही तीन लड़ाई के फल होते हैं—जब इन तीनों की प्राप्ति निश्चित हो तभी युद्ध करना चाहिए॥

राजाह—'मद्बलं तावदवलोकयतु मन्त्री। तदैतेषामुपयोगो ज्ञायताम्। एवमाहूयतां मौहूर्त्तिकः। स यात्रार्थं शुभलग्नं निर्णीय ददातु'। मन्त्री ब्रूते—'देव! तथापि सहसा यात्राकरणमनुचितम्'। यतः—

मद्बलम्=मत्सैन्यम्। अवलोकयतु=निरीक्षणम् करोतु। तदा=तत्पश्चात्। उपयोगः = युद्धप्रयोगविधिः। मौहूर्तिकः = ज्यौतिषिकः। निर्णीय = शास्त्रदृष्ट्या निर्णयं कृत्वा। शुभलग्नम्=मंगलकालम्। यात्राकरणम्=युद्धाय प्रस्थानम्।

राजा ने कहा—'मंत्री, पहले आप मेरी सेना का निरीक्षण कर लें और उसके उपयोग की व्यवस्था भी जान लें। फिर शुभ दिन का निश्चय करने वाले ज्योतिषी को बुलावें। वह निर्णय करके शुभ मुहूर्त बता दे' मंत्री ने कहा—'फिर भी जल्दी में यात्रा करना अनुचित है'। क्योंकि—

'विशन्ति सहसा मूढा येऽविचार्य द्विषद्बलम्।
खड्गधारापरिष्वङ्गं लभन्ते ते सुनिश्चितम्' ॥ ६९ ॥

अन्वयः—ये मूढाः द्विषद्बलम् अविचार्य सहसा विशन्ति ते सुनिश्चितम् खड्गधारापरिष्वङ्गम् लभन्ते ॥ ६९ ॥

ये मूढाः=विचारशून्याः। द्विषद्बलम्=शत्रुपराक्रमम्। अविचार्य = अनालोच्य। विशन्ति = शत्रुदेशे, सेनायाम् विग्रहे वा प्रविशन्ति। ते = मूढाः। सुनिश्चितम्=ध्रुवम्। खड्गधारापरिष्वङ्गम्=कृपाणधारालिङ्गनम् मृत्युमित्यर्थः। लभन्ते=प्राप्नुवन्ति ॥ ६९ ॥

'जो मूर्ख शत्रु की सेना अथवा बल का विचार किए बिना ही उसके देश में घुस जाते हैं वे निश्चय ही तलवार की धार का आलिंगन पाते हैं अर्थात् तलवार से काट दिए जाते हैं' ॥ ६९ ॥

राजाह—'मन्त्रिन्! ममोत्साहभङ्गं सर्वथा मा कृथाः। विजिगीषुर्यथा परभूमिमाक्रामति तथा कथय।' गृध्रो ब्रूते—'देव! तत्कथयामि। किन्तु तदनुष्ठितमेव फलप्रदम्'। तथा चोक्तम्—

ममोत्साहभङ्गः=ममोत्साहस्य विरोधः। सर्वथा=केनापि हेतुना। मा कृथाः=मा कार्षीः। विजगीषुः = विजयाभिलाषी। यथा = येन प्रकारेण। परभूमिम्=शत्रुदेशम्। आक्रामति = स्वाधीनताम् नयति। तदनुष्ठितम् = तस्यानुसारेण कृतम् एव। फलप्रदम्=सफलम्।

राजा ने कहा—'मन्त्री अब किसी भी प्रकार से मेरे उत्साह को नष्ट न करो। विजय चाहनेवाला जिन उपायों से शत्रुदेश को प्राप्त करता है उन्हें बताओ।' गृद्ध ने कहा—'उसे कह रहा हूँ। किन्तु उसके अनुसार काम करने से ही लाभ होगा।' जैसा कि कहा भी गया है—

'किं मन्त्रेणाननुष्ठाने शास्त्रवित्पृथिवीपतेः।
न ह्यौषधपरिज्ञानाद्व्याधेः शान्तिः क्वचिद्भवेत्॥ ७०॥

अन्वयः—शास्त्रवित्पृथिवीपते अननुष्ठाने मन्त्रेण किम् (प्रयोजनम्) हि औषधपरिज्ञानात् क्वचित् व्याधेः शान्तिः न भवेत्॥ ७०॥

शास्त्रवित्पृथ्वीपतेः=शास्त्रज्ञस्य राज्ञः अपि। अननुष्ठानेन=अनाचरितेन। मन्त्रेण=परामर्शेन। किम् = किम् फलम्, किमपि नेत्यर्थः। औषधपरिज्ञानात्=औषधस्य ज्ञानात्। व्याधेः = रोगस्य। शान्तिः = शमनम्॥ ७०॥

'यदि शास्त्रों का ज्ञाता होते हुए भी राजा मन्त्रणा के अनुसार कार्य न करे तो उससे उसे क्या लाभ होगा। भला औषधि का ज्ञान होने से ही कहीं रोग दूर हो सकता है?॥ ७०॥

राजादेशश्चानतिक्रमणीयः। —इति यथाश्रुतं निवेदयामि। शृणु—'देव!

राजादेशः=राजाज्ञा। अनतिक्रमणीयः = नोल्लङ्घनीयः। यथाश्रुतं = यथावर्णितम्। निवेदयामि=कथयामि।

राजा की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। इसलिए मैंने जैसा सुना है वैसा कह रहा हूँ। सुनिए—

'नद्यद्रि-वन-दुर्गेषु यत्र यत्र भयं नृप!।
तत्र तत्र च सेनानीर्यायाद्व्यूहीकृतैर्बलैः'॥ ७१॥

अन्वयः—हे नृप, नदी-अद्रि-वन-दुर्गेषु यत्र यत्र भयम् (अस्ति) तत्र तत्र व्यूहीकृतैः बलैः (सह) सेनानीः यायात्॥ ७१॥

यत्र यत्र=यस्मिन् यस्मिन् स्थाने । नद्यद्रिवनदुर्गेषु = सरित्पर्वतकाननादिदुर्गमस्थलेषु । व्यूहीकृतैः=आकृतिविशेषेण सज्जितैः । बलैः=सैन्यैः सह । सेनानीः=सेनापतिः । यायात्=गच्छेत् ॥ ७१ ॥

'नदी, पहाड़, जंगल आदि भयंकर स्थानों में जहाँ-जहाँ भय का कारण हो, हे राजन् ! वहाँ-वहाँ मोर्चेबन्दी से व्यवस्थित सेनाओं के साथ सेनापति चले जायँ' ॥

'बलाध्यक्षः पुरो यायात्प्रवीरपुरुषान्वितः ।
मध्ये कलत्रं, स्वामी च, कोशः, फल्गु च यद्बलम्' ॥ ७२ ॥

अन्वयः—प्रवीरपुरुषान्वितः बलाध्यक्षः पुरः यायात् मध्ये कलत्रं, स्वामी, कोशः, यत् फल्गुबलम् च (यायात्) ॥ ७२ ॥

प्रवीरपुरुषान्वितः—श्रेष्ठवीरयोद्धृसमन्वितः । बलाध्यक्षः=सेनापतिः । पुरः=अग्रे । कलत्रम्=राजान्तःपुरम् । स्वामी=राजा । फल्गुबलम्=अल्पबलसैन्यम् ॥७२॥

'बड़े-बड़े योद्धा पुरुषों के साथ प्रधान सेनापति सेना के आगे रहे, बीच में स्त्रियाँ, राजा, खजाना और अल्प बलवाली सेना रहे' ॥ ७२ ॥

'पार्श्वयोरुभयोरश्वा, अश्वानां, पार्श्वतो रथाः ।
रथानां पार्श्वतो नागा, नागानां च पदातयः' ॥ ७३ ॥

अन्वयः—उभयोः पार्श्वयोः अश्वाः, अश्वानाम् पार्श्वतो रथाः, रथानाम् पार्श्वतो नागाः, नागानाम् च पार्श्वतो पदातयः ॥ ७३ ॥

उभयोः=द्वयोः । पार्श्वयोः=(बगल में) । अश्वाः=घोटकाः । नागाः=गजाः पदातयः=पत्तिसैनिकाः (पैदल सैनिक) ॥ ७३ ॥

'उसके दोनों ओर (दाएँ बाएँ) घोड़े, घोड़ों के बगल में रथ और रथों के बगल में हाथी तथा हाथियों के बगल में पैदल सैनिक रहें' ॥ ७३ ॥

'पश्चात्सेनापतिर्यायात्खिन्नानाश्वासयञ्छनैः ।
मन्त्रिभिः सुभटैर्युक्तः प्रतिगृह्य बलं नृपः'—॥ ७४ ॥

अन्वयः—पश्चात् सेनापतिः खिन्नान् शनैः आश्वासयन् यायात् (तत्पश्चात्) मन्त्रिभिः सुभटैः युक्तः नृपः बलम् प्रतिगृह्य (यायात्) ॥ ७४ ॥

खिन्नान्=श्रान्तान् सैनिकान् । शनैराश्वासयन् = मृदुवचनैः सान्त्वयन् । यायात्=गच्छेत् । नृपः = राजा । मन्त्रिभिः=सचिवैः । सुभटैः=सुशूरैः । युक्तः=सहितः । बलम्=सेनाम् । प्रगृह्य=समादाय ॥ ७४ ॥

'उसके पीछे थके हुए लोगों को मीठी-मीठी बातों से धैर्य देते हुए सेनापति चले और उसके पीछे मन्त्रियों और अच्छे-अच्छे वीरों से युक्त सेना लिए हुए राजा चले' ॥ ७४ ॥

'समेयाद्विषमं नागैर्जलाढ्यं समहीधरम् ।
सममश्वैर्जलं नौभिः, सर्वत्रैव पदातिभिः' ॥ ७५ ॥

अन्वयः—विषमम्=(स्थलम्) जलाढ्यम् समहीधरम् (स्थलम्) च नागैः, समम् (भूमिम्) अश्वैः, जलम् नौभिः, पदातिभिः सर्वत्रैव समेयात् ॥ ७५ ॥

विषमम् = उच्चावचम् प्रदेशम् । जलाढ्यम् = जलपूर्णम् । समहीधरम्=पर्वतीयाम् भूमिम् । गजैः=नागैः । समम् = समतलम् । अश्वैः = घोटकैः । जलम्= सजलम्, नद्यादिप्रदेशम् । पदातिभिः = पत्तिभिः । सर्वत्र = समम् विषमम् वा प्रदेशम् ॥ ७५ ॥

'ऊँची नीची, जल से भरी हुई तथा पहाड़ियों से घिरी हुई भूमि पर हाथियों से, समतल भूमि पर घोड़ों से, नदी आदि जल प्रदेश में नाव से तथा सभी जगहों में पैदल सैनिकों द्वारा यात्रा करनी चाहिए' ॥ ७५ ॥

'हस्तिनां गमनं प्रोक्तं प्रशस्तं जलदागमे ।
तदन्यत्र तुरङ्गाणां, पत्तीनां सर्वदैव हि' ॥ ७६ ॥

अन्वयः—जलदागमे हस्तिनाम् गमनम् प्रशस्तम् प्रोक्तम् तदन्यत्र तुरङ्गाणाम्, सर्वदैव हि पत्तीनाम् (गमनम् प्रशस्तम्) ॥ ७६ ॥

जलदागमे = वर्षारम्भे । हस्तिनाम् = गजानाम् । गमनम् = यात्राकरणम् । प्रशस्तम् = श्रेष्ठतरम् । प्रोक्तम्=कथितम् । तदन्यत्र = वर्षाकालातिरिक्ते । तुरङ्गमाणाम्=अश्वानाम् । पत्तीनाम्=पदातीनाम् । सर्वदैव=सर्वकालेषु एव ॥ ७६ ॥

'वर्षा के समय हाथियों से यात्रा करना उत्तम है । और अन्य समय में घोड़ों से तथा पैदल तो हर समय यात्रा अच्छी होती है' ॥ ७६ ॥

'शैलेषु, दुर्गमार्गेषु विधेयं नृपरक्षणम् ।
स्वयोधै रक्षितस्यापि शयनं योगनिद्रया' ॥ ७७ ॥

अन्वयः—शैलेषु दुर्गमार्गेषु नृपरक्षणम् विधेयम् । स्वयोधैः रक्षितस्यापि (राज्ञः) योगनिद्रया शयनम् (उचितम्) ॥ ७७ ॥

शैलेषु=पर्वतेषु । दुर्गमार्गेषु = अगम्यमार्गेषु । नृपरक्षणम् = राज्ञः रक्षाकरणम् । विधेयम्=उचितम् । स्वयोधैः = स्वभटैः । रक्षितस्यापि = पालितस्यापि । योगनिद्रया=अप्रगाढनिद्रया । शयनम् = शयनम् उचितम् ॥ ७७ ॥

पर्वतों और बीहड़ रास्तों में राजा की रक्षा होनी चाहिए और राजा को अपने वीरों द्वारा रक्षित होने पर भी योगनिद्रा से (उखड़ी-उखड़ी नींद अर्थात् सावधानी से) ही सोना चाहिए ॥ ७७ ॥

नाशयेत्कर्षयेच्छत्रून् दुर्ग-कण्टक-मर्दनैः ।
परदेशप्रवेशे च कुर्यादाटविकान्पुरः ॥ ७८ ॥

अन्वयः—दुर्गकण्टकमर्दनैः शत्रून् नाशयेत् कर्षयेत् वा । परदेशप्रवेशी आटविकान् पुरः कुर्यात् ॥ ७८ ॥

दुर्गकंटकमर्दनैः=दुर्गबाधाविनाशनैः । शत्रून् = रिपून् । नाशयेत् = विनाशयेत् । कर्षयेत्=क्लेशयेत् । परदेशप्रवेशी=शत्रुदेशप्रवेशी । आटविकान्=वनेचरान् किरातादीन् इत्यर्थः । पुरः=अग्रे ॥ ७८ ॥

किले को तोड़ फोड़ कर और रास्ते की रुकावटों को कुचल कर शत्रुओं का विनाश करना चाहिए तथा उन्हें कष्ट पहुँचाना चाहिए और शत्रुदेश में घुसने के पहिले आगे-आगे जंगली व्यक्तियों को रास्ता बताने के लिए नियुक्त कर देना चाहिए ॥ ७८ ॥

'यत्र राजा तत्र कोशो, विना कोशं न राजता ।
सुभटेभ्यस्ततो दद्यात्, को हि दातुर्न युध्यते' ॥ ७९ ॥

अन्वयः—यत्र राजा (विद्यते) तत्र कोशः (स्थाप्यः) कोशं विना राजता न । ततः सुभटेभ्यः दद्यात्, दातुः को हि न युध्यते ॥ ७९ ॥

यत्र राजा=यस्मिन् स्थाने राजा विद्यते । तत्र=तस्मिन् स्थाने । कोशः=कोशः संस्थाप्यः । राजता = नृपत्वम् । ततः = कोशात् । सुभटेभ्यः = वीरसैनिकेभ्यः । दातुः=दातुः अर्थे । न युध्येत्=युद्धं न करोति ॥ ७९ ॥

जहाँ राजा रहता है वहीं खजाना भी रहता है क्योंकि खजाने के बिना राजा का राजत्व व्यर्थ है । राजा को चाहिए कि उस खजाने से सेवकों को खूब धन दे क्योंकि दाता राजा के लिए कौन नहीं लड़ाई करता अर्थात् सभी करते हैं ॥ ७९ ॥

यतः—'न नरस्य नरो दासो, दासस्त्वर्थस्य भूपते ! ।
गौरवं लाघवं वापि धनाधननिबन्धनम्' ॥ ८० ॥

अन्वयः— हे भूपते नरः नरस्य दासः न (अपितु) अर्थस्य दासः भवति । गौरवम् लाघवम् वापि धनाधननिबन्धनम् (भवति) ॥ ८० ॥

भूपते=राजन् । नरः=मनुष्यः । नरस्य=मनुष्यस्य । दासः न = सेवकः न । अर्थस्य=धनस्य । गौरवम्=महत्त्वम् । लाघवम्=लघुत्वम् च । धनाधननिबन्धनम्=धनधनाभावहेतुकम् ॥ ८० ॥

क्योंकि हे राजन्, मनुष्य मनुष्य की चाकरी नहीं करता बल्कि वह धन का गुलाम होता है । और बड़ाई छोटाई भी धन के आधार पर ही निश्चित की जाती है ॥ ८० ॥

'अभेदेन च युध्येत, रक्षेच्चैव परस्परम् ।
फल्गु सैन्यं च यत्किञ्चिन्मध्ये व्यूहस्य कारयेत्' । ८१ ॥

अन्वयः—परस्परम् अभेदेन युध्यत रक्षेत् च यत्किंचित् फल्गु सैन्यं च (तत्) व्यूहस्य मध्ये कारयेत् ॥ ८१ ॥

परस्परम्=स्वभटाः अन्योन्यम् । अभेदेन=मिलित्वा । युध्येत=युद्धं कुर्यात् । रक्षेत्=रक्षणं कुर्यात् । फल्गु=निस्तत्त्वम् निर्बलमित्यर्थः । सैन्यम्=बलम् । व्यूहस्य=बलविन्यासस्य (मोर्चाबंदी) । मध्ये=अन्तराले । कारयेत्=स्थापयेत् ॥ ८१ ॥

सैनिकों को परस्पर मिल कर लड़ना तथा एक दूसरे की रक्षा करनी चाहिए । और निर्बल सेना को व्यूह (मोर्चेबन्दी) के बीच में रखना चाहिए ॥

'पदातींश्च महीपालः पुरोऽनीकस्य योजयेत् ।
उपरुध्यारिमासीत, राष्ट्रं चास्योपपीडयेत्' ॥ ८२ ॥

अन्वयः—महीपालः पदातीन् च अनीकस्य पुरः योजयेत् । अरिम् उपरुध्य आसीत अस्य राष्ट्रं च उपपीडयेत् ॥ ८२ ॥

महीपालः=नृपः । पदातीन्=पदिकान । अनीकस्य=सेनायाः । पुरः=अग्रे । योजयेत् = स्थापयेत् । अरिम्=शत्रुम् । उपरुध्य = समन्तात् अवरोधम् कृत्वा । आसीत=तिष्ठेत् । अस्य=शत्रोः । राष्ट्रम्=राज्यम् । उपपीडयेत्=क्लेशयेत् ॥८२॥

राजा को चाहिए कि वह पैदल सेना को अन्य सेना के आगे रखे, शत्रु को चारों ओर से घेर ले (घेरा डाले) तथा उसके राज्य को (लूट पाट तथा फसल आदि नष्ट करके) पीड़ा पहुँचाये ॥ ८२ ॥

'स्यन्दनाश्वैः समे युध्येदनूपे नौ-द्विपैस्तथा ।
वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले' ॥ ८३ ॥

अन्वयः—समे स्यन्दनाश्वैः, अनूपे नौद्विपैः, वृक्षगुल्मावृते चापैः, तथा स्थले असिचर्मायुधैः युद्ध्येत् ॥ ८३ ॥

समे=समप्रदेशे । स्यन्दनाश्वैः=रथघोटकैः । अनूपे = जलप्राये । नौद्विपैः= नौकाभिः गजैश्च । वृक्षगुल्मावृते = तरुवीरुदाच्छादिते प्रदेशे । चापैः=धनुर्भिः । स्थले=भूमौ । असिचर्मायुधैः=खड्गचर्मप्रभेदिकाभिः । युध्येत्=युद्धं कुर्यात् ॥

समतल भूमि पर रथ और घोड़ों से, जलयुक्त स्थान में नावों तथा हाथियों से, वृक्ष और झाड़ियों से ढके हुए स्थान पर धनुष तथा स्थल भूमि पर तलवार और खांड़े से युद्ध करना चाहिए ॥ ८३ ॥

'दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम् ।
भिन्द्याच्चैव तडागानि, प्राकारान्परिखास्तथा' ॥ ८४ ॥

अन्वयः—अस्य यवसान्नोदकेन्धनम् सततम् दूषयेत् तडागानि तथा प्राकारान् परिखा: च भिन्द्यात् एव ॥ ८४ ॥

अस्य = शत्रोः । यवसम् = घासम् । अन्नम् = भोज्यपदार्थम् । उदकम् = जलम् । इन्धनम् = इध्मम् । सततम् = निरन्तरम् । दूषयेत् = विषादिप्रयोगेण दूषितम् कुर्यात् । तडागानि = सरांसि । प्राकारान् परिखा: = सालान् खेयानि च (किले की चहारदिवारी और खाई) भिन्द्यात् = नष्टं कुर्यात् ॥ ८४ ॥

शत्रु की घास, अन्न तथा जल आदि को (विषादि प्रयोगों से) दूषित कर देना चाहिए, तालाबों किले की चहार दीवारों और खाइयों को तोड़ फोड़ देना चाहिए ॥ ८४ ॥

'बलेषु प्रमुखो हस्ती, न तथाऽन्यो महीपतेः ।
निजैरवयवैरेव मातङ्गोऽष्टायुधः स्मृतः' ॥ ८५ ॥

अन्वयः—महीपतेः बलेषु (यथा) हस्ती प्रमुखः तथा अन्यः न (प्रमुखः) निजैः अवयवैः मातङ्गः अष्टायुधः स्मृतः ॥ ८५ ॥

महीपतेः=नृपस्य । बलेषु=सैन्येषु । हस्ती=गजः । प्रमुखः=मुख्यः । निजैः= स्वकीयैः । अवयवैः=अङ्गैः । मातङ्गः=गजः । अष्टायुधः=शुण्डपुच्छदन्तद्वयपाद-चतुष्टयैः अवयवैः युद्धं करोति अतः अष्टायुधः कथ्यते ॥ ८५ ॥

राजा की सेना में हाथी जितना प्रधान होता है उतना और कोई नहीं, क्योंकि अपने अंगों (१ सूँड़, १ पूँछ, २ दाँत तथा ४ पैर) के कारण हाथी आठ हथियारों वाला कहा जाता है ॥ ८५ ॥

'बलमश्वश्च सैन्यानां प्राकारो जङ्गमो यतः ।
तस्मादश्वाधिको राजा विजयी स्थलविग्रहे' ॥ ८६ ॥

अन्वयः—सैन्यानाम् बलम् अश्वः यतः (सः) जंगमः प्राकारः । तस्मात् अश्वाधिकः राजा स्थलविग्रहे विजयी (भवति) ॥ ८६ ॥

सैन्यानाम्=सैनिकानाम् । अश्वः=घोटकः । जंगमः=गमनशीलः । प्राकारः= सालः । अश्वाधिकः=अश्वसेनाबहुलः । स्थलविग्रहे = स्थलयुद्धे । विजयी=जयम् लभेत ॥ ८६ ॥

घोड़ा भी सेना का मुख्य बल होता है क्योंकि वह एक चलती फिरती दीवार है। इसलिए स्थल की लड़ाई में अधिक घोड़ों वाला राजा अवश्य विजयी होता है ॥ ८६ ॥

'तथा चोक्तं—'युध्यमाना हयारूढा देवानामपि दुर्जयाः ।
अपि दूरस्थितास्तेषां वैरिणो हस्तवर्त्तिनः' ॥ ८७ ॥

अन्वयः—हयारूढाः युध्यमानाः देवानाम् अपि दुर्जयाः (भवन्ति) तेषाम् दूरस्थिताः वैरिणः अपि हस्तवर्तिनः भवन्ति ॥ ८७ ॥

हयारूढाः = अश्वारूढाः । युध्यमानाः=युद्धं कुर्वाणाः । देवानाम्=सुराणाम् । दुर्जयाः=जेतुमशक्याः । तेषाम् = अश्वारूढानाम् । दूरस्थिताः=दूरस्थाः । वैरिणः= शत्रवः । हस्तवर्तिनः = करागताः इव भवन्ति ॥ ८७ ॥

और भी कहा गया है—

घोड़े पर चढ़ कर युद्ध करने वाले राजा को देवता भी नहीं जीत सकते हैं। क्योंकि बहुत दूरी पर रहने वाला शत्रु भी मानो उसके हाथ में ही स्थित होता है ॥

'प्रथमं युद्धकारित्वं, समस्तबलपालनम् ।
दिङ्मार्गाणां विशोधित्वं, पत्तिकर्म प्रचक्षते' ॥ ८८ ॥

अन्वयः—प्रथमम् युद्धकारित्वम्, समस्तबलपालनम्, दिङ्-मार्गाणाम् विशोधित्वम् पत्तिकर्म प्रचक्षते ॥ ८८ ॥

प्रथमम् = अग्रतः । युद्धकारित्वम् = योधनम् । समस्तबलपालनम् = सम्पूर्ण-सैन्यरक्षणम् । दिङ्मार्गाणाम् = समस्तदिक्पथानाम् । विशोधित्वम् = परिष्कर-णम् । पत्तिकर्म = पदातिकार्यम् । प्रचक्षते = कथ्यते ॥ ८८ ॥

सभी सेनाओं के आगे होकर युद्ध करना, सारी सेना की रक्षा करना तथा सभी ओर के रास्तों को साफ करना पैदल सेना के काम हैं ॥ ८८ ॥

'स्वभावशूरमस्त्रज्ञमविरक्तं, जितश्रमम् ।
प्रसिद्धक्षत्त्रियप्रायं बलं श्रेष्ठतमं विदुः' ॥ ८९ ॥

अन्वयः—स्वभावशूरम् अस्त्रज्ञम् अविरक्तम्, जितश्रमम् प्रसिद्धक्षत्रिय-प्रायम् बलम् श्रेष्ठतमम् विदुः ॥ ८९ ॥

स्वभावशूरम् = प्रकृत्या वीरम् । अस्त्रज्ञम् = अस्त्रज्ञानयुक्तम् । अविरक्तम् = स्वपक्षम् प्रति अनुरक्तम् । जितश्रमम् = श्रमशीलम् । प्रसिद्धक्षत्रियप्रायम् = ख्यातक्षत्रियबहुलम् । बलम् = सैन्यम् । श्रेष्ठतमम् = उत्कृष्टम् । विदुः = जानी-यात् ॥ ८९ ॥

स्वभाव से ही वीर, हथियार चलाने में निपुण, राजा के प्रति श्रद्धा रखने वाली सभी प्रकार के परिश्रम को सहन करने वाली प्रसिद्ध क्षत्रियों से भरी हुई सेना श्रेष्ठ मानी जाती है ॥ ८९ ॥

'यथा प्रभुकृतान्मानाद्युध्यन्ते भुवि मानवाः ।
न तथा बहुभिर्दत्तैर्द्रविणैरपि भूपते' ! ॥ ९० ॥

अन्वयः—हे भूपते यथा प्रभुकृतात् मानात् भुवि मानवाः युध्यन्ते तथा दत्तैः बहुभिः द्रविणैः अपि न (युध्यते) ॥ ९० ॥

हे भूपते—हे राजन् । यथा = येन प्रकारेण । प्रभुकृतात् = स्वामिकृतात् । मानात्=सम्मानात् । भुवि—जगति । मानवाः=मनुष्याः । द्रविणैः=धनैः ॥९०॥

इस संसार में मनुष्य राजा से सम्मान पाकर जितना युद्ध करते हैं उतना अत्यधिक धन देने पर भी नहीं करते ॥ ९० ॥

'वरमल्पबलं सारं न कुर्यान्मुण्डमण्डलीम् ।
कुर्यादसारभङ्गो हि सारभङ्गमपि स्फुटम्' ॥ ९१ ॥

अन्वयः—सारम् अल्पबलम् वरम् (अतः) मुण्डमण्डलीम् न कुर्यात् (यतः) असारभङ्गः सारभङ्गमपि स्फुटम् कुर्यात् ॥ ९१ ॥

सारम्—तत्त्वयुक्तम्, दृढपराक्रमम् । अल्पबलम् = लघुसैन्यम् । वरम्= श्रेष्ठम् । मुण्डमण्डलीम्=निर्बलमनुष्यमुण्डमण्डलम् निर्बलानाम् आधिक्येन संग्रहणम् इत्यर्थः । असारभङ्गः—निर्बलसैन्यपराजयः । सारभङ्गम् = सबलशूरसैन्यपराजयम् । स्फुटम्=निश्चितम् ॥ ९१ ॥

तत्त्वयुक्त (बलवानों से पूर्ण) छोटी सेना अच्छी होती है अतः सिर गिनाने के लिए व्यर्थ बहुत से साधारण व्यक्तियों को सेना में नहीं रखना चाहिए । क्योंकि बलहीन सेना के टूट जाने पर (हार कर भाग जाने पर) बलवान सेना भी तितर-बितर हो जाती है ॥ ९१ ॥

'अप्रसादोऽनधिष्ठानं, देयांशहरणं च यत् ।
कालयापोऽप्रतीकारस्तद्वैराग्यस्य कारणम् ॥ ९२ ॥

अन्वयः—अप्रसादः, अनधिष्ठानम्, देयांशहरणम्, कालयापः, अप्रतीकारः च तत् वैराग्यस्य कारणम् (भवति) ॥ ९२ ॥

अप्रसादः = सैनिकान् प्रति राज्ञः अकृपा, सुष्ठुकार्यकरणेऽपि पारितोषिकादिभिः सम्मानाभावः । अनधिष्ठानम् = योग्यबलाध्यक्षाभावः । देयांशहरणम्= देयवेतनादिसङ्कोचः । कालयापः = वेतनादिदाने विलम्बः । अप्रतीकारः = सैन्यक्लेशदूरीकरणे अशक्तिः । तत्=तं प्रति । वैराग्यकारणम्=सैन्यानाम् उदासीनतायाः हेतुः ॥ ९२ ॥

१. अप्रसाद (अच्छा कार्य करने पर भी सैनिकों को पुरस्कृत न करना), २. योग्य सेनापति की कमी, ३. दिए हुए धन को पुनः छीन लेना, ४. कुछ देने में समय गवाना (टाल मटोल करना) ५. सैनिकों के कष्ट निवारण का उपाय न करना-यही पाँच सैनिकों के असंतोष के कारण होते हैं ॥ ९२ ॥

'अपीडयन् बलं शत्रून् जिगीषुरभिषेणयेत् ।
सुखसाध्यं द्विषां सैन्यं दीर्घयानप्रपीडितम्' ॥ ९३ ॥

अन्वयः—जिगीषुः बलम् अपीडयन् शत्रून् अभिषेणयेत् (यतः) दीर्घयानप्रपीडितम् द्विषाम् सैन्यम् सुखसाध्यम् (भवति) ॥ ९३ ॥

जिगीषुः = विजयेच्छुः । बलम् = सैन्यम् । अपीडयन् = अक्लेशयन् । शत्रून् = अरीन् । अभिषेणयेत् = अभियायात् (आक्रमण करे) दीर्घयानप्रपीडितम् = दीर्घमार्गपरिश्रान्तम् । द्विषाम् = शत्रूणाम् । सैन्यम् = बलम् । सुखसाध्यम् = अनायासेन जेतुं शक्यम् ॥ ९३ ॥

विजय की इच्छा रखने वाले राजा को चाहिए कि थोड़ी-थोड़ी दूर चलकर वह अपनी सेना को बिना कष्ट पहुँचाए हुए ही शत्रु पर चढ़ाई करे । क्योंकि बहुत दूरी से आने के कारण थकी हुई शत्रु की सेना आसानी से पराजित की जा सकती है ॥ ९३ ॥

'दायादादपरो यस्मान्नास्ति भेदकरो द्विषाम् ।
तस्मादुत्थापयेद्यत्नाद्दायादं तस्य विद्विषः' ॥ ९४ ॥

अन्वयः—द्विषाम् भेदकरः दायादात् अपरः मंत्रः नास्ति तस्मात् तस्य विद्विषः दायादम् यत्नात् उत्थापयेत् ॥ ९४ ॥

द्विषाम् = शत्रूणाम् । भेदकरः = विघटनकारकः । दायादात् = सपिण्डात् (पट्टीदार) अवरः मंत्रः=अन्य उपायः । विद्विषः=शत्रोः । दायादम् = सपिण्डम् । यत्नात्=प्रयत्नात् । उत्थापयेत्=तेन सह विरोधम् कारयेत् ॥ ९४ ॥

शत्रु के हिस्सेदारों के अतिरिक्त उनमें फूट उत्पन्न करने वाला कोई दूसरा उत्तम उपाय नहीं होता । इसलिए बड़े प्रयत्न के साथ शत्रु के हिस्सेदारों को उसके विपरीत खड़ा कर देना चाहिए ॥ ९४ ॥

'सन्धाय युवराजेन, यदि वा मुख्यमन्त्रिणा ।
अन्तःप्रकोपणं कुर्यादभियोक्ता स्थिरात्मनः' ॥ ९५ ॥

अन्वयः—युवराजेन यदि वा मुख्यमंत्रिणा संधाय स्थिरात्मनः अभियोक्तुः अन्तःप्रकोपणम् कार्यम् ॥ ९५ ॥

युवराजेन=राजकुमारेण । यदि वा=अथवा । मुख्यमंत्रिणा=प्रधानामात्येन । संधाय=गुप्तसंधिम् विधाय । स्थिरात्मनः=दुर्गबलाद्याश्रयेण सुदृढस्य । अभियोक्तुः युध्यमानस्य शत्रोः । अन्तःप्रकोपणम् = गृहयुद्धम्, विद्रोहम् वा । कार्यम् = करणीयम् ॥ ९५ ॥

राजकुमार अथवा मन्त्री के साथ गुप्त संधि करके किले आदि में दृढ़ स्थिति वाले युद्ध में संलग्न शत्रु के घर में ही विद्रोह करा देना चाहिए ॥ ९५ ॥

'क्रूरामित्रं रणे चापि भङ्गं दत्त्वा विघातयेत् ।
अथवा गोग्रहाकृष्टया, तन्मुख्याश्रितबन्धनात्' ॥ ९६ ॥

अन्वयः—क्रूरामित्रम् रणे भङ्गम् दत्त्वा विघातयेत् अथवा तन्मुख्याश्रित-बन्धनात् गोग्रहाकृष्टया (विघातयेत्) ॥ ९६ ॥

क्रूरामित्रम्=दुष्टशत्रुम् । रणे=युद्धे । गोग्रहाकृष्टया=वत्सबन्धनेन गोग्रहण-वत् । तन्मुख्याश्रितबन्धनात्=दारपुत्रादिबन्धनात् । भङ्गम्=पराजयम् । विघात-येत्=हन्यात् ॥ ९६ ॥

दुष्ट शत्रु को युद्ध में पराजित करके मार डालना चाहिए अथवा जैसे बछड़ा पकड़ लेने से गाय स्वयम् पास आजाने से पकड़ ली जाती है उसी प्रकार शत्रु के सम्बन्धियों को पकड़ कर उसे अपने वश में करके मरवा देना चाहिए ॥ ९६ ॥

'स्वराज्यं वासयेद्राजा परदेशापहरणात् ।
अथवा दान-मानाभ्यां वासितं धनदं हि तत्' ॥ ९७ ॥

अन्वयः—परदेशापहरणात् राजा स्वराज्यम् वासयेत् अथवा दानमानाभ्याम् (वशीकृत्य वासयेत्) ' तत् वासितम् धनदम् हि भवति ॥ ९७ ॥

परदेशापहरणात्=शत्रुदेशम् उद्वास्य । स्वराज्यम्=स्वराष्ट्रम् । दानमाना-भ्याम्=शत्रुजनान् अभयदान-सम्मानादिभिः । तत् = दानमानाभ्याम् पुरस्कृतम् । धनदम्=लाभकरम् ॥ ९७ ॥

राजा को चाहिए कि शत्रु देश को उजाड़ कर वहाँ के लोगों को अपने देश में ले आकर बसाए । अथवा उन्हें धन तथा सम्मान के लोभ से अपने देश में ले आए । क्योंकि इस प्रकार बसाए गए लोगों से धन की प्राप्ति होती है ॥९७॥

अथवा किं बहुनोदितेन—

बहुनोदितेन=प्रलापाधिकेन ।

अथवा, अधिक कहने से क्या लाभ ?

'आत्मोदयः, परग्लानिर्द्वयं नीतिरितीयती ।
तदूरीकृत्य कृतिभिर्वाचस्पत्यं प्रतायते ॥ ९८ ॥

अन्वयः—आत्मोदयः परग्लानिः इतीयती द्वयम् नीतिः तद् ऊरीकृत्य कृतिभिः वाचस्पत्यम् प्रतायते ॥ ९८ ॥

आत्मोदयः=स्वोन्नतिः । परग्लानिः=शत्रुहानिः । इतीयती=(इति + इयती) एतावन्मात्रमेव । नीतिः = राजनीतिसारम् । तद्=उक्तद्वयम् नीतितत्त्वम् ।

ऊरीकृत्य=स्वीकृत्य । कृतिभिः=विद्वद्भिः । वाचस्पत्यम्=पांडित्यम् । प्रतायते=प्रख्याप्यते ।। ९८ ।।

अपनी उन्नति और शत्रु की अवनति—यही दो प्रधान नीति हैं । इन्हीं को ग्रहण करके विद्वान अपनी विद्वत्ता प्रकट करते हैं ।। ९८ ।।

राज्ञा विहस्योक्तं—'सर्वमेतद्विशेषतश्चोच्यते' । किन्तु—

'अन्यदुच्छृङ्खलं सत्त्वमन्यच्छास्त्रनियन्त्रितम् ।
सामानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः' ? ।। ९९ ।।

अन्वयः—उच्छृङ्खलं सत्त्वम् अन्यत् शास्त्रनियंत्रितम् (सत्त्वम् अन्यत्) तेजस्तिमिरयोः सामानाधिकरण्यं हि कुतः (भवेत्) ।। ९९ ।।

उच्छृङ्खलम्=मर्यादाहीनम् स्वेच्छया प्रवर्तितम् इति भावः । सत्त्वम्=पराक्रमः । अन्यत्=अन्यविधम् । शास्त्रनियन्त्रितम् = शास्त्रविधिना मर्यादितम् । तेजस्तिमिरयोः=प्रकाशान्धकारयोः । सामानाधिकरण्यम्=सहावस्थितिः । कुतः=कथम् ।। ९९ ।।

राजा ने हँस कर कहा—'विशेषतः यह सभी ठीक है । किन्तु—

किसी प्रकार की मर्यादा न रखने वाला पराक्रम और होता है तथा शास्त्र द्वारा नियन्त्रित बल दूसरा होता है । भला प्रकाश और अन्धकार दोनों की एकत्र स्थिति कैसे हो सकती है ?' ।। ९९ ।।

तत उत्थाय राजा मौहर्तिकावेदितलग्ने प्रस्थितः ।

ततः = तदनन्तरम् । राजा=नृपः । उत्थाय = सभायाः उत्थानम् कृत्वा । मौहूर्तिकावेदितलग्ने=ज्योतिषिकोक्तशुभमुहूर्ते । प्रस्थितः=युद्धाय चलितः ।

इसके बाद राजा ने उठकर ज्योतिषियों के द्वारा बताए गए शुभ लग्न में प्रस्थान किया ।

अथ प्रहितप्रणिधिश्चरो हिरण्यगर्भमागत्य प्रणम्योवाच—'देव ! समागतप्रायो राजा चित्रवर्णः । सम्प्रति मलयपर्वताधित्यकायां समावासितकटको वर्त्तते । दुर्गशोधनं प्रतिक्षणमनुसन्धातव्यम् । यतोऽसौ गृध्रो महामन्त्री । किं च केनचित्सह तस्य विश्वासकथाप्रसङ्गेनतदिङ्गितमवगतं मया, यत्—'अनेन कोऽप्यस्मद्दुर्गे प्रागेव नियुक्तः ।' चक्रवाको ब्रूते—'देव ! काक एवाऽसौ सम्भवति ।'

प्रहितप्रणिधिः=प्रेषितप्रधानगुप्तचरः । हिरण्यगर्भम्=तन्नामानम् राजहंसम् । उवाच=उक्तवान् । संप्रति = इदानीम् । मलयपर्वताधित्यकायाम् = मलयाचलस्य ऊर्ध्वप्रदेशे । समावासितकटकः = स्थापितसैन्यः (डेरा डाले हुए) । वर्तते=

विद्यते । दुर्गंशोधनम् = दुर्गान्वेषणम् । अनुसंधातव्यम् = अन्वेषणीयम् । महामंत्री= कूटनीतिज्ञः । विश्वासकथाप्रसंगेन = गुप्तवार्ताप्रकरणेन । तदिङ्गितम् = गृद्ध्रस्य संकेतम् । अवगतम् = ज्ञातम् । प्रागेव = अभियानात्पूर्वमेव । कोऽपि = गुप्तचरः । नियुक्तः = वस्तुं प्रेषितः ।

इसके पश्चात् प्रधान गुप्तचर द्वारा भेजे गए दूत ने हिरण्यगर्भ के पास आकर कहा—राजन् राजा चित्रवर्ण अब यहाँ आना ही चाहते हैं। इस समय मलय पहाड़ पर डेरा डाले सेना के साथ पड़े हैं। आप अपने दुर्ग का निरीक्षण हर क्षण कराते रहें। क्योंकि उसका मन्त्री गीध है। उसके किसी गुप्त बातचीत के प्रसंग से मुझे उसका यह संकेत मालूम हुआ है कि उसने हमारे किले में किसी को पहले से ही नियुक्त कर रखा है।' चकवे ने कहा—'राजन्, वह गुप्त दूत यह कौवा ही हो सकता है।'

राजाह—'न कदाचिदेतत्। यद्येवं तदा कथं तेन शुकस्याभिभवोद्योगः कृतः? अपरञ्च शुकस्यागमनात्तस्य विग्रहोत्साहः। स च चिरादत्रास्ते।' मन्त्री ब्रूते—'तथाप्यागन्तुकः शङ्कनीयः।' राजाह—आगन्तुका अपि कदाचिदुपकारका दृश्यन्ते। शृणु—

अभिभवोद्योगः = तिरस्करणाय प्रयत्नः । विग्रहोत्साहः=युद्धोत्साहः । स च= काकः । चिरात्=बहुकालात् । अत्रास्ते=अत्रैव वर्तते । आगन्तुकः=अज्ञातकुलशीलः आगन्तुकः ।

राजा ने कहा—'यह कभी नहीं हो सकता है। यदि ऐसा होता तो वह सुग्गे को अपमानित करने का प्रयत्न ही क्यों करता? इसके अतिरिक्त तोते के आने के समय से ही उसमें (राजा चित्रवर्ण में) युद्ध करने का उत्साह हुआ है। यह कौवा तो यहाँ बहुत दिनों से है।' मन्त्री ने कहा—'फिर भी आगन्तुक संदेहास्पद होता है।' राजा ने कहा—'कभी-कभी आने वाले बड़े ही लाभदायक होते हैं। सुनो—

'परोऽपि हितवान्बन्धुर्बन्धुरप्यहितः परः।
अहितो देहजो व्याधिर्हितमारण्यमौषधम्' ॥ १०० ॥

अन्वयः—हितवान्परः अपि बन्धुः, अहितः बन्धुः अपि परः (भवति यतः) देहजः व्याधिः अहितः, आरण्यम् औषधम् हितमेव ॥ १०० ॥

हितवान्=शरीरोत्पन्नः । व्याधिः = रोगः । अहितः = क्षतिकारकः । परः = शत्रुः । देहजः=शरीरोत्पन्नः । व्याधिः=रोगः । अहितः=क्षतिकारकः । आरण्यम्= वनोद्भवम् । औषधम् = भेषजम् । हितम् = हितकारकम् ॥ १०० ॥

भलाई चाहने वाला शत्रु भी अपना भाई तथा नुकसान चाहने वाला भाई भी शत्रु होता है। शरीर से ही उत्पन्न होने वाला रोग अकल्याणकारी होता है किन्तु जंगल में पैदा होने वाली दवा लाभदायक होती है ॥ १०० ॥

अपरञ्च—'आसीद्वीरवरो नाम शूद्रकस्य महीभृतः।
सेवकः, स्वल्पकालेन स ददौ सुतमात्मनः' ॥ १०१ ॥

अन्वयः—महीभृतः शूद्रकस्य वीरवरः नाम सेवकः आसीत् स स्वल्पकालेन आत्मनः सुतम् ददौ ॥ १०१ ॥

महीभृतः=राज्ञः । सेवकः=अनुचरः । स्वल्पकालेन = स्वल्पकालमात्र-परिसेवनेन । आत्मनः=स्वस्य । सुतम्=पुत्रम् । ददौ=नृपहिताय बलिं कृतवान् ॥

और भी—

राजा शूद्रक का वीरवर नामक एक सेवक था जिसने थोड़े ही समय में राजा की भलाई के लिए अपने पुत्र को भी दे दिया था ॥ १०१ ॥

चक्रवाकः पृच्छति—'कथमेतत् ?' राजा कथयति—

चकवे ने कहा—'यह कैसे ?' राजा ने कहा—

कथा ८

अहं पुरा शूद्रकस्य राज्ञः क्रीडासरसि कर्पूरकेलिनाम्नो राजहंसस्य पुत्र्या कर्पूरमञ्जर्या सहानुरागवानभवम्। राजद्वारमुपगम्य, नाम [महान्] राजपुत्रः कुतश्चिद्देशादागत्य, राजद्वारमुपगम्य, प्रतीहारमुवाच—'अहं तावद्वर्त्तनार्थी राजपुत्रः, मां राजदर्शनं कारय।' ततस्तेनासौ राजदर्शनं कारितो ब्रूते-'देव ! यदि मया सेवकेन प्रयोजनमस्ति, तदास्मद्वर्त्तनं क्रियताम्'।

क्रीडासरसि = खेलासरोवरे । अनुरागवान्=अनुरक्तः । प्रतीहारम् = द्वार-रक्षकम् । वर्त्तनार्थी=आजीविकार्थी । राजपुत्रः=राजकुमारः । वर्तनम्=वेतनम् ।

आज से बहुत दिनों पहिले मैं राजा शूद्रक के क्रीडासरोवर में रहने वाले कर्पूरकेलि नाम के राजहंस की पुत्री कर्पूरमञ्जरी से प्रेम करने लगा था। (इसलिए वहीं रहता भी था) एक दिन वीरवर नाम का एक राजकुमार कहीं से आया और राजद्वार पर पहुँच कर उसने द्वारपाल से कहा—'मैं जीविका का इच्छुक एक राजकुमार हूँ, अतः तुम मुझे राजा का दर्शन करा दो।'

द्वारपाल ने उसे राजा का दर्शन करा दिया तब राजकुमार ने कहा—'राजन् यदि आप मुझे अपनी सेवा में रखना चाहते हों तो मेरा वेतन निश्चित कर दीजिए।'

शूद्रक उवाच—'किं ते वर्त्तनम्?' वीरवरो ब्रूते—'प्रत्यहं सुवर्णपञ्चशतानि देहि'। राजाह—'का ते सामग्री?' वीरवरो ब्रूते—'द्वौ बाहू, तृतीयश्च खड्गः।' राजाह—'नैतच्छक्यम्।'

प्रत्यहम्=प्रतिदिनम्। सुवर्णपञ्चशतानि=पञ्चशतानि दीनाराणि। सामग्री=सेवासाधनम्। एतत्=एतावत् वेतनम्।

शूद्रक ने कहा—'तुम्हारा वेतन क्या होगा?' वीरवर ने कहा—'प्रतिदिन पाँच सौ मुद्रा दीजिए'। राजा ने कहा—'तुम्हारे पास सेवा के साधन क्या हैं?' वीरवर ने कहा—'दो भुजाएँ तथा तीसरी तलवार।' राजा ने कहा—'इतना वेतन तो नहीं दिया जा सकता है।'

तच्छ्रुत्वा वीरवरः प्रणम्य चलितः। अथ मन्त्रिभिरुक्तम्—'देव! दिनचतुष्टयस्य वर्त्तनं दत्त्वा ज्ञायतामस्य स्वरूपं, किमुपयुक्तोऽयमेतावद् वर्त्तनं गृह्णाति, अनुपयुक्तो वेति?' ततो मन्त्रिवचनादाहूय वीरवराय ताम्बूलं दत्त्वा पञ्चशतानि सुवर्णानि दत्तानि।

अस्य स्वरूपम्=वीरवरस्य अन्तस्तत्त्वम्, वेतनयोग्यम् गुणमित्यर्थः। उपयुक्तः=उचितः। ताम्बूलम् दत्त्वा=(पान देकर) तस्य सेवाम्, वर्तनम् च स्वीकृत्य।

यह सुनकर वीरवर प्रणाम करके चल दिया। इसके पश्चात् मन्त्रियों ने कहा—'राजन्, चार दिन का वेतन देकर इसकी वास्तविकता समझिए कि यह इतना वेतन उचित ढंग से ले रहा है अथवा अनुचित ढंग से।' तब मन्त्रियों की बात मान कर राजा ने वीरवर को बुलवाया और उसे पान देकर पाँच सौ अशरफियाँ दे दीं।

वर्त्तनविनियोगश्च राज्ञा सुनिभृतं निरूपितः। तदर्धं वीरवरेण देवेभ्यो, ब्राह्मणेभ्यो दत्तम्। स्थितस्यार्द्धं दुःखितेभ्यः, तदवशिष्टं भोज्यविलासव्ययेन। एतत्सर्वं नित्यकृत्यं कृत्वा, राजद्वारमहर्निशं खड्गपाणिः सेवते। यदा च राजा स्वयं समादिशति तदा स्वगृहमपि याति।

तद्विनियोगः=गृहीतवेतनव्ययप्रकारः। सुनिभृतम्=प्रच्छन्नम्। निरूपितः=ज्ञातः। तदर्धम्=प्राप्तवेतनार्धम्। स्थितस्यार्धम्=शेषस्यार्धम्। भोज्यव्ययविलासव्ययेन=भोजनामोदादिव्ययेन। नित्यकृत्यम्=नित्याचरणम्। अहर्नि-

शम् = अहोरात्रम् । खड्गपाणिः = कृपाणहस्तः । सेवते = राजानम् अनुचरति । समादिशति = आज्ञापयति ।

राजा ने गुप्त रूप से उस वेतन के खर्च का ब्यौरा भी जान लिया । वीरवर ने उसका आधा देवताओं तथा ब्राह्मणों के लिए खर्च किया । शेष का आधा दुखियों को दे दिया और उससे बचे हुए धन को भोजन तथा विलास में खर्च किया । इसी प्रकार प्रतिदिन व्यय करके वह रातदिन हाथ में तलवार लिए हुए राजद्वार पर खड़ा रहता था । जब राजा स्वयम् आज्ञा देता था तभी वह अपने घर भी जाता था ।

अथैकदा कृष्णचतुर्दश्यां रात्रौ स राजा सकरुणक्रन्दनध्वनिं शुश्राव । तत् श्रुत्वा राजा ब्रूते—'कः कोऽत्र द्वारि तिष्ठति' ?

सकरुणम् = सदयम् । क्रन्दनध्वनिम् = रोदनशब्दम् । शुश्राव = अशृणोत् । कः कः अत्र द्वारि=कः कः द्वाररक्षकः अत्र वर्तते ।

एक बार कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को आधी रात के समय राजा ने अत्यन्त करुणा से भरी रोने की ध्वनि सुनी ? शूद्रक ने कहा—'द्वार पर कौन है ?'

तदा तेनोक्तं—'देव ! अहं वीरवरः ।' राजोवाच-'क्रन्दनानुसरणं क्रियताम् ।' वीरवरोऽपि-'यथाज्ञापयति देवः' इत्युक्त्वा चलितः ।

क्रन्दनानुसरणम्=रोदनानुसन्धानम् ।

उसने कहा—'राजन्. मैं वीरवर हूँ ।' राजा ने कहा—'जाकर रोने का पता लगाओ ।' 'श्रीमान की जैसी आज्ञा'—यह कह कर वीरवर वहाँ से चल पड़ा ।

राज्ञा च चिन्तितम्-'अयमेकाकी राजपुत्रो मया सूचीभेद्ये तमसि प्रहितः । नैतदुचितम् । तदहमपि गत्वा 'किमेत'दिति निरूपयामि ।'

ततो राजापि खड्गमादाय तदनुसरणक्रमेण नगराद्बहिर्निर्जगाम । गत्वा (च) वीरवरेण रुदती, रूपयौवनसम्पन्ना, सर्वालङ्कारभूषिता काचित्स्त्री दृष्टा, पृष्टा च—'का त्वम् ?, किमर्थं रोदिषि ?' इति । स्त्रियोक्तम्-'अहमेतस्य शूद्रकस्य राजलक्ष्मीः, चिरादेतस्य भुजच्छायायां महता सुखेन विश्रान्ता, इदानीमन्यत्र गमिष्यामि ।' वीरवरो ब्रूते—'यत्रापायः सम्भवति, तत्रोपायोऽप्यस्ति, तत्कथं स्यात्पुनरिहावासो भवत्याः ?'

चिन्तितम् = मनस्यालोचितम् । नैतत् उचितम् = तस्य प्रेषणम् अनुचितम् । सूचीभेद्ये = अतिघने । तमसि=अन्धकारे । प्रहितः=प्रेषितः । तदनु हमपि गत्वा=

वीरवरमनुसृत्य । तदनुसरणक्रमेण=वीरवरमनुसरन् । रुदती=रोदनम् कुर्वन्ती । रूपयौवनसंपन्ना=सौन्दर्यतारुण्ययुक्ता । सर्वालङ्कारभूषिता=सर्वाभूषणैः सुशोभिता । रोदिषि=रोदनं करोषि । भुजच्छायायाम्=आश्रये । सुखेन विश्रान्ता=आनन्देनावस्थिता । अपायः = तत्र निवसने विपत्तिः । उपायः = तत्रावस्थातुं साधनम् । इहावासः=अत्र स्थितिः ।

राजा ने विचार किया—'यह मैंने ठीक नहीं किया जो इस राजकुमार को इस घने अन्धकार में अकेले ही भेज दिया । इसलिए इसके पीछे-पीछे चलकर देखूँ कि क्या बात है ।'

तब राजा भी हाथ में तलवार लेकर उसके पीछे-पीछे चलता हुआ नगर के बाहर पहुँचा । वीरवर ने आगे जाकर सभी गहनों से सुशोभित किसी सुन्दरी युवती स्त्री को रोते हुए देखा और पूछा-'तुम कौन हो ? और क्यों रो रही हो ? ।' स्त्री ने कहा—'मैं इस शूद्रक की राज्यलक्ष्मी हूँ । बहुत दिनों तक इसकी भुजाओं की छाया में सुख से निवास करती रही । अब दूसरी जगह चली जाऊँगी ।' वीरवर ने कहा—'जहाँ बाधा होती है, वहीं उसके दूर करने का उपाय भी होता है । तो आप किस उपाय से फिर यहाँ रह सकती हैं ?'

लक्ष्मीरुवाच—'यदि त्वमात्मनः पुत्रं शक्तिधरं द्वात्रिंशल्लक्षणोपेतं भगवत्याः सर्वमङ्गलाया उपहारीकरोषि, तदाहं पुनरत्र सुचिरं निवसामि' । इत्युक्त्वाऽदृश्याभवत् ।

द्वात्रिंशल्लक्षणोपेतम्=महापुरुषाणाम् द्वात्रिंशल्लक्षणैः युक्तम् । सर्वमङ्गलायाः=दुर्गायाः ।

लक्ष्मी ने कहा—'यदि तुम बत्तीस लक्षणों से युक्त अपने पुत्र शक्तिधर को भगवती दुर्गा के लिए भेंट चढ़ा दो तो मैं फिर यहाँ बहुत दिनों तक रह सकती हूँ ।' ऐसा कहकर वह अदृश्य हो गयी ।

ततो वीरवरेण स्वगृहं गत्वा, निद्रायमाणा स्ववधूः प्रबोधिता, पुत्रश्च । तौ निद्रां परित्यज्योत्थायोपविष्टौ । वीरवरस्तत्सर्वं लक्ष्मीवचनमुक्तवान् । तच्छ्रुत्वा सानन्दः शक्तिधरो ब्रूते—'धन्योऽहमेवंभूतः, स्वामिराज्यरक्षार्थं यस्योपयोगः । तात ! तत्कोऽधुना विलम्बस्य हेतुः ? । एवंविधे कर्मणि देहस्य विनियोगः श्लाघ्यः । यतः—

निद्रायमाणा = निद्रालसा । स्ववधूः=स्वपत्नी । प्रबोधिता = उत्थापिता । देहस्य=शरीरस्य । विनियोगः = व्ययः । श्लाघ्यः=प्रशस्यः ।

तब वीरवर ने घर जाकर सोते हुए अपने स्त्री-पुत्र को जगाया। वह दोनों नींद छोड़कर उठ बैठे। वीरवर ने लक्ष्मी द्वारा कही गई सारी बातें उन्हें सुना दी। उसे सुनकर आनन्द के साथ शक्तिधर ने कहा—'मैं अत्यन्त धन्य हूँ क्योंकि आज स्वामी के राज्य की रक्षा में मेरे इस शरीर का इतना प्रशंसनीय उपयोग हो रहा है। तो फिर विलम्ब क्यों हो रहा है। इस प्रकार के कार्य में इस शरीर का लग जाना अत्यन्त प्रशंसनीय है। क्योंकि—

'धनानि, जीवितञ्चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।
तन्निमित्तो वरं त्यागो, विनाशे नियते सति'॥ १०२॥

अन्वयः—प्राज्ञः धनानि जीवितं चैव परार्थे उत्सृजेत्, विनाशे नियते सति तन्निमित्तः त्यागः वरम्॥ १०२॥

प्राज्ञः = बुद्धिमान्। धनानि = द्रव्याणि। जीवितम्=प्राणांश्च। परार्थे=परहिताय। उत्सृजेत् = त्यजेत्। विनाशे नियते = विनाशे निश्चिते। तन्निमित्तः= परहिताय। वरम्=श्रेष्ठम्॥ १०२॥

बुद्धिमान् धन तथा जीवन दोनों ही दूसरों की भलाई के लिए समर्पित कर देते हैं। जब इस शरीर का विनाश निश्चित है ही तो परोपकार के लिए इसे त्याग देना ही श्रेष्ठ है॥ १०२॥

शक्तिधरमातोवाच-'यद्येतन्न कर्त्तव्यं, तत्केनान्येन कर्मणा गृहीतस्य महावर्त्तनस्य निष्क्रयो भविष्यति।' इत्यालोच्य सर्वे सर्वमङ्गलायाः स्थानं गताः। तत्र सर्वमङ्गलां सम्पूज्य, वीरवरो ब्रूते—'देवि! प्रसीद, विजयतां शूद्रको महाराजः, गृह्यतामयमुपहारः।' इत्युक्त्वा पुत्रस्य शिरश्छिच्छेद। ततो वीरवरश्चिन्तयामास—'गृहीतराजवर्त्तनस्य निस्तारः कृतः। अधुना निष्पुत्रस्य मे जीवनेनालम्'। इत्यालोच्यात्मनः शिरश्छिच्छेद।

एतत् न कर्तव्यम्=स्वामिहिताय पुत्रोत्सर्गः न कार्यः। महावर्तनस्य=बहुमूल्यवेतनस्य। निष्क्रयः=निस्तारः। आलोच्य=विचार्य। प्रसीद=प्रसन्ना भव। उपहारः=बलिः। निस्तारः=आनृण्यम्। निष्पुत्रस्य=पुत्रहीनस्य।

शक्तिधर की माता ने कहा—'यदि यह कार्य नहीं किया जायगा तो फिर अन्य किस कार्य द्वारा इतने बड़े वेतन लेने का बदला चुकाया जा सकेगा?' ऐसा विचार कर सभी भगवती दुर्गा के मन्दिर में गये। वहाँ देवी की पूजा करके वीरवर ने कहा—'देवि, प्रसन्न हो जाओ, महाराज शूद्रक की जय हो।

यह भेंट स्वीकार करें।' ऐसा कहकर उसने पुत्र का सिर काट दिया। इसके बाद वीरवर ने विचार किया कि राजा द्वारा प्राप्त वेतन का ऋण चुका दिया। अब पुत्रहीन जीवन तो व्यर्थ है ऐसा सोचकर उसने अपना सिर भी काट दिया।

ततः स्त्रियापि स्वामि-पुत्रशोकार्त्तया तदनुष्ठितम्। तत्सर्वं दृष्ट्वा राजा साश्चर्यं चिन्तयामास—

स्वामिपुत्रशोकार्तया = पतिपुत्रशोकव्यग्रया। तदनुष्ठितम्=स्वशिरश्छेदनम् विहितम्। चिन्तयामास=विचारितवान्।

तब उसकी स्त्री ने भी पति-पुत्र के शोक से दुखी होकर वही किया (अपना सिर काट दिया)। यह सब देखकर आश्चर्य में पड़े हुए राजा ने विचार किया—

'जायन्ते च, म्रियन्ते च मद्विधाः क्षुद्रजन्तवः।
अनेन सदृशो लोके न भूतो, न भविष्यति' ॥ १०३ ॥

अन्वयः—मद्विधाः क्षुद्रजन्तवः जायन्ते म्रियन्ते च (किन्तु) अनेन सदृशः लोके न भूतः न भविष्यति ॥ १०३ ॥

मद्विधाः=मत्सदृशाः। जायन्ते=उत्पद्यन्ते। म्रियन्ते=मरणं प्राप्नुवन्ति। क्षुद्रजन्तवः=क्षुद्रजीवाः। अनेन=वीरवरेण। सदृशः=तुल्यः ॥ १०३ ॥

'मेरे जैसे तुच्छ प्राणी ही जन्म लेते और मरते रहते हैं किन्तु इसके समान न तो कोई हुआ न होगा' ॥ १०३ ॥

तदेतत्परित्यक्तेन मम राज्येनापि किं प्रयोजनम्।' ततः शूद्रकेणापि स्वशिरश्छेत्तुं खड्गः समुत्थापितः। अथ भगवत्या सर्वमङ्गलया प्रत्यक्षभूतया राजा हस्ते धृत, उक्तश्च—'पुत्र! प्रसन्नोऽस्मि ते, एतावता साहसेनालम्। जीवनान्तेऽपि तव राजभङ्गो नास्ति।'

तदेतेन = ततः वीरवरेण। परित्यक्तेन = विरहितेन। समुत्थापितः=समुत्तोलितः। साहसेनालम्=साहसं मा कुरु। राजभंगः=राज्यविनाशः।

अतः इसे छोड़कर मैं अब राज्य लेकर क्या करूँगा।' तब शूद्रक ने भी अपना सिर काटने के लिए तलवार उठा ली। इसी बीच भगवती दुर्गा ने राजा का हाथ पकड़ते हुए कहा—'पुत्र' मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। अब इतने साहस की आवश्यकता नहीं। तुम्हारे जीवन का अंत हो जाने पर भी तुम्हारे राज्य का विनाश नहीं होगा।'

राजा च साष्टाङ्गपातं प्रणम्योवाच—'देवि! किं मे राज्येन? जीवितेन वा किं प्रयोजनम्?। यद्यहमनुकम्पनीयस्तदा ममायुःशेषेणाप्ययं सदारपुत्रो वीरवरो जीवतु। अन्यथाहं यथाप्राप्तां गतिं

गच्छामि।' भगवत्युवाच—पुत्र ! अनेन ते सत्त्वोत्कर्षेण, भृत्य-वात्सल्येन च सर्वथा संतुष्टोऽस्मि। गच्छ विजयी भव। अयमपि सपरिवारो राजपुत्रो जीवतु।' इत्युक्त्वा देव्यदृश्याभवत्। ततो वीरवरः सपुत्रदारः प्राप्तजीवनः स्वगृहं गतः। राजापि तैरलक्षितः सत्वरमन्तःपुरं प्रविष्टः।

जीवितेन=प्राणैः। किं प्रयोजनम्=किं फलम्। अनुकम्पनीयः=कृपापात्रः। सदारपुत्रः=पत्नीपुत्रसहितः। यथाप्राप्तां गतिम् = वीरवरेण प्राप्तदशाम् मृत्युमित्यर्थः। सत्त्वोत्कर्षेण=औदार्यातिशयेन। भृत्यवात्सल्येन सेवकप्रेम्णा। सर्वथा=सर्वप्रकारेण। संतुष्टा=प्रसन्ना। तैः = वीरवरादिभिः। अलक्षितः = प्रच्छन्नः। अन्तःपुरम्=स्वावासगृहे (रनिवास)।

राजा ने साष्टाङ्ग प्रणाम करके कहा—'देवि, मुझे राज्य अथवा अपने जीवन से भी कोई प्रयोजन नहीं है। यदि आप मेरे ऊपर कृपा ही करना चाहती हैं तो मेरी बची हुई आयु से पत्नी-पुत्र के साथ यह वीरवर जीवित हो जाए। नहीं तो मैं भी इसी की गति प्राप्त करूँगा (मैं भी अपना सिर काट डालूँगा)।' देवी ने कहा—'पुत्र मैं तुम्हारे इस अत्यन्त उत्कृष्ट साहस और सेवक के प्रति प्रदर्शित प्रेम से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। जाओ। विजयी बनो। यह राजकुमार भी सपरिवार जीवित हो जाय।' ऐसा कहकर देवी अदृश्य हो गई। फिर वीरवर भी स्त्री-पुत्र के साथ घर चला गया। राजा भी उनसे छिपकर शीघ्र ही राजमहल में चला गया।

अथ प्रभाते वीरवरो द्वारस्थः पुनर्भूपालेन पृष्टः सन्नाह—'देव ! सा रुदती मामवलोक्यादृश्याभवत्। न काप्यन्या वार्त्ता विद्यते।' तद्वचनमाकर्ण्य सन्तुष्टो राजा साश्चर्यं चिन्तयामास—'कथमयं श्लाघ्यो महासत्त्वः'। यतः—

इसके पश्चात् प्रातःकाल द्वार पर स्थित वीरवर ने राजा के फिर पूछने पर कहा—'राजन् वह रोने वाली मुझे देखकर अदृश्य हो गयी। और कोई दूसरी बात नहीं है।' उसकी बात सुनकर राजा ने विचार किया—यह महापुरुष कितना प्रशंसनीय है। क्योंकि—

'प्रियं ब्रूयादकृपणः, शूरः स्यादविकत्थनः।
दाता नापात्रवर्षी च, प्रगल्भः स्यादनिष्ठुरः' ॥ १०४ ॥

अन्वयः—अकृपणः प्रियम् ब्रूयात् शूरः अविकत्थनः स्यात्, दाता नपात्रवर्षी च, प्रगल्भः च अनिष्ठुरः स्यात् ॥ १०४ ॥

अकृपणः=दानशीलः। प्रियम् ब्रूयात्=मधुरं वचनम् उच्चरेत्। शूरः=वीरः अविकत्थनः = आत्मश्लाघारहितः। स्यात् = भवेत्। अपात्रवर्षी = कुपात्रप्रदः। प्रगल्भः=तेजसान्वितः। अनिष्ठुरः = अक्रूरः ॥ १०४ ॥

उदार को प्रिय बोलना चाहिए; वीर को आत्मश्लाघी नहीं होना चाहिए, दानी को अपात्र (अयोग्य) व्यक्ति के लिए दान नहीं देना चाहिए तथा प्रगल्भ को निष्ठुर नहीं होना चाहिए ॥ १०४ ॥

एतन्महापुरुषलक्षणमेतस्मिन्सर्वमस्ति।' ततः स राजा प्रातः शिष्टसभां कृत्वा, सर्वं वृत्तान्तं प्रस्तुत्य, प्रसादात्तस्मै कर्णाटकराज्यं ददौ। तत्किमागन्तुको जातिमात्राद् दुष्टः ?। तत्राप्युत्तमाधम-मध्यमाः सन्ति। चक्रवाको ब्रूते—

एतस्मिन्=वीरवरे। शिष्टसभाम्=शिष्टानाम् सभाम्। सर्वं वृत्तान्तम् = वीर-वरेण रात्रौ यत्कृतम्। तत्सर्वम्। प्रस्तुत्य=समक्षं कृत्वा। आगन्तुकः = अतिथिः। तत्रापि=आगन्तुकेषु अपि।

इसमें ये सभी महापुरुष के लक्षण वर्तमान हैं।' इसके पश्चात् प्रातःकाल राजा ने शिष्टों की सभा करके सभी घटना कह सुनाई और प्रसन्न होकर उसे कर्नाटक का राज्य दे दिया। तो क्या आगन्तुक जातिमात्र से ही दुष्ट होते हैं। उसमें भी उत्तम, मध्यम और अधम हैं।' चकवे ने कहा—

'योऽकार्यं कार्यवच्छास्ति स किंमन्त्री नृपेच्छया।
वरं स्वामिमनोदुःखं, तन्नाशो न त्वकार्यतः ॥ १०५ ॥

अन्वयः—यः (मंत्री) नृपेच्छया अकार्यम् कार्यवत् शास्ति स किंमन्त्री। स्वामिमनोदुःखम् वरम् (किन्तु) अकार्यतः तन्नाशः न वरम् ॥ १०५ ॥

नृपेच्छया=राज्ञः इच्छानुसारेण। अकार्यम्=अनुचितम् कार्यमपि। कार्यवत्=उचितकार्यसदृशम्। शास्ति = उपदिशति। स किंमन्त्री = सः दुर्मन्त्री भवति। स्वामिमनोदुःखम्=राजहृदयपीडा। वरम्=श्रेयः। अकार्यतः = अकार्यस्य करणाय उपदेशात्। तन्नाशः=नृपविनाशः ॥ १०५ ॥

जो मंत्री केवल राजा की इच्छा से ही न करने योग्य कार्य को भी करणीय कार्य के समान बताता है वह दुष्ट होता है। स्वामी का मन दुःखी हो जाना तो ठीक है किन्तु बुरे कर्म के उपदेश से उसका विनाश करा देना ठीक नहीं ॥१०५॥

'वैद्यो, गुरुश्च, मन्त्री च, यस्य राज्ञः प्रियंवदाः ।
शरीर·धर्म·कोशेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते' ॥ १०६ ॥

अन्वयः—यस्य राज्ञः वैद्यः, गुरुः मन्त्री च प्रियंवदाः भवन्ति सः (राजा) शरीरधर्मकोशेभ्यः क्षिप्रम् परिहीयते ॥ १०६ ॥

यस्य राज्ञः=नृपस्य । वैद्यः=चिकित्सकः । गुरुः = उपदेशकः । प्रियंवदाः= राज्ञः हृदयानुसारेण प्रियवक्तारः । शरीरधर्मकोशेभ्यः = देहधर्मकोशेभ्यः । क्षिप्रम्=शीघ्रम् । परिहीयते=हीनो भवति ॥ १०६ ॥

जिस राजा के वैद्य, गुरु तथा मंत्री सर्वदा उसकी प्रिय बातों का ही ध्यान रखते हैं, वह शरीर, धर्म और खजाने से शीघ्र ही रहित हो जाता है ॥१०६॥

शृणु—देव !

'पुण्याल्लब्धं यदेकेन तन्ममापि भविष्यति ।
हत्वा भिक्षुं यतो मोहान्निध्यर्थी नापितो हतः' ॥ १०७ ॥

राजा पृच्छति—'कथमेतत् ?' । मन्त्री कथयति—

अन्वयः—एकेन पुण्यात् यत् लब्धम् तत् ममापि भविष्यति—(इति) निध्यर्थी नापितः यतः मोहात् भिक्षुं हत्वा (स्वयं) हतः ॥ १०७ ॥

एकेन = केनापि पुरुषेण । पुण्यात् = निजपूर्वजन्मकृतात् कर्मणः । यत्—लब्धम्=यत्प्राप्तम् । निध्यर्थी=धनार्थी । हतः=मृतः ॥ १०७ ॥

हे राजन्, सुनो—

किसी ने पुण्य से कुछ पा लिया तो वैसा ही मेरे लिए भी हो जायगा । ऐसा ही सोचकर धन के अभिलाषी नाई ने लोभ में आकर भिक्षुक को मार डाला जिससे स्वयम् भी मारा गया ॥ १०७ ॥

राजा ने पूछा—यह कैसे हुआ । मंत्री ने कहा—

कथा ९

अस्त्ययोध्यायां पुरि चूडामणिर्नाम क्षत्रियः । तेन धनार्थिना महता क्लेशेन भगवाँश्चन्द्रार्धचूडामणिश्चिरमाराधितः । ततः क्षीण-पापोऽसौ स्वप्ने दर्शनं दत्त्वा, भगवदादेशाद्यक्षेश्वरेणादिष्टो यत्—त्वमद्य प्रातः क्षौरं कारयित्वा, लगुडहस्तः सन् स्वगृहद्वारि निभृतं स्थास्यसि, ततो यमेवागतं भिक्षुकं प्राङ्गणे पश्यसि, तं निर्दयं

लगुडप्रहारेण हनिष्यसि । ततोऽसौ भिक्षुकस्तत्क्षणात् सुवर्णकलसो भविष्यति । तेन त्वया यावज्जीवं सुखिना भवितव्यम् । ततस्तथानुष्ठिते तद् वृत्तम् ।

धनार्थिना=द्रव्याकांक्षिणा । क्लेशेन=कष्टकरेण साधनेन । चन्द्रार्धचूडामणिः=भगवान् शिवः । आराधितः=सेवितः पूजितश्च । क्षीणपापः=नष्टदुष्कर्मा । यक्षेश्वरेण=कुबेरेण । लगुडं हस्ते कृत्वा=यष्टिम् गृहीत्वा । आदिष्टः = आज्ञप्तः । निभृतम्=प्रच्छन्नो भूत्वा । समागतम्=समायातम् । हनिष्यसि=ताडयिष्यसि । तथानुष्ठिते=भिक्षुके हते सति । तद्वृत्तम्=तथैव भूतम् ।

अयोध्या में चूडामणि नाम का एक क्षत्रिय था । उसने धन की अभिलाषा से बड़े कष्ट के साथ बहुत दिनों तक शंकर जी की आराधना की । तब उसके सारे पाप नष्ट हो गए और एक दिन भगवान् शंकर की आज्ञा से कुबेर ने उसे स्वप्न में दर्शन देकर कहा—'आज तुम बाल बनवाकर, हाथ में लाठी लेकर घर में छिपकर बैठ जाना । तब आँगन में आए हुए भिक्षुक को देख कर जब उसे निर्दयता के साथ डंडे से मारोगे तो वह सोने का कलश हो जायगा । जिससे तुम अपने जीवन भर के लिए सुखी बन जाओगे ।' उसके ऐसा करने पर सचमुच वही हुआ ।

तत्र क्षौरकरणायानीतेन नापितेन तत्सर्वमालोक्य चिन्तितम्—'अये निधिप्राप्तेरयमुपायः ! । तदहमप्येवं किं न करोमि ?' । ततः प्रभृति स नापितः प्रत्यहं तथाविधो लगुडहस्तः सुनिभृतं भिक्षोरागमनं प्रतीक्षते । एकदा तेन प्राप्तो भिक्षुर्लगुडेन व्यापादितः । तस्मादपराधात्सोऽपि नापितो राजपुरुषैर्व्यापादितः । अतोऽहं ब्रवीमि—'पुण्याल्लब्धं यदेकेने'-त्यादि ॥ ❀ ॥

निधिप्राप्तेः=धनागमस्य । सुनिभृतम्=प्रच्छन्नो भूत्वा । प्रतीक्षते=प्रतीक्षां करोति । व्यापादितः=हतः ।

वहाँ बाल बनाने के लिए लाए गए नाई ने सोचा-धन प्राप्त करने का यह तो अच्छा उपाय है । मैं भी ऐसा ही क्यों न करूँ । उसी दिन से नाई प्रति दिन उसी प्रकार हाथ में डंडा लिए हुए छिप कर भिक्षुक के आने की प्रतीक्षा करता था । एक दिन उसे भिक्षुक मिल ही गया और उसने उसे डंडे से मार डाला । इस अपराध के कारण उसे भी राजपुरुषों ने मार डाला । इसीलिए मैं कह रहा हूँ—'एक ने जो पुण्य से प्राप्त किया' इत्यादि ।

राजाह—'पुरावृत्तकथोद्‌गारैः कथं निर्णीयते परः ।
स्यान्निष्कारणबन्धुर्वा, किं वा विश्वासघातकः ?' ॥१०८॥

अन्वयः—पुरावृत्तकथोद्‌गारैः परः, निष्कारणबन्धुः किंवा विश्वासघातकः स्यात् (इति) कथम् निर्णीयते ॥ १०८ ॥

पुरावृत्तकथोद्‌गारैः=प्राचीनकाले घटितकथाजल्पनैः । परः=अन्यः, आगतः वा । निष्कारणबन्धुः = निःस्वार्थसहायकः । विश्वासघातकः = विश्वासमुत्पाद्य वञ्चकः । कथं=केन प्रकारेण । निर्णीयते=निश्चीयते ॥ १०८ ॥

राजा ने कहा—

प्राचीन कथाओं के कहने मात्र से ही यह कैसे निर्णय किया जा सकता है कि आगन्तुक निःस्वार्थ भलाई करने वाला है अथवा विश्वासघाती ॥ १०८ ॥

यातु, प्रस्तुतमनुसन्धीयताम् । मलयाधित्यकायां चेच्चित्रवर्ण-स्तदधुना किं विधेयम् ? ।' मन्त्री वदति-'देव ! आगतप्रणिधिमुखा-न्मया श्रुतं, यत्—महामन्त्रिणो गृध्रस्योपदेशे चित्रवर्णेनानादरः कृतः ततोऽसौ मूढो जेतुं शक्यः' । तथा चोक्तम्—

यातु=आस्ताम् तावत् । प्रस्तुतम् = यदुपस्थितम् । अनुसंधीयताम्=विचार्य-ताम् । मलयाधित्यकायाम् = मलयपर्वतोपरिभागे । किं विधेयम् = किं कर्तव्यम् । चित्रवर्णेन=मयूरेण । अनादरः कृतः=अवमानितः । मूढः=अज्ञः ।

'अस्तु जाने दो । अब उपस्थित विषय पर विचार करो' यदि चित्रवर्ण मलय की चोटी पर डेरा डाले पड़ा है तो फिर क्या करना चाहिए ।' मंत्री ने कहा-'राजन् आए हुए चर के मुँह से मैंने सुना है कि चित्रवर्ण ने महामंत्री गृध्र के उपदेशों का तिरस्कार कर दिया है इस लिए वह मूर्ख जीता जा सकता है । जैसा कि कहा भी गया है—

'लुब्धः, क्रूरोऽलसोऽसत्यः, प्रमादी, भीरुरस्थिरः ।
मूढो, योधावमन्ता च सुखच्छेद्यो रिपुः स्मृतः' ॥ १०९ ॥

अन्वयः—लुब्धः, क्रूरः, अलसः, असत्यः, प्रमादी, भीरुः अस्थिरः, योधावमन्ता, मूढः, रिपुः सुखच्छेद्यः स्मृतः ॥ १०९ ॥

लुब्धः=लोलुपः । क्रूरः=नृशंसः । अलसः=आलस्येन युक्तः । असत्यः = मिथ्यावादी । प्रमादी=अनवधानः । भीरुः=कातरः । अस्थिरः = चञ्चलप्रकृतिः । योधावमन्ता = स्वसैनिकतिरस्कर्ता । रिपुः=शत्रुः । सुखच्छेद्यः=सारल्येन विनाशयितुम् शक्यः ॥ १०९ ॥

लालची, निष्ठुर, आलसी, असत्यवादी, असावधान, कायर, चंचल तथा अपने वीर सैनिकों का अपमान करने वाला मूर्ख शत्रु सरलता से जीता जा सकता है ॥ १०९ ॥

ततोऽसौ यावदस्मद्दुर्गद्वाररोधं न करोति, तावन्नद्यद्रिवन-वर्त्मसु तद्बलानि हन्तुं सारसादयः सेनापतयो नियुज्यन्ताम्। तथा चोक्तम्—

असौ=चित्रवर्णः मयूरः। नद्यद्रिवनवर्त्मसु = सरित्पर्वतकाननमार्गेषु। तद्ब-लानि=मयूरस्य सैन्यानि।

इसलिए जब तक वह हमारे किले का द्वार रोक न ले (किले पर घेरा न डाल दे) तब तक नदियों, पहाड़ों, जंगलों और रास्तों में उसकी सेना का विनाश करने के लिए सारस आदि सेनापतियों को नियुक्त कर दीजिए। जैसा कि कहा भी गया है—

'दीर्घवर्त्मपरिश्रान्तं, नद्यद्रिवनसङ्कुलम्।
घोराग्निभयसन्त्रस्तं, क्षुत्पिपासार्दितं तथा ॥ ११० ॥
प्रमत्तं, भोजनव्यग्रं, व्याधिदुर्भिक्षपीडितम्।
असंस्थितमभूयिष्ठं, वृष्टिवातसमाकुलम् ॥ १११ ॥
पङ्कपांशुजलाच्छन्नं, सुव्यस्तं, दस्युविद्रुतम्।
एवम्भूतं महीपालः परसैन्यं विघातयेत्' ॥ ११२ ॥

अन्वयः—दीर्घवर्त्म परिश्रान्तम्······एवम् भूतम् परसैन्यम् महीपालः विघातयेत् ॥ ११०-११२ ॥

दीर्घवर्त्मपरिश्रान्तम् = दूरमार्गागमनात् श्रान्तम्। नद्यद्रिवनसंकुलम् = सरित्पर्वतादिलंघनात् व्याकुलम्। घोराग्निभयसंत्रस्तम्=भीषणवनाग्निना भीतम्। क्षुत्पिपासार्दितम् = क्षुधया जलेच्छया च पीडितम्। प्रमत्तम् = असावधानम्। भोजनव्यग्रम् = भोजने लग्नम्। व्याधिदुर्भिक्षपीडितम् = रोगाकालदुःखितम्। असंस्थितम्=व्यूहरचनारहितम्। अभूयिष्ठम् = अल्पम्। वृष्टिवातसमाकुलम् = वर्षवायुव्यग्रम्। पङ्कपांशुजलाच्छन्नम् = कर्दमधूलिजलावरुद्धम्। सुव्यस्तम् = निश्चिन्तम्। दस्युविद्रुतम् = मोषकपराहतम् (दस्यु=डाकू)। परसैन्यम् = शत्रुबलम्। महीपालः=पृथ्वीपतिः। विघातयेत्=विनाशयेत् ॥ ११ -११२ ॥

लम्बे रास्ते से थके हुए, नदी, पहाड़ तथा जंगलों से व्याकुल भयंकर अग्नि से डरे हुए, भूख प्यास से पीड़ित, असावधान, भोजन में व्यस्त, रोग तथा अकाल से दुखी, अव्यवस्थित, वर्षा तथा वायु से घबड़ाए हुए, कीचड़, धूल तथा

पानी से आच्छादित, निश्चिन्त और डाकुओं से लुटे हुए शत्रुसैनिकों को नष्ट कर डालना चाहिए ॥ ११०–११२ ॥

अन्यच्च—'अवस्कन्दभयाद्राजा प्रजागरकृतश्रमम् ।
दिवा सुप्तं समाहन्यान्निद्राव्याकुलसैनिकम्' ॥ ११३ ॥

अन्वयः—राजा अवस्कन्दभयात् प्रजागरकृतश्रमम् दिवासुप्तम् निद्राव्याकुलसैनिकम् समाहन्यात् ॥ ११३ ॥

अवस्कन्दभयात् = आकस्मिकाक्रमणशंकया । प्रजागरकृतश्रमम् = प्रजागरणे परिश्रान्तम् । दिवासुप्तम् = दिवसनिद्रितम् । निद्राव्याकुलसैनिकम् = निद्राव्यग्रसेनाजनान् । समाहन्यात्=विनाशम् कुर्यात् ॥ ११३ ॥

राजा को चाहिए कि वह आक्रमण के भय से रात भर जागने के कारण थकी हुई, दिन में ही सोई हुई तथा नींद से व्याकुल शत्रु सेना को मार डाले ॥

अतस्तस्य प्रमादिनो बलं गत्वा यथावकाशं दिवानिशं घ्नन्त्वस्मत्सेनापतयः ।' तथानुष्ठिते चित्रवर्णस्य सैनिकाः, सेनापतयश्च बहवो निहताः । ततश्चित्रवर्णो विषण्णः स्वमन्त्रिणं दूरदर्शिनमाह—'तात ! 'किमित्यस्मदुपेक्षा क्रियते ? किं काप्यविनयो ममास्ति ? । तथा चोक्तम्—

प्रमादिनः=असावधानस्य । बलम्=सैन्यम् । यथावकाशम् = यथावसरम् । घ्नन्तु = मारयन्तु । तथाऽनुष्ठिते = एवं सहसाभियाने कृते सति । निहताः= मृताः । विषण्णः=दुःखितः । आह=उक्तवान् । अस्मदुपेक्षा=अस्मत्तिरस्कारः । किम्=कस्मात् हेतोः । अविनयः=धृष्टता ।

इसलिए पहुँच कर हमारे सेनापति यथावकाश रात-दिन उस प्रमादी की सेना का विनाश करें । ऐसा किए जाने पर चित्रवर्ण के बहुत से सेनापति तथा सैनिक मार डाले गए । तब दुखी होकर चित्रवर्ण ने अपने मंत्री दूरदर्शी नाम के गृध्र से कहा—तात, मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं । क्या मुझसे कोई धृष्टता हुई है । जैसा कि कहा भी गया है—

**'न राज्यं प्राप्त'मित्येव वर्तितव्यमसाम्प्रतम् ।
श्रियं ह्यविनयो हन्ति जरा रूपमिवोत्तमम्' ॥ ११४ ॥**

अन्वयः—'राज्यम् प्राप्तम्' इत्येव (विचार्य) असाम्प्रतम् न वर्तितव्यम् हि अविनयः तथा श्रियम् हन्ति (यथा) जरा उत्तमम् रूपम् (हन्ति) ॥ ११४ ॥

राज्यम् प्राप्तम्=राज्यमधिगतम् । असाम्प्रतम्=अनुचितम् । न वर्तितव्यम्= नाचरणीयम् । अविनयः=धाष्ट्र्यम् । श्रियम् = राज्यसम्पदम् । हन्ति = विनाशयति । जरा=वृद्धावस्था । उत्तमं रूपम्=उत्कृष्टं सौन्दर्यम् ॥ ११४ ॥

अब राज्य तो मुझे मिल ही गया, ऐसा सोचकर राजा को अनुचित आचरण नहीं करना चाहिए। क्योंकि धृष्टता राज्यलक्ष्मी का उसी प्रकार विनाश कर डालती है जैसे बुढ़ापा उत्कृष्ट सौन्दर्य को ॥ ११४ ॥

अपि च—'दक्षः श्रियमधिगच्छति, पथ्याशी कल्यतां, सुखमरोगी।
उद्युक्तो विद्यान्तं, धर्मार्थयशांसि च विनीतः' ॥ ११५ ॥

अन्वयः—दक्षः श्रियम्; पथ्याशी कल्यताम्, अरोगी सुखम्, उद्युक्तः विद्यान्तम्, विनीतः धर्मार्थयशांसि च अधिगच्छति ॥ ११५ ॥

दक्षः = चतुरः। श्रियम् = लक्ष्मीम्। पथ्याशी = पथ्यभोक्ता। कल्यताम्= आरोग्यम्। अरोगी=रुग्रहितः। सुखम् = आनन्दम्। उद्युक्तः=उद्योगशीलः। विद्यान्तम्=विद्यायाः पर्यवसानम्। विनीतः=विनम्रः। धर्मार्थयशांसि= धर्मधनकीर्तीः। अधिगच्छति=प्राप्नोति ॥ ११५ ॥

और भी—चतुर लक्ष्मी को, पथ्य (उचित) भोजन करने वाला आरोग्य, नीरोग सुख, परिश्रमी विद्या की पूर्णता तथा विनम्र स्वभाव वाला धर्म, धन और कीर्ति को प्राप्त करते हैं ॥ ११५ ॥

गृध्रोऽवदत्—'देव ! शृणु
'अविद्वानपि भूपालो विद्यावृद्धोपसेवया।
परां श्रियमवाप्नोति जलासन्नतरुर्यथा' ॥ ११६ ॥

अन्वयः—अविद्वान् अपि भूपालः विद्यावृद्धोपसेवया जलासन्नतरुर्यथा परां श्रियमवाप्नोति ॥ ११६ ॥

अविद्वान्=मूर्खः। भूपालः=नृपः। विद्यावृद्धोपसेवया = विदुषाम् सेवनेन। जलासन्नतरुः = जलनिकटस्थवृक्षः। यथा = इव। परां = श्रेष्ठाम्। श्रियम् = लक्ष्मीम्, उन्नतिञ्च। अवाप्नोति = लभते ॥ ११६ ॥

विद्या का ज्ञाता न होते हुए भी राजा विद्वान् की सेवा से उसी प्रकार लक्ष्मी को प्राप्त करता है जैसे जल के समीप रहने वाला वृक्ष उन्नति को प्राप्त करता है ॥ ११६ ॥

अन्यच्च—'पानं, स्त्री, मृगया, द्यूतमर्थदूषणमेव च।
वाग्दण्डयोश्च पारुष्यं, व्यसनानि महीभुजाम्' ॥ ११७ ॥

अन्वयः—पानं······महीभुजाम् व्यसनानि (सन्ति) ॥ ११७ ॥

पानम् = सुरासेवनम्। मृगया = आखेटः। द्यूतम्=अक्षक्रीडा। अर्थदूषणम्= अर्थाशुद्धिः, बलात् धनापहरणम्। वाग्दण्डयोः = कथने दण्डदाने च। पारुष्यम्= नैष्ठुर्यम्। महीभुजाम्=नृपाणाम्। व्यसनानि=दोषाः ॥ ११७ ॥

और भी—शराब पीना, स्त्री में आसक्त रहना, जुआ खेलना, बुरे ढंग से धन एकत्रित करना और बोलने तथा दंड देने में निष्ठुर होना—राजाओं के दुर्गुण हैं ॥ ११७ ॥

किञ्च—'न साहसैकान्त-रसा-नुवर्त्तिना,
न चाप्युपायोपहतान्तरात्मना।
विभूतयः शक्यमवाप्तुमूर्जिता,
नये च, शौर्ये च वसन्ति सम्पदः' ॥ ११८ ॥

अन्वयः—साहसैकान्तरसानुवर्तिना उपायोपहतान्तरात्मना ऊर्जिताः विभूतयः अवाप्तुम् न शक्यम् (यतः) संपदः नये शौर्ये च वसन्ति ॥ ११८ ॥

साहसैकान्तरसानुवर्तिना = साहसैकपरायणेन। उपायोपहतान्तरात्मना = उद्योगचिन्तारहितेन। ऊर्जिताः = वृद्धिं गताः। विभूतयः = सम्पदः। अवाप्तुम्= प्राप्तुम्। न शक्यम् = न शक्याः। सम्पदः = श्रियः। नये = नीतौ। शौर्ये = पराक्रमे च। वसन्ति=निवसन्ति ॥ ११८ ॥

क्योंकि—एकमात्र साहस का ही सहारा लेने वाले तथा केवल उपायमात्र का चिंतन करने वाले बढ़ी हुई विभूतियों को प्राप्त नहीं कर सकते। क्योंकि सम्पत्ति नीति और पराक्रम अर्थात् नीतियुक्त वीरता में ही निवास करती है ॥

त्वया स्वबलोत्साहमवलोक्य, साहसैकरसिकेन मयोपन्यस्तेष्वपि मन्त्रेष्वनवधानं, वाक्पारुष्यं च कृतम्। अतो दुर्नीतेः फलमिदमनुभूयते। तथा चोक्तम्—

स्वबलोत्साहम्=स्वपराक्रमोल्लसनम्। अवलोक्य=दृष्ट्वा। साहसैकरसिकेन= केवलसाहसानुरागेण। मयोपन्यस्तेषु = मया विचार्य प्रस्तावितेषु। मन्त्रेषु= नीतिविधिषु। अनवधानम्=असावधानता, अनादरश्च।

तुमने अपनी सेना और उमंग को देखकर केवल साहस का सहारा लिया और मेरे प्रस्तावित नीतियुक्त मंत्रों के प्रति असावधानी बरती तथा कठोर शब्दों का उच्चारण भी किया। इसीलिए बुरी नीति का फल भोगना पड़ा है। जैसा कि कहा भी गया है—

'दुर्मन्त्रिणं कमुपयान्ति न नीतिदोषाः?
सन्तापयन्ति कमपथ्यभुजं न रोगाः?।

कं श्रीर्न दर्पयति, कं न निहन्ति मृत्युः ?
कं स्त्रीकृता न विषयाः परितापयन्ति ?' ॥ ११९ ॥

अन्वयः—कम् दुर्मन्त्रिणम् नीतिदोषाः न उपयान्ति, कम् अपथ्यभुजम् रोगाः न सन्तापयन्ति, श्रीः कम् न दर्पयति, मृत्युः कं न निहन्ति, स्त्रीकृताः विषयाः कं न परितापयन्ति ॥ ११९ ॥

दुष्टमन्त्रिणम्=दुष्टमन्त्रियुक्तं राजानम् । नीतिदोषाः=मन्त्रदोषाः । अपथ्यभुजम्=कुपथ्याशिनम् । संतापयन्ति = पीडयन्ति । श्रीः = लक्ष्मीः । दर्पयति=मदयति । स्त्रीकृता = स्त्रीसम्बन्धिनः । विषयाः=भोगाभिलाषाः । परितापयन्ति = संक्षोभयन्ति ॥ ११९ ॥

दुष्ट मंत्री वाले किस राजा में नीतिसंबंधी दोष नहीं आ जाते हैं ? अपथ्य भोजन करने वाले किस व्यक्ति को रोग कष्ट नहीं पहुँचाते हैं ? लक्ष्मी किसे अभिमानी नहीं बनाती है, मृत्यु किसका विनाश नहीं करती है ? और स्त्रीसंबंधी विषय किसे पीड़ित नहीं करते हैं ? ॥ ११९ ॥

अपरं च—'मुदं विषादः, शरदं हिमागम-
स्तमो विवस्वान्, सुकृतं कृतघ्नता ।
प्रियोपपत्तिः शुचमापदं नयः,
श्रियः समृद्धा अपि हन्ति दुर्नयः' ॥ १२० ॥

अन्वयः—विषादः मुदम्, हिमागमः शरदम्, विवस्वान् तमः; कृतघ्नता सुकृतम्, प्रियोपपत्तिः शुचम्, नयः आपदम्, दुर्नयः समृद्धाः अपि श्रियः हन्ति ॥ १२० ॥

मुदम्=हर्षम् । विषादः = शोकः । शरदम्=शरदृतुम् । हिमागमः=हेमन्तः । विवस्वान्=रविः । तमः=अन्धकारम् । प्रियोपपत्तिः=इष्टप्राप्तिः । शुचं=शोकम् । आपदम् = विपत्तिम् । नयः = नीतिः । दुर्नयः = दुर्नीतिः । समृद्धाः=उन्नताः । श्रियः=लक्ष्मीः । हन्ति=विनाशयति ॥ १२० ॥

और भी—विषाद आनन्द को, शीतऋतु शरद् को, सूर्य अन्धकार को, कृतघ्नता सत्कर्म को, प्रियवस्तुओं का लाभ शोक को, नीति विपत्ति को, तथा बुरी नीति ऐश्वर्यपूर्ण लक्ष्मी को नष्ट कर देती है ॥ १२० ॥

ततो मयाप्यालोचितम्—'प्रज्ञाहीनोऽयं राजा, न चेत्कथं नीतिशास्त्रकथाकौमुदीं वागुल्काभिस्तिमिरयति । यतः—

मयापि=गृध्रेणापि । आलोचितम्=निरूपितम् । प्रज्ञाहीनः=बुद्धिरहितः । नीतिशास्त्रकथाकौमुदीम् = नीतिशास्त्रकथाज्योत्स्नाम् । वागुल्काभिः=वचनोल्काभिः । तिमिरयति=आच्छादयति ।

तब मैंने भली भाँति जान लिया कि यह राजा बुद्धिहीन है, नहीं तो अपने स्वयं के वाग्जालरूपी उलका से नीतिशास्त्र की वार्तारूपी चाँदनी को क्यों आच्छादित करता ? क्योंकि—

'यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ? ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ?' ॥ १२१ ॥

अन्वयः—यस्य स्वयं प्रज्ञा नास्ति तस्य शास्त्रम् किं करोति । लोचनाभ्याम् विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥ १२१ ॥

यस्य=पुरुषस्य । स्वयम्=आत्मनः । प्रज्ञा=बुद्धिः । तस्य = पुरुषस्य । शास्त्रम् = शास्त्रोपदेशः । किम् करोति=कमुपकारं करोति । लोचनाभ्याम्=नेत्राभ्याम् । विहीनस्य=रहितस्य ॥ १२१ ॥

जिसके पास स्वयं बुद्धि नहीं होती तो शास्त्र उसका क्या उपकार कर सकता है । भला नेत्रहीन के लिए दर्पण की क्या उपयोगिता हो सकती है ॥

इत्यालोच्याहमपि तूष्णीं स्थितः । अथ राजा बद्धाञ्जलिराह—'तात ! अस्त्ययं ममापराधः, इदानीं यथाहमवशिष्टबलसहितः प्रत्यावृत्य विन्ध्याचलं गच्छामि, तथोपदिश ।' गृध्रः स्वगतं चिन्तयति-'क्रियतामत्र प्रतीकारः' । यतः—

इत्यालोच्य=एवं विचार्य । तूष्णीं स्थितः=मौनमासादितम् । बद्धाञ्जलिः=निबद्धकरसम्पुटः । प्रतीकारः=उपायः ।

इस प्रकार विचार करके गृध्र मौन हो गया । तब राजा चित्रवर्ण ने हाथ जोड़कर कहा—तात, यह मेरा अपराध तो है किन्तु अब जिस उपाय से बची हुई सेना के साथ लौट कर विन्ध्याचल जाऊँ, वह उपाय बताइए । गृध्र ने मन में ही विचार किया—अब यहाँ कोई न कोई उपाय करना ही होगा । क्योंकि—

'देवतासु, गुरौ, गोषु, राजसु, ब्राह्मणेषु च ।
नियन्तव्यः सदा कोपो, बाल-वृद्धातुरेषु च' ॥ १२२ ॥

अन्वयः—देवतासु, गुरौ, गोषु, राजसु, ब्राह्मणेषु, बालवृद्धातुरेषु च कोपः सदा नियन्तव्यः ॥ १२२ ॥

देवतासु=देवेषु । गुरौ=गुरुप्रसंगे । राजसु=नृपेषु । ब्राह्मणेषु = द्विजेषु । आतुरेषु=रोगार्तेषु । कोपः=क्रोधः । नियन्तव्यः=निग्रहीतव्यः ॥ १२२ ॥

देवता, गुरु, गाय, राजा, ब्राह्मण, बालक, वृद्ध और रोगी के प्रति अपने क्रोध को सर्वदा रोकते रहना चाहिए ॥ १२२ ॥

मन्त्री प्रहस्य ब्रूते—'देव मा भैषीः, समाश्वसिहि । शृणु देव !

मा भैषीः=भयं मा कुरु । समाश्वसिहि=धैर्यं धारय ।

मंत्री गृद्ध ने हँसकर कहा—राजन्; आप डरें मत । धैर्य धारण करें । हे देव, सुनिए—

'मन्त्रिणां भिन्नसन्धाने, भिषजां सांनिपातिके ।
कर्मणि व्यज्यते प्रज्ञा, सुस्थे को वा न पण्डितः ?' ॥ १२३ ॥

अन्वयः—मन्त्रिणाम् भिन्नसंधाने कर्मणि भिषजाम् सांनिपातिके कर्मणि प्रज्ञा व्यज्यते, सुस्थे कः वा न पण्डितः (भवति) ॥ १२३ ॥

भिन्नसंधाने = भिन्नस्य=स्फुटितस्य, संधाने=मेलने । कर्मणि = व्यापारे । भिषजाम्=वैद्यानाम् । सान्निपातिके=सन्निपातचिकित्सायाम् । प्रज्ञा = बुद्धिः । व्यज्यते=ज्ञायते । सुस्थे=सामान्यस्थितौ ॥ १२३ ॥

फूट पैदा हो जाने पर पुनः उसे मिलाने (दूर करने) के कार्य में मंत्रियों तथा सन्निपात हो जाने पर वैद्यों की बुद्धि का पता चल जाता है । यों सामान्य स्थिति में कौन पंडित नहीं होता है ॥ १२३ ॥

अपरञ्च—'आरभन्तेऽल्पमेवाज्ञाः, कामं व्यग्रा भवन्ति च ।
महारम्भाः कृतधियस्तिष्ठन्ति च निराकुलाः' ॥ १२४ ॥

अन्वयः—(यद्यपि) अज्ञाः अल्पमेव आरभन्ते (किन्तु) कामं व्यग्राः भवन्ति कृतधियः च महारम्भाः निराकुलाः च तिष्ठन्ति ॥ १२४ ॥

अज्ञाः=मूढाः । अल्पमेव=स्तोकमेव । आरभन्ते=प्रारम्भं करोति । कामम्=अत्यन्तम् । व्यग्राः=व्याकुलाः । कृतधियः = कृतबुद्धयः । महारम्भाः = बृहत्कार्यारम्भाः । निराकुलाः=अव्यग्राः ॥ १२४ ॥

बुद्धिहीन किसी छोटे कार्य का आरंभ करके भी अत्यन्त व्यग्र हो जाते हैं किन्तु बुद्धिमान बहुत बड़ा कार्य आरंभ करके भी अत्यन्त धैर्यशाली बने रहते हैं ॥

'तदत्र भवत्प्रतापादेव दुर्गं भङ्क्त्वा, कीर्तिप्रतापसहितं त्वामचिरेण कालेन विन्ध्याचलं नेष्यामि ।' राजाह—'कथमधुना स्वल्पबलेन तत्सम्पद्यते ? ।' गृध्रो वदति—'देव ! सर्वं भविष्यति । यतो

विजिगीषोरदीर्घसूत्रता विजयसिद्धेरवश्यंभावि लक्षणम् । तत्सहसैव दुर्गद्वारावरोधः क्रियताम् ।'

अत्र = अस्मिन्नवसरे । भवत्प्रतापात् = भवत्तेजसः । दुर्गम् = राजहंसस्य दुर्गम् । भङ्क्त्वा = भेदनं कृत्वा । कीर्तिप्रतापसहितम् = यशस्तेजःसमन्वितम् । अचिरेण = शीघ्रमेव । नेष्यामि = प्रापयिष्यामि । स्वल्पबलेन = अत्यल्पसैन्येन । तत् = विन्ध्याचलनयनम् । सम्पद्यते = भवति । अदीर्घसूत्रता = क्षिप्रक्रिया । विजयसिद्धेः = जयलाभस्य ।

इसलिए इस कठिनाई के समय भी आपके प्रताप से ही शत्रु का दुर्ग भेदकर यश और तेज के साथ आपको शीघ्र ही विन्ध्याचल ले चलूँगा । राजा चित्रवर्ण ने कहा—'इस समय इतनी थोड़ी सेना से यह कैसे हो सकता है ।' गृद्ध ने कहा—'राजन्, सब होगा । क्योंकि विजय की अभिलाषा रखने वाले को फलप्राप्ति के लिए कार्य में शीघ्रता अत्यन्त आवश्यक है । अतः सहसा किले पर घेरा डाल देना चाहिए ।'

अथ (प्रहित—) प्रणिधिना बकेनागत्य हिरण्यगर्भस्य कथितं—'देव ! स्वल्पबल एवायं राजा चित्रवर्णो गृध्रस्य वचनोपष्टम्भादागत्य दुर्गद्वारावरोधं करिष्यति ।' राजहंसो ब्रूते—'भोः सर्वज्ञ ! किमधुना विधेयम् ?। चक्रवाको ब्रूते—'स्वबले सारासारविचारः क्रियताम् । तज्ज्ञात्वा सुवर्णवस्त्रादिकं यथार्हं प्रसादप्रदानं च क्रियताम्' ।

प्रहितेन = प्रेषितेन । प्रणिधिना = प्रधानगुप्तचरेण । वचनोपष्टम्भात् = वाक्यबलात् । सारासारविचारः = तत्त्वातत्त्वविमर्शः । तत् ज्ञात्वा = निर्णयम् अवगम्य । यथाऽर्हम्=यथायोग्यम् । प्रसादप्रदानम्=पारितोषिकवितरणम् ।

शत्रुपक्ष का पता लगाने के लिए भेजे गये गुप्तचर बगुले ने आकर हिरण्यगर्भ से कहा—'राजन् थोड़ी सेना होते हुए भी राजा चित्रवर्ण मंत्री गृद्ध की मंत्रणा के बलपर किले पर घेरा डालेगा ।' राजहंस ने कहा—'मंत्री सर्वज्ञ, अब क्या करना चाहिए ।' चकवे ने कहा—अपनी सेना की सबलता-निर्बलता का विचार करना चाहिए । उसे जान कर सोने तथा वस्त्र इत्यादि का यथायोग्य पारितोषिक वितरण करना चाहिए ।

यतः—'यः काकिणीमप्यपथप्रपन्नां
समुद्धरेन्निष्कसहस्रतुल्याम् ।
कालेषु कोटिष्वपि मुक्तहस्त-
स्तं राजसिंहं न जहाति लक्ष्मीः' ॥ १२५ ॥

अन्वयः—यः अपथप्रपन्नाम् काकिणीम् अपि निष्कसहस्रतुल्याम् समुद्धरेत्, (किन्तु) कालेषु कोटिषु अपि मुक्तहस्तः भवेत् तं राजसिंहम् लक्ष्मीः न जहाति ॥ १२५ ॥

अपथप्रपन्नाम्=अस्थानच्युताम् । काकिणीम्=एकाम् कपर्दिकाम् । निष्कसहस्रतुल्याम्=दीनारसहस्रसदृशाम् । समुद्धरेत्=उत्थापयेत् । कालेषु=प्राप्तावसरेषु । कोटिषु=कोटिषु दीनारेषु । मुक्तहस्तः=अविचारितव्ययः । राजसिंहम्=श्रेष्ठं राजानम् । लक्ष्मीः=राज्यश्रीः । न जहाति=न परित्यजति ॥१२५॥

क्योंकि—

जो राजा अनुचित स्थान में पड़ी हुई एक कौड़ी को भी हजारों सोनेके सिक्के के समान समझ कर उठा लेता है, यदि वही समय आने पर करोड़ों का व्यय करने में भी हाथ खोल दे तो उस राजसिंह को लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती है ॥

अन्यच्च—'क्रतौ, विवाहे, व्यसने, रिपुक्षये,
यशस्करे कर्मणि, मित्रसंग्रहे ।
प्रियासु नारीष्वधनेषु बान्धवे-
ष्वतिव्ययो नास्ति नराधिपाष्टसु' ॥ १२६ ॥

अन्वयः—क्रतौ········अष्टसु (अवसरेषु) नराधिपः अतिव्ययः नास्ति ॥

क्रतौ=यज्ञकर्मणि । व्यसने=विपदि । रिपुक्षये=शत्रुविनाशने । यशस्करे कर्मणि = कीर्तिप्रदे व्यापारे । अधनेषु = दरिद्रेषु । बान्धवेषु=स्वजनेषु । अष्टसु=अष्टावसरेषु । नराधिपः=नृपः ॥ १२६ ॥

और भी—यज्ञ में, विवाह में, विपत्ति के समय, शत्रु का विनाश करने में, कीर्ति देने वाले कार्यों में, मित्र बनाने में, प्रिय स्त्री के विषय में, दरिद्रों में तथा अपने बंधुओं में अत्यधिक व्यय करने पर भी राजा इन आठ दशाओं में बहुत खर्च करने वाला नहीं कहा जाता ॥ १२६ ॥

यतः—'मूर्खः स्वल्पव्ययत्रासात्सर्वनाशं करोति हि ।
कः सुधीः सन्त्यजेद्भाण्डं शुल्कस्यैवातिसाध्वसात्' ॥१२७॥

अन्वयः—स्वल्पव्ययत्रासात् मूर्खः सर्वनाशम् करोति हि शुल्कस्यातिसाध्वसात् कः सुधीः भाण्डम् सन्त्यजेत् ॥ १२७ ॥

स्वल्पव्ययत्रासात् = स्तोकव्ययभीत्या । सर्वनाशम्=सर्वधनविनाशनम् । शुल्कस्य=राज्यकरस्य । अतिसाध्वसात् = अतिभयात् । भाण्डम् = द्रव्यम् (माल) । सुधीः=विद्वान्, कार्यकुशलश्च ॥ १२७ ॥

क्योंकि—मूर्ख थोड़े से खर्च के डर से सभी वस्तुओं का नाश कर बैठता है। भला कौन बुद्धिमान् राज्यकर के डर से अपना माल छोड़ देगा ॥ १२७ ॥

राजाह—'कथमिह समयेऽतिव्ययो युज्यते ?' उक्तञ्च—'आपदर्थे धनं रक्षेत्' इति। मन्त्री ब्रूते—'श्रीमतां कथमापदः'। राजाह—'कदाचिच्चलिता लक्ष्मीः।' मन्त्री ब्रूते—'सञ्चितापि विनश्यति।' तद्देव! कार्पण्यं विमुच्य स्वभटा दान-मानाभ्यां पुरस्क्रियन्ताम्'।

इह समये=अस्मिन् विपत्तिकाले। आपदर्थे = विपदर्थे । श्रीमताम्=धनिनाम् । सञ्चितापि=रक्षितापि । कार्पण्यम्=कृपणताम् । विमुच्य = त्यक्त्वा । स्वभटाः=स्वसैनिकाः ।

राजा ने कहा—इस आपत्ति के समय अधिक खर्च कैसे उचित हो सकता है। कहा भी गया है—आपत्ति काल में काम आने के लिए धन का संग्रह करना चाहिए। मंत्री ने कहा—लक्ष्मीवानों को कैसी आपत्ति ? राजा ने कहा—अगर कहीं दैवात् लक्ष्मी जाय तो। मंत्री ने कहा—तो संचित किया हुआ भी नष्ट हो जायगा। इसलिए हे राजन् कंजूसी छोड़ कर दान-मान से अपने योद्धाओं को पुरस्कृत कीजिए। जैसा कि कहा भी गया है—

तथा चोक्तम्—'परस्परज्ञाः, संहृष्टास्त्यक्तुं प्राणान् सुनिश्चिताः।
कुलीनाः, पूजिताः, सम्यग्विजयन्ते द्विषद्बलम् ॥

अन्वयः—परस्परज्ञाः, संहृष्टाः, प्राणान् त्यक्तुं सुनिश्चिताः, कुलीनाः, पूजिताः (भटाः) द्विषद्बलम् सम्यग्विजयन्ते ॥ १२८ ॥

परस्परज्ञाः = एकत्र सम्मिलिताः, अन्योन्यं शुभेच्छुकाश्च । संहृष्टाः = राज्ञा पारितोषिकेण मुदिताः । प्राणान् त्यक्तुं सुनिश्चिताः = प्राणत्यागे दृढनिश्चयाः । कुलीनाः=सद्वंशे प्रसूताः । सम्यक् पूजिताः = सर्वप्रकारेण आदृताः । द्विषद्बलम्=शत्रुसैन्यम् । विजयन्ते=स्वाधीनीकुर्वन्ते ॥ १२८ ॥

आपस में मिलकर एक दूसरे की शुभ कामना करने वाले, राजा के पारितोषिकादि से प्रसन्न, अपने प्राणों के परित्याग करने में भी दृढ़, उच्च वंश में जन्म लेने वाले और राजा द्वारा भली-भाँति सम्मानित सैनिक शत्रु की सेना को जीत लेते हैं ॥ १२८ ॥

अपरञ्च—'सुभटाः, शीलसम्पन्नाः, संहताः, कृतनिश्चयाः ।
अपि पञ्चशतं शूरा निघ्नन्ति रिपुवाहिनीम्' ॥ १२९ ॥

अन्वयः—शीलसम्पन्नाः, संहताः, कृतनिश्चयाः पञ्चशतम् सुभटाः शूराः अपि रिपुवाहिनीम् निघ्नन्ति ॥ १२९ ॥

शीलसम्पन्नाः=शीलपूर्णाः । संहताः = परस्परम् मिलिताः । कृतनिश्चयाः= दृढप्रतिज्ञाः । शूराः सुभटाः = वीरसैनिकाः । रिपुवाहिनीम् = शत्रुसेनाम् । निघ्नन्ति=विघातयन्ति ॥ १२९ ॥

और भी—शीलवान, आपस में मिले हुए, दृढ़ निश्चय वाले बहादुर पाँच सो सैनिक भी सारो शत्रु की सेना का विनाश कर सकते हैं ॥ १२९ ॥

किञ्च—'शिष्टैरप्यविशेषज्ञ, उग्रश्च, कृतनाशकः ।
त्यज्यते, किं पुनर्नान्यैर्यश्चाप्यात्मम्भरिर्नरः' ॥ १३० ॥

अन्वयः—अविशेषज्ञः, उग्रः, कृतनाशकः आतमम्भरिः नरः शिष्टैः अपि त्यज्यते किं पुनः अन्यैः च न (त्यज्यते) ॥ १३० ॥

अविशेषज्ञः = विशेषयोग्यताशून्यः । उग्रः = उद्दण्डः । कृतनाशकः = कार्य-विघातकः । शिष्टैः = साध्वाचरणैः । त्यज्यते = परिह्रीयते । अन्यैः = इतरैः, सामान्यलोकैः । न=न त्यज्यते ? अपितु त्यज्यते एव ॥ १३० ॥

और भी—विशेष योग्यता से रहित, उद्दंड, कार्य को नष्ट करने वाले तथा अपने स्वार्थ की चिन्ता करने वाले मनुष्य को सज्जन भी छोड़ देते हैं साधारण व्यक्ति की तो बात ही क्या ॥ १३० ॥

यतः—'सत्यं, शौर्यं, दया, त्यागो नृपस्यैते महागुणाः ।
एतैस्त्यक्तो महीपालः प्राप्नोति खलु वाच्यताम्' ॥ १३१ ॥

अन्वयः—सत्यं, त्यागः, दया, शौर्यम् एते नृपस्य महागुणाः । एभिः त्यक्तः महीपालः वाच्यताम् खलु प्राप्नोति ॥ १३१ ॥

सत्यम्=सत्यभाषणम् । शौर्यम्=वीरताप्रदर्शनम् । दया=प्रजोपरि कारुण्यम् । त्यागः=सत्पात्रे धनवितरणम् । एभिस्त्यक्तः=उक्तगुणैः मुक्तः । महीपालः=नृपः । वाच्यताम्=लोकनिन्दाम् । प्राप्नोति=अधिगच्छति ॥ १३१ ॥

क्योंकि—सत्य, वीरता दया और त्याग ये राजा के महान् गुण होते हैं। इससे वंचित राजा निश्चय ही लोकनिन्दा का पात्र होता है ॥ १३१ ॥

ईदृशि प्रस्तावेऽमात्यास्तावदवश्यमेव पुरस्कर्त्तव्याः ।

ईदृशि प्रस्तावे = पुरस्कारवितरणप्रसंगे । तावत् = प्रथमम् । अमात्याः = मन्त्रिणः । पुरस्कर्तव्याः=पुरस्कार्याः ।

इस प्रकार का समय उपस्थित होने पर पहले अमात्यों को पुरस्कार देना चाहिए । जैसा कि कहा भी गया है—

तथा चोक्तम्—'यो येन प्रतिबद्धः स्यात्सह तेनोदयी, व्ययी ।
स विश्वस्तो नियोक्तव्यः, प्राणेषु च, धनेषु च' ॥

अन्वयः—यः येन सह प्रतिबद्धः (सः) तेन सह उदयी, व्ययी च भवति, (अतः) सः (एव) विश्वस्तः प्राणेषु च धनेषु च नियोक्तव्यः ॥ १३२ ॥

यः = पुरुषः । येन = येन पुरुषेण नृपेण वा । प्रतिबद्धः = वर्तनपुरस्कारादिग्रहणात् सम्बद्धः । तेन सह = नृपेण सह । उदयी = उन्नतिशीलः । व्ययी= अवनतिशीलः । विश्वस्तः = विश्वासयोग्यः । प्राणेषु = प्राणरक्षणकार्ये । धनेषु = धनरक्षाव्यापारे । नियोक्तव्यः=अधिकारी कार्यः ॥ १३२ ॥

जो व्यक्ति जिस व्यक्ति (राजा) के साथ सम्बन्धित होकर उसकी उन्नति में अपनी भी उन्नति और अवनति में अपनी अवनति समझता है, ऐसे ही विश्वस्त व्यक्ति को प्राणों तथा धन की रक्षा के लिए नियुक्त करना चाहिए ॥ १३२ ॥

यतः—'धूर्त्तः, स्त्री वा, शिशुर्यस्य मन्त्रिणः स्युर्महीपतेः ।
अनीतिपवनक्षिप्तोऽकार्याब्धौ स निमज्जति' ॥ १३३ ॥

अन्वयः—यस्य महीपतेः धूर्तः, शिशुः स्त्री वा मन्त्रिणः स्युः, अनीतिपवनक्षिप्तः सः अकार्याब्धौ निमज्जति ॥ १३३ ॥

यस्य महीपतेः=यस्य राज्ञः । धूर्तः=वञ्चकः । शिशुः=बालः । मन्त्रिणः= मन्त्रदातारः । स्युः = भवेयुः । अनीतिपवनक्षिप्तः=कुनीतिवायुना पातितः । अकार्याब्धौ=दुष्कर्मसागरे । निमज्जति=मग्नो भवति ॥ १३३ ॥

जिस राजा के मंत्री धूर्त, स्त्री या बालक हों वह राजा अनीतिरूपी वायु से कठिन कार्यरूपी समुद्र में फेंक दिया जाता है और डूब भी जाता है ॥ १३३ ॥

शृणु देव !

'हर्षक्रोधौ यतौ यस्य, शास्त्रार्थे प्रत्ययस्तथा ।
नित्यं भृत्यानुपेक्षा च, तस्य स्याद्धनदा धरा' ॥ १३४ ॥

अन्वयः—यस्य हर्षक्रोधौ यतौ, तथा शास्त्रार्थे प्रत्ययः, नित्यम् भृत्यानुपेक्षा च तस्य धरा धनदा स्यात् ॥ १३४ ॥

यस्य = नृपस्य । हर्षक्रोधौ, यतौ = संयतौ । तथा शास्त्रार्थे = शास्त्रवचने । प्रत्ययः = विश्वासः । नित्यम् = सदैव । भृत्यानुपेक्षा = सेवकपर्यवेक्षणम् । च, तस्य, धरा = पृथ्वी । धनदा = वित्तदा, स्यात् ॥ १३४ ॥

राजन् सुनिए—

जो राजा हर्ष तथा क्रोध में समान रूप से संयत रहता है, जिसे शास्त्रवचनों में विश्वास होता है और जो सेवकों पर बराबर ध्यान रखता है, उसकी राज्यभूमि सर्वदा धन देने वाली होती है ॥ १३४ ॥

'येषां राज्ञा सह स्यातामुच्चयापचयौ ध्रुवम् ।
'अमात्या' इति तान् राजा नावमन्येत्कदाचन' ॥ १३५ ॥

अन्वयः—येषाम् राज्ञा सह उच्चयापचयौ ध्रुवम् स्याताम् (ते एव) अमात्याः (भवन्ति अतः) राजा तान् कदाचन न अवमन्येत् ॥ १३५ ॥

येषाम् = पुरुषाणाम् । राज्ञा सह = नृपेण सह । उच्चयापचयौ = उन्नत्यवनती । ध्रुवम् = निश्चितम् । तान् = अमात्यान् । कदाचन = कदाचिदपि । न अवमन्येत् = न तिरस्कुर्यात् ॥ १३५ ॥

जिन अमात्यों की उन्नति तथा अवनति राजा के साथ ही होती है, राजा को चाहिए कि ऐसे अमात्यों का भी निरादर न करे ॥ १३५ ॥

'महीभुजो मदान्धस्य सङ्कीर्णस्येव दन्तिनः ।
स्खलतो हि करालम्बः सुशिष्टैरेव दीयते' ॥ १३६ ॥

अन्वयः—मदान्धस्य स्खलतः दन्तिनः इव संकीर्णस्य महीभुजः सुशिष्टैः एव करालम्बः दीयते हि ॥ १३६ ॥

मदान्धस्य = मदमत्तस्य, राज्यमदोन्मत्तस्य च । दन्तिनः = गजस्य । स्खलतः = पतितस्य विपन्नस्य च । संकीर्णस्य = संकुचितहृदयस्य । महीभुजः = नृपस्य ।

सुशिष्टैः=अप्रमत्तैः सहचरगजैः, शिष्टैः अमात्यैश्च । करालम्बः=शुण्डावलम्बः, हस्ताश्रयश्च । दीयते=वितीर्यते ॥ १३६ ॥

जिस प्रकार मद से मतवाले तथा कीचड़ आदि में गिरने वाले हाथी को उसके अन्य सिखाये हुए स्वस्थ हाथी अपनी सूंड का सहारा देकर बचा लेते हैं। इसी प्रकार अभिमानी तथा छोटे हृदयवाले विपत्ति में पड़े हुए राजा को अमात्य अपने हाथों का सहारा देकर उबार लेते हैं ॥ १३६ ॥

अथागत्य प्रणम्य मेघवर्णो ब्रूते 'देव ! दृष्टिप्रसादं कुरु। इदानीं विपक्षो दुर्गद्वारि वर्त्तते । तद्देवपादादेशाद्बहिर्निःसृत्य स्वविक्रमं दर्शयामि । तेन देवपादानामानृण्यमुपगच्छामि ।'

चक्रवाको ब्रूते—'मैवं, यदि बहिर्निःसृत्य योद्धव्यं, तदा दुर्गाश्रयणमेव निष्प्रयोजनम्' ।' अपरञ्च—

मेघवर्णः=शत्रुचरः वायसः । दृष्टिप्रसादनम्=दर्शनानुग्रहम् । विपक्षः=शत्रुवर्गः । देवपादादेशात्=श्रीमदाज्ञया । बहिर्निःसृत्य=दुर्गात् बहिर्भूत्वा । आनृण्यमुपगच्छामि=ऋणशोधनम् करिष्यामि ।

उसी बीच मेघवर्ण (चित्रवर्ण का कपटदूत जिसे राजहंस चकवे के मना करने पर भी आश्रय दिया था) ने आकर कहा—'राजन्, इधर देखने की कृपा करें । इस समय शत्रु किले के द्वार पर वर्तमान है । इसलिए मैं आपकी आज्ञा से इस किले से बाहर निकल कर अपना पराक्रम दिखाना चाहता हूँ । और इसी कार्य द्वारा आपके ऋण से मुक्त होना चाहता हूँ । चकवे ने कहा—'नहीं ऐसा मत करो ।' अगर बाहर निकल कर ही युद्ध करना है तो किले का आश्रय लेना ही व्यर्थ है । और भी—

'विषमोऽपि यथा नक्रः सलिलान्निसृतो वशः ।
वनाद्विनिर्गतः शूरः सिंहोऽपि स्याच्छगालवत्' ॥ १३७ ॥

अन्वयः—यथा सलिलात् निःसृतः विषमः अपि नक्रः, वनाद्विनिर्गतः सिंहः अपि शूरः (दुर्गात् विनिर्गत्य) शृगालवत् वशः स्यात् ॥ १३७ ॥

सलिलात्=जलात् । निःसृतः=निर्गतः । विषमः=भयङ्करः । नक्रः=कुम्भीरः । वनाद्विनिर्गतः = अरण्यान्निःसृतः, वशः स्यात् = शत्रुणा सारल्येन विजितो भवति ॥ १३७ ॥

भयंकर होते हुए भी घड़ियाल पानी से बाहर निकल कर, तथा बहादुर सिंह भी जंगल से बाहर जाकर गीदड़ के समान दूसरों द्वारा वश में कर लिया जाता है ॥ १३७ ॥

[वायसो ब्रूते—] 'देव ! स्वयं गत्वा दृश्यतां युद्धम्' । यतः—

राजन् आप स्वयम् चल कर युद्ध देखिये क्योंकि—

'पुरस्कृत्य बलं राजा योधयेदवलोकयन् ।
स्वामिनाधिष्ठितः श्वापि किं न सिंहायते ध्रुवम्' ॥१३८॥

अन्वयः—राजा बलम् पुरस्कृत्य (तत्) अवलोकयन् योधयेत् । स्वामिनाधिष्ठितः श्वापि किं ध्रुवम् न सिंहायते ॥ १३८ ॥

राजा = नृपः । बलम् = सैन्यम् । पुरस्कृत्य = अग्रे कृत्वा । अवलोकयन् = निरीक्षमाणः । योधयेत् = युद्धं कारयेत् । स्वामिनाधिष्ठितः = प्रभुणा सनाथः । श्वापि=कुक्कुरोऽपि । ध्रुवम्=निश्चितम् । सिंहायते=सिंहः इव आचरति ॥१३८॥

राजा सेना को आगे करके स्वयम् उसका निरीक्षण करते हुए युद्ध कराये क्योंकि स्वामी के साथ रहने से कुत्ता भी निश्चय ही सिंह जैसा पराक्रम दिखाता है ॥ १३८ ॥

अथ ते सर्वे दुर्गद्वारं गत्वा महाहवं कृतवन्तः । अपरेद्युश्चित्रवर्णो राजा गृध्रमुवाच–'तात ! स्वप्रतिज्ञातमधुना निर्वाहय ।'

गृध्रो ब्रूते—'देव ! शृणु तावत्'—

महाहवम्=महायुद्धम् । ते=राजहंसादयः । अपरेद्युः = अन्यदिने । स्वप्रतिज्ञातम्=निजप्रतिश्रुतम् । निर्वाहय=पूरय ।

तब वे सभी दुर्ग के द्वार पर जाकर महान युद्ध करने लगे । दूसरे दिन चित्रवर्ण ने गृध्र से कहा—'तात अब, अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिए ।' गृद्ध ने कहा तो सुनिए—

'अकालसहमत्यल्पं, मूर्खव्यसनिनायकम् ।
अगुप्तं, भीरुयोधं च दुर्गव्यसनमुच्यते ॥ १३९ ॥

अन्वयः—अकालसहम्·········दुर्गव्यसनम् उच्यते ॥ १३९ ॥

अकालसहम् = बहुकालावरोधस्य सहने अशक्तम् । मूर्खव्यसनिनायकम् = युद्धविधानाज्ञमद्यपानादिव्यसनासक्तरक्षकम् । अगुप्तम् = अरक्षितम् । भीरुयोधम्= कृपणसैनिकम् । दुर्गव्यसनम्=दुर्गदूषणम् । उच्यते=कथ्यते ॥ १३९ ॥

बहुत दिनों के घेरे को सहन करने में असमर्थता, मूर्ख और व्यसनी नायकों के हाथ में रक्षा का भार होना, भलीभाँति रक्षित न होना और कायर सैनिकों से युक्त होना दुर्ग के दोष कहे जाते हैं ॥ १३९ ॥

तत्तावदत्र नास्ति ।

'उपजापश्चिरारोधोऽवस्कन्दस्तीव्रपौरुषम् ।
दुर्गस्य लङ्घनोपायाश्चत्वारः कथिता इमे' ॥ १४० ॥

अन्वयः—उपजापः, चिरारोधः, अवस्कन्दः, तीव्रपौरुषम्, इमे चत्वारः दुर्गस्य लंघनोपायाः कथिताः ॥ १४० ॥

उपजापः=दुर्गान्तरे सैनिकानाम् मिथो भेदः । चिरारोधः=दुर्गस्य बहुकालावरोधः । अवस्कन्दः=सहसाक्रमणम् । तीव्रपौरुषम्=अतिपराक्रमः । लङ्घनोपायाः=विजयोपायाः ॥ १४० ॥

वे सब तो इस दुर्ग में नहीं हैं ।

किले के भीतर सैनिकों में फूट डाल देना, बहुत समय तक घेरा डाले रहना, सहसा आक्रमण कर देना और अत्यन्त कठिन पौरुष करना यही चार दुर्ग जीतने के उपाय हैं ॥ १४० ॥

अत्र यथाशक्ति क्रियते यत्नः । कर्णे कथयति—एवमेवम् । ततोऽनुदित एव भास्करे चतुर्ष्वपि दुर्गद्वारेषु प्रवृत्ते युद्धे, दुर्गाभ्यन्तरगृहेष्वेकदा काकैरग्निर्निक्षिप्तः ततः 'गृहीतं गृहीतं दुर्गम्' इति कोलाहलं श्रुत्वा सर्वतः प्रदीप्ताग्निमवलोक्य, राजहंससैनिका, बहवो दुर्गवासिनश्च सत्वरं ह्रदं प्रविष्टाः । यतः—

अनुदिते=अनभ्युदिते । भास्करे=सूर्ये । एकदैव = सहसा । प्रदीप्ताग्निम् = प्रज्वलिताग्निम् । सत्वरम्=शीघ्रम् । ह्रदं=सरोवरम् ।

अब यहाँ शक्तिभर प्रयत्न करना चाहिए । कान में कहता है—ऐसे ही ?, अभी सूर्य निकला भी नहीं था कि किले के चारों द्वारों पर भयंकर युद्ध होने लगा । इसी बीच कौवे ने किले के भीतर आग लगा दी । फिर 'किला ले लिया, ले लिया' इस प्रकार के कोलाहल सुनकर तथा जलती हुई आग देखकर राजहंस के सभी सैनिक तथा किले के रहने वाले शीघ्र ही तालाब में घुस गए । क्योंकि—

**सुमन्त्रितं, सुविक्रान्तं, सुयुद्धं, सुपलायितम् ।
कार्यकाले यथाशक्ति कुर्यान्नतु विचारयेत् ॥ १४१ ॥**

अन्वयः—कार्यकाले सुमन्त्रितम्, सुविक्रान्तम्, सुयुद्धम्, सुपलायितम् यथाशक्ति (त्वरितम्) कुर्यात् न तु विचारयेत् ॥ १४१ ॥

कार्यकाले=प्राप्तावसरे । सुमन्त्रितम् = सुष्ठुविमर्शनम् । सुविक्रान्तम् = पराक्रमातिप्रदर्शनम् । सुयुद्धम् = सुष्ठुरीत्या युद्धकरणम् । सुपलायितम् = विजयस्य

सर्वोपाये विनष्टे सति पलायनम्। यथाशक्ति=शक्त्यनुसारेण। त्वरितम् कुर्यात्, न तु विचारयेत्=विमृशेत् ॥ १४१ ॥

समय आ जाने पर अच्छी मंत्रणा, अच्छा पराक्रम, अच्छी लड़ाई और ठीक ढंग से भागने का काम तत्काल कर डालना चाहिए। इसमें किसी प्रकार का विचार नहीं करना चाहिए ॥ १४१ ॥

राजा हंसश्च स्वभावान्मन्दगतिः, सारसद्वितीयश्चित्रवर्णस्य सेनापतिना कुक्कुटेनागत्य वेष्टितः। हिरण्यगर्भः सारसमाह—'सेनापते! सारस'! ममानुरोधादात्मानं कथं व्यापादयसि। (अधुनाहं गन्तुमसमर्थः), त्वं गन्तुमधुनापि समर्थः। तद्गत्वा जलं प्रविश्यात्मानं परिरक्ष। अस्मत्पुत्रं चूडामणिनामानं सर्वज्ञस्य संमत्या राजानं करिष्यसि'। सारसो ब्रूते—'देव! न वक्तव्यमेवं दुःसहं वचः, यावच्चन्द्रार्कौ दिवि तिष्ठतस्तावद्विजयतां देवः। अहं देव! दुर्गाधिकारी। तन्मम मांसासृग्विलिप्तेन द्वारवर्त्मना तावत् प्रविशतु शत्रुः'। अपरञ्च-देव!

मन्दगतिः=धीरगमनः। सारसद्वितीयः=सारसेन सहितः। वेष्टितः=आक्रान्तः। ममानुरोधात् = मदपेक्षणात्। व्यापादयसि = मारयसि। दुःसहं वचः=कठोर-वचनम्। दिवि=आकाशे। चन्द्रार्कौ=शशिसूर्यौ। दुर्गाधिकारी = दुर्गपतिः। मांसासृग्विलिप्तेन=मांसरुधिरपूरितेन। द्वारवर्त्मना=दुर्गद्वारमार्गेण।

स्वभाव से ही धीरे-धीरे चलने वाला राजहंस सारस के साथ जाते समय चित्रवर्ण के सेनापति मुर्गे द्वारा घेर लिया गया। तब हिरण्यगर्भ ने सारस से कहा—'सेनापति सारस, मेरी प्रतीक्षा में तुम अपना विनाश क्यों करोगे? तुम इस समय जा सकते हो। इसलिए जल में जाकर अपनी रक्षा करो। मेरे पुत्र चूडामणि को सर्वज्ञ की राय से राजा बना देना। सारस ने कहा—'राजन्, आप ऐसी असह्य बात न कीजिए। जब तक आकाश में सूर्यचन्द्रमा स्थित रहे तब तक आप विजयी बने रहें। राजन्, मैं दुर्ग का अधिकारी हूँ। इसलिए मेरे मांस और रक्त से सने हुए द्वार के मार्ग से ही शत्रु भीतर जाने पावेंगे और भी—

'दाता, क्षमी, गुणग्राही स्वामी दुःखेन लभ्यते'।

राजाह—'सत्यमेवैतत्'! किन्तु—

'शुचिर्दक्षोऽनुरक्तश्च जाने भृत्योऽपि दुर्लभः' ॥ १४२ ॥

अन्वयः—दाता क्षमी········भृत्यः अपि दुर्लभः जाने ॥ १४२ ॥

दाता=दानशील: । क्षमी=क्षमायुक्त: । गुणग्राही=गुणानुरक्त: । स्वामी= प्रभु: । दु:खेन=अत्यायासेन । लभ्यते=प्राप्यते । शुचि:=शुद्धाचरण: । दक्ष:= सेवायाम् कुशल: । अनुरक्त:=स्वामिभक्त: । दुर्लभ:=दुराप: । जाने=मन्ये ॥१४२॥

दाता, क्षमाशील और गुणों को ग्रहण करने वाले स्वामी बड़ी कठिनाई से मिलते हैं ।

राजा ने कहा—यह तो ठीक है, किन्तु—

मैं ऐसा समझता हूँ कि पवित्र, चतुर एवं स्वामिभक्त सेवक भी दुर्लभ होते हैं ॥ १४२ ॥

सारसो ब्रूते—'श्रृणु देव !

'यदि समरमपास्य नास्ति मृत्यो-
र्भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम् ।
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः,
किमिति मुधा मलिनं यशः क्रियेत ? ॥ १४३ ॥

अन्वयः—यदि समरम् अपास्य मृत्योर्भयम् नास्ति इति (तर्हि) इतोऽन्यतः प्रयातुम् युक्तम् । अथ जन्तो: मरणम् अवश्यम् एव (तर्हि) यश: मुधा किमिति मलिनम् क्रियेत ॥ १४३ ॥

यदि=चेत् । समरम्=युद्धम् । अपास्य=त्यक्त्वा पलायिते सति । मृत्यो- र्भयम्=मृत्युभीति: । न=न भवेत् । तर्हि । इतोऽन्यत: = समरभूमे: अन्यत्र । प्रयातुम्=गन्तुम् । युक्तम्=उचितम् । अथ=चेत् । जन्तो:=प्राणिन: । मरणम्= मृत्यु: । अवश्यमेव=ध्रुवमेव । तर्हि । यश: = कीर्ति: । मुधा=वृथा । किमिति= कथम् । मलिनम्=म्लानम्, क्रियेत=विधीयेत ॥ १४३ ॥

सारस ने कहा—राजन्, सुनिए ।

यदि युद्ध छोड़ कर भाग जाने से मृत्यु का भय नष्ट हो जाये तो यहाँ से दूसरी जगह भाग जाना उचित हो सकता है । किन्तु जब प्राणी के लिए मृत्यु अवश्यम्भावी है तो व्यर्थ ही भागकर कीर्ति को मलिन क्यों बनाया जाय ॥१४३॥

अन्यच्च—'भवेऽस्मिन्पवनोद्भ्रान्तवीचिविभ्रमभङ्गुरे ।
जायते पुण्ययोगेन परार्थे जीवितव्ययः ॥ १४४ ॥

अन्वयः—पवनोद्भ्रान्तवीचिविभ्रमभङ्गुरे अस्मिन्भवे पुण्ययोगेन परार्थे जीवितव्यय: जायते ॥ १४४ ॥

पवनोद्भ्रान्तेन=वायुनोत्थितेन । वीचिविभ्रमभङ्गुरे=तरङ्गविलासवत् नाश-शीलो । अस्मिन्भवे=अस्मिन् संसारे । पुण्ययोगेन=सुकृतसंपर्केण । परार्थे=अन्योपकारव्यापारे । जीवितव्ययः=प्राणोत्सर्जनम् । जायते=भवति ॥ १४४ ॥

और भी—वायुद्वारा उठने-गिरने वाली चंचल लहरों के समान क्षण भरमें नाश हो जाने वाले इस संसार से बड़े पुण्य से ही दूसरों की भलाई में प्राणत्याग करने का अवसर मिलता है ॥ १४४ ॥

'स्वाम्यमात्यश्च, राष्ट्रं च, दुर्गं, कोशो, बलं, सुहृत् ।
राज्याङ्गानि प्रकृतयः, पौराणां श्रेणयोऽपि च' ॥ १४५ ॥

अन्वयः—स्वामी, अमात्यः, राष्ट्रम्, दुर्गम्, कोशः, बलम्, सुहृत्, प्रकृतयः, पौराणाम् श्रेणयः अपि च राज्याङ्गानि ॥ १४५ ॥

स्वामी = नृपः । अमात्यः = मन्त्री । राष्ट्रं=स्वशासितदेशः । दुर्गम्=दुर्गमः युद्धोपकरणयुक्तं विशालं राजभवनम् । बलम् = सैन्यम् । सुहृत्=मित्रम् । प्रकृतयः=प्रजाः । पौराणाम्=पुरवासिनाम् । श्रेणयः=मण्डलानि । राज्याङ्गानि=राज्यस्य अवयवाः ॥ १४५ ॥

राजा, मंत्री, राष्ट्र दुर्ग, कोश, सेना, मित्र तथा प्रजा एवं नागरिकों के मंडल-ये आठ राज्य के अङ्ग होते हैं ॥ १४५ ॥

देव ! त्वं च स्वामी, सर्वथा रक्षणीयः । यतः—

'प्रकृतिः स्वामिनं त्यक्त्वा समृद्धापि न जीवति ।
अपि धन्वन्तरिर्वैद्यः, किं करोति गतायुषि' ॥ १४६ ॥

अन्वयः—स्वामिनम् त्यक्त्वा समृद्धापि प्रकृतिः न जीवति । धन्वन्तरिः वैद्यः अपि गतायुषि किं करोति ॥ १४६ ॥

स्वामिनम्=राजानम् । त्यक्त्वा=विहाय । समृद्धा=सर्वंभवा । प्रकृतिः= प्रजा । धन्वन्तरिः वैद्यः=तन्नामा कुशलवैद्यः अपि । गतायुषि=क्षीणायुषि । किं करोति=न किमपि कर्तुं प्रभवेत् ॥ १४६ ॥

राजन्, आप स्वामी हैं इसलिए आप की रक्षा सभी प्रकार से होनी ही चाहिए । क्योंकि—

धन-धान्य से भरी-पूरी होने पर भी प्रजा स्वामी को छोड़कर जीवित नहीं रह सकती । अगर किसी रोगी की आयु ही समाप्त हो जाय तो धन्वन्तरि वैद्य भी क्या कर सकते हैं ॥ १४६ ॥

अपरञ्च—'नरेशे जीवलोकोऽयं निमीलति, निमीलति।
उदेत्युदीयमाने च रवाविव सरोरुहम्'॥ १४७॥

अन्वयः—अयम् जीवलोकः नरेशे निमीलति निमीलति, उदीयमाने रवौ सरोरुहम् इव उदेति॥ १४७॥

अयम् जीवलोकः = दृश्यमानप्राणिवर्गः। नरेशे=राजनि। निमीलति= विपन्ने मृते वा सति। निमीलति=विपन्नो भवति, म्रियते च। उदीयमाने= अभ्युदयमापन्ने। उदेति=अभ्युदयमाप्नोति। रवौ=सूर्ये। निमीलति = अस्तं गच्छति सति। निमीलति=मुकुलीभवति, सरोरुहम्=कमलम्, इव=यथा॥

यह सारे प्राणी राजा के नष्ट हो जाने पर नष्ट हो जाते हैं और सूर्य के उदय होने पर कमल के समान राजा की उन्नति से विकसित हो जाते हैं॥

अत्रापि प्रधानाङ्गं राजा।

अथ कुक्कुटेनागत्य राजहंसस्य शरीरे खरतरनखाघातः कृतः। तदा सत्वरमुपसृत्य सारसेन स्वदेहान्तरितो राजा जले क्षिप्तः।

अथ कुक्कुटनखप्रहारजर्जरीकृतेनापि सारसेन कुक्कुटसेना बहुशो हता। पश्चात्सारसोऽपि बहुभिः पक्षिभिः समेत्य चञ्चुप्रहारेण विभिद्य व्यापादितः। अथ चित्रवर्णो दुर्गं प्रविश्य, दुर्गावस्थितं द्रव्यं ग्राहयित्वा, वन्दिभिर्जयशब्दैरानन्दितः स्वस्कन्धावारं जगाम।

शरीरे=देहे। खरतरनखाघातः=तीक्ष्णनखप्रहारः। स्वदेहान्तरितः=निजशरीरवेष्टितः। नखप्रहारेण=नखाघातेन। जर्जरीकृतेन=छिन्नभिन्नशरीरेण। विभिद्य = विदार्य। व्यापादितः=हतः। चञ्चुप्रहारेण = तुण्डाघातेन। दुर्गम्= राजहंसदुर्गम्। दुर्गावस्थितम्=दुर्गे विद्यमानम्। द्रव्यम्=पदार्थम्। ग्राहयित्वा= निजाधिकारिणे समर्प्य। स्वस्कन्धावारम्=स्वसेनानिवेशम्। वन्दिभिः=चारणैः। तस्मिन् राजबले=राजहंसस्य सैन्ये। पुण्यवान्=पुण्यात्मा। स्वदेहत्यागेन = निजशरीरविसर्जनेन।

इसके पश्चात् मुर्गे ने आकर अपने तेज नखों का प्रहार किया किन्तु सारस ने शीघ्रता के साथ अपने शरीर से उसे ढककर पानी में फेंक दिया। यद्यपि मुर्गो के

नख की चोट से सारस का शरीर छिन्न-भिन्न हो गया फिर भी उसने बहुत-सी मुर्गों की सेना को मार गिराया। किन्तु मुर्गों के चोचों की मार से अन्त में वह मर गया। इसके बाद चित्रवर्ण ने किले में प्रवेश किया और वहाँ की वर्तमान सभी सामग्री को लेकर चारणों के जय शब्द से आनंदित होता हुआ अपने पड़ाव पर चला गया।

अथ राजपुत्रैरुक्तम्—'तस्मिन्राजहंसबले पुण्यवान् स सारस एव, येन स्वदेहत्यागेन स्वामी रक्षितः'। यतः—

'जनयन्ति सुतान् गावः सर्वा एव गवाकृतीन्।
विषाणोल्लिखितस्कन्धं काचिदेव गवां पतिम्' ॥ १४८ ॥

अन्वयः—सर्वाः गावः एव गवाकृतीन् सुतान् जनयन्ति (किन्तु) विषाणोल्लिखितस्कन्धम् गवाम् पतिम् काचिदेव (जनयति) ॥ १४८ ॥

सर्वाः गावः=सर्वाः सुरभयः। गवाकृतीन्=स्वसमानाकृतीन्। सुतान्=वत्सान्। जनयन्ति=उत्पादयन्ति। विषाणोल्लिखितस्कन्धम्=शृङ्गक्षतककुदम्। गवां पतिम्=बलीवर्दश्रेष्ठम् ॥ १४८ ॥

राजकुमारों ने कहा—उस राजहंस की सेना में सारस ही पुण्यात्मा था जिसने अपने शरीर का त्याग करके स्वामी की रक्षा की। ऐसा कहा भी गया है—

सभी गायें बैलों जैसी आकृति वाले बछड़ों को जन्म देती हैं किन्तु युद्ध में सींगों के प्रहार से कटे हुए कंधों वाले साँड़ का जन्म कोई-कोई गाय ही देती है॥

विष्णुशर्मोवाच—'स तावत्सत्त्वक्रीतानक्षयलोकान् विद्याधरीपरिवृतोऽनुभवतु महासत्त्वः'। तथा चोक्तम्—

सः=सारसः। विद्याधरीपरिवृतः=विद्याधरीभिः सेवितः। महासत्त्वः=महापराक्रमः।

विष्णुशर्मा ने कहा—वह महापराक्रमी तो विद्याधरियों से घिरा हुआ स्वर्ग सुख का अनुभव कर रहा होगा। जैसा कि कहा गया है—

'आहवेषु च ये शूराः स्वाम्यर्थे त्यक्तजीविताः।
भर्तृभक्ताः, कृतज्ञाश्च, ते नराः स्वर्गगामिनः' ॥ १४९ ॥

अन्वयः—ये आहवेषु शूराः, स्वाम्यर्थे त्यक्तजीविताः भर्तृभक्ताः कृतज्ञाः च (भवन्ति) ते नराः स्वर्गगामिनः भवन्ति ॥ १४९ ॥

ये=नराः । आहवेषु=युद्धेषु । शूराः=पराक्रमशीलाः । स्वाम्यर्थे=नृपाथ । त्यक्तजीविताः=परित्यक्तप्राणाः । भर्तृभक्ताः=स्वामिभक्ताः ॥ १४९ ॥

जो वीर युद्ध में स्वामी की रक्षा में अपने प्राणों का परित्याग कर देते हैं ऐसे स्वामिभक्त और कृतज्ञ लोग स्वर्ग मे चले जाते हैं ॥ १४९ ॥

'यत्र तत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः ।
अक्षयाँल्लभते लोकान्यदि क्लैब्यं न गच्छति' ॥ १५० ॥

अन्वयः—यत्र तत्र शत्रुभिः परिवेष्टितः हतः शूरः यदि क्लैब्यम् न गच्छति (तर्हि) अक्षयान् लोकान् लभते ॥ १५० ॥

यत्र तत्र=यत्र कुत्रापि स्थाने । शत्रुभिः = अरिभिः । परिवेष्टितः=आक्रान्तः । हतः=मृतः । शूरः = वीरः । क्लैब्यम् = दैन्यम् । अक्षयान् लोकान्=ब्रह्मादिनित्यलोकान् । लभते=प्राप्नोति ॥ १५० ॥

शत्रुओं से घिर कर जहाँ कहीं भी मरा हुआ वीर यदि कायरता न दिखाये तो वह अक्षय लोक को प्राप्त करता है ॥ १५० ॥

अथ विष्णुशर्मा प्राह—

विग्रहः श्रुतो भवद्भिः । राजपुत्रैरुक्तम्-'श्रुत्वा सुखिनो भूता वयम् ।' विष्णुशर्माब्रवीत्-अपरमप्येवमस्तु—

'विग्रहः करितुरङ्गपत्तिभि—
र्नो कदापि भवतान्महीभुजाम् ।
नीतिमन्त्रपवनैः समाहताः
संश्रयन्तु गिरिगह्वरं द्विषः ॥ १५१ ॥

इति श्रीनारायणपण्डितकृते हितोपदेशे नीतिशास्त्रे
विग्रहो नाम तृतीयः कथासंग्रहः ॥ ३ ॥

अन्वयः—करितुरङ्गपत्तिभिः कदापि महीभुजाम् विग्रहः न भवतात् नीतिमन्त्रपवनैः समाहताः द्विषः गिरिगह्वरम् संश्रयन्तु ॥ १५१ ॥

करितुरङ्गपत्तिभिः = गजाश्वपदातिकैः सह । कदापि महीभुजां = राज्ञाम्, विग्रहः = युद्धम् । नो भवतात् = न भूयात् । नीतिमन्त्रपवनैः=नयसुमन्त्रानिलैः ।

समाहता:=प्रताडिता: । द्विष:=शत्रव: । गिरिगह्वरम्=पर्वतकन्दरम् । संश्रयन्तु=अवलम्बन्ताम् ॥ १५१ ॥

—: ० :—

फिर विष्णुशर्मा ने कहा—

आपलोगों ने विग्रह सुन लिया। राजपुत्रों ने कहा—सुनकर हमलोग सुखी हुए। विष्णुशर्मा ने कहा—अब यह और भी हो।

राजाओं का हाथी, घोड़े तथा पैदल सेना में कभी भी युद्ध न हो। किन्तु शत्रु नीति और मंत्रणा रूपी वायु से पीड़ित होकर पहाड़ की गुफाओं का आश्रय लें। अर्थात् राजा लोग नीतिकुशलता तथा मंत्रियों की सन्मंत्रणा से ही शत्रुओं को मार भगाएँ ॥ १५१ ॥

—: ० :—

॥ श्रीः ॥

हितोपदेशः

—:०:—

सन्धिः

पुनः कथारम्भकाले राजपुत्रैरुक्तम्—'आर्य ! विग्रहः श्रुतोऽस्माभिः । सन्धिरधुनाभिधीयताम् ।' विष्णुशर्मणोक्तम्—'श्रूयताम्, सन्धिमपि कथयामि । यस्यायमाद्यः श्लोकः—

पुन: कथारंभकाले=भूय: कथाप्रारंभसमये । आर्य=संमान्य । विग्रह:=युद्धम् । श्रुत:=आकर्णित: । संधि:=परस्परमेलनम् । अधुना=इदानीम् । अभिधीयताम्=कथ्यताम् ।

फिर कथा प्रारम्भ होने के समय राजपुत्रों ने कहा—'आर्य, हम लोगों ने युद्ध का प्रसंग सुन लिया, अब संधि का प्रसङ्ग सुनाइए ।' विष्णुशर्मा ने कहा—सुनिए, संधि का विषय भी कह रहा हूँ । जिसका पहिला श्लोक यह है—

'वृत्ते महति संग्रामे राज्ञोर्निहतसेनयोः ।
स्थेयाभ्यां गृध्र-चक्राभ्यां वाचा सन्धिः कृतः क्षणात्' ॥१॥

राजपुत्रा ऊचुः—'कथमेतत् ?' । विष्णुशर्मा कथयति—

अन्वयः—महति संग्रामे वृत्ते स्थेयाभ्याम् गृध्रचक्राभ्याम् निहतसेनयो: राज्ञो: क्षणात् वाचा सन्धि: कृत: ॥ १ ॥

महति—अतिभीषणे । संग्रामे=युद्धे । वृत्ते=सञ्जाते सति । स्थेयाभ्याम्=मध्यस्थाभ्याम् । गृध्रचक्राभ्याम्=द्वयो: राज्ञ: मन्त्रिभ्याम् । निहतसेनयो:=नष्टबलयो: । राज्ञो:=हंसमयूरयो: नृपयो: । क्षणात्=तत्कालमेव । वाचा = वाङ्मात्रेणैव । सन्धि:=परस्परमेलनम् । कृत:=विहित: ॥ १ ॥

उन दोनों राजाओं (राजहंस तथा चित्रवर्ण) के बीच भयानक युद्ध होने तथा दोनों पक्षों के बहुत से सैनिकों के मारे जाने पर उन दोनों के प्रधान मन्त्री चकवे तथा गृद्ध ने बीच में पड़कर क्षण भर में ही बातचीत के द्वारा सन्धि कर ली ॥ १ ॥

राजपुत्रों ने कहा—'वह कैसे हुआ ?' विष्णुशर्मा ने कहा—

'ततस्तेन राजहंसेनोक्तं—केनास्मद्दुर्गे निक्षिप्तोऽग्निः ?। किं पारक्येण ?, किं वास्मद्दुर्गवासिना केनापि विपक्षप्रयुक्तेन ?' चक्रवाको ब्रूते-देव ! भवतो निष्कारणबन्धुरसौ मेघवर्णः सपरिवारो न दृश्यते। तन्मन्ये तस्यैव विचेष्टितमिदम् ।'

राजा क्षणं विचिन्त्याह—'अस्ति तावदेवं, मम दुर्दैवमेतत्'। तथा चोक्तम्—

तेन=केनापि प्रकारेण सारसेन रक्षितेन। राजहंसेन=हिरण्यगर्भेण। अग्नि:=वह्नि:। निक्षिप्त:=पातित:। पारक्येण = अपरपक्षीयेण। विपक्षप्रयुक्तेन=शत्रुणा नियुक्तेन। भवत:=तव। निष्कारणबन्धु: = अकारणसुहृद्। न दृश्यते=नावलोक्यते। मन्ये=जाने। विचेष्टितम्=निष्पादितम्। इदम् = अग्निप्रक्षेपणम्। अस्ति तावदेवम्=युक्तमेतदेवम्। दुर्दैवम्=दुर्भाग्यम्।

इसके पश्चात् उस राजहंस ने कहा—'हमारे किले में आग किसने फेंकी थी ? क्या किसी शत्रु ने अथवा मेरे किले में ही रहने वाले शत्रु से मिले हुए किसी व्यक्ति ने ? चकवे ने कहा—राजन्, आपका अकारणबंधु बना हुआ मेघवर्ण इस समय अपने परिवार वालों के साथ यहाँ नहीं दिखाई पड़ रहा है इसलिए मैं समझता हूँ कि उसी ने यह अग्निकांड किया है। राजा ने थोड़ी देर सोच कर कहा—हाँ, ऐसा ही है; किन्तु यह मेरा दुर्भाग्य भी है। जैसा कि कहा भी गया है—

अपराधः स दैवस्य, न पुनर्मन्त्रिणामयम् ।
कार्यं सुचरितं क्वापि दैवयोगाद्विनश्यति ॥ २ ॥

मन्त्री ब्रूते-'उक्तमेवैतत्—

अन्वयः—स दैवस्य अपराध: न पुन: अयम् मंत्रिणाम् (अपराध:) क्वापि सुचरितम् कार्यमपि दैवयोगात् विनश्यति ॥ २ ॥

स:=पराजय:। दैवस्य=भाग्यस्य। अपराध:=दोष:। अयम् मन्त्रिणाम् दोष: न। क्वापि=कुत्रापि। सुचरितम्=सुनिष्पन्नमपि। कार्यम् = करणीयम्। दैवयोगात्=भाग्यवशात्। विनश्यति=विनाशमुपगच्छति ॥ २ ॥

यह जो कुछ हुआ वह सभी दुर्भाग्य के दोष से ही हुआ। इसमें मंत्रियों का कोई भी दोष नहीं है। क्योंकि कभी-कभी भली-भाँति सोच कर किए गए कार्य भी भाग्यदोष से नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

मंत्री चक्रवाक ने कहा—'यह भी तो कहा गया है—

'विषमां हि दशां प्राप्य दैवं गर्हयते नरः ।
आत्मनः कर्मदोषांश्च नैव जानात्यपण्डितः' ॥ ३ ॥

अन्वयः—नरः विषमां दशाम् प्राप्य दैवं गर्हयते । अपंडितः आत्मनः कर्म-दोषान् नैव जानाति ॥ ३ ॥

नरः = मनुष्यः । विषमाम्=विपत्तिभीषणाम् । दशाम् = स्थितिम् । प्राप्य= लब्ध्वा । दैवम्=भाग्यम् । गर्हयते = विनिन्दति । अपंडितः = मूर्खः । आत्मनः= स्वस्य । कर्मदोषात् = कर्तव्यच्युतीः । न जानाति=नावगच्छति ॥ ३ ॥

मनुष्य विपत्तियों में पड़ कर भाग्य को दोष देता है किन्तु वह मूर्ख अपने किए हुए काम की त्रुटियों को नहीं समझता है ॥ ३ ॥

अपरञ्च—'सुहृदां हितकामानां यो वाक्यं नाभिनन्दति ।
स कूर्म इव दुर्बुद्धिः काष्ठाद् भ्रष्टो विनश्यति' ॥ ४ ॥

अन्वयः—यः हितकामानाम् सुहृदाम् वाक्यम् न अभिनन्दति स दुर्बुद्धिः काष्ठाद् भ्रष्टः कूर्म इव विनश्यति ॥ ४ ॥

यः=नरः । हितकामानाम्=शुभेच्छुकानाम् । सुहृदाम्=मित्राणाम् । वाक्यम्= उपदेशम् । न अभिनन्दति=नाद्रियते । स दुर्बुद्धिः = स दुर्मतिः । काष्ठाद्भ्रष्टः= काष्ठात्पतितः । कूर्मः = कच्छपः इव । विनश्यति = मृत्युमाप्नोति ॥ ४ ॥

और भी—जो व्यक्ति अपनी भलाई चाहने वाले मित्रों की बात का आदर नहीं करता है वह मूर्ख, कछुवे के समान लकड़ी से नीचे गिर कर नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

[**अन्यच्च**—रक्षितव्यं सदा वाक्यं, वाक्याद्भवति नाशनम् ।
हंसाभ्यां नीयमानस्य कूर्मस्य पतनं यथा'] ॥ ५ ॥

राजाह—'कथमेतत् ?' **मन्त्री कथयति**—

अन्वयः—वाक्यम् सदा रक्षितव्यम् (यतः) वाक्यात् नाशनम् भवति यथा हंसाभ्याम् नीयमानस्य कूर्मस्य (वचनात् एव) पतनम् (अभवत्) ॥ ५ ॥

वाक्यम्=स्ववाणीं । रक्षितव्यम्=संयमनीयम् । वाक्यात् = वृथा प्रलापात् । नाशनम्=विनाशः । भवति=आगच्छति । यथा हंसाभ्याम्=मरालाभ्याम् । नीयमा-नस्य=वाह्यमानस्य । कूर्मस्य=कच्छपस्य । पतनम्=काष्ठाद् भ्रंशः, (अभवत्) ॥५॥

और भी—मनुष्य को सदा अपनी वाणी को संयत रखना चाहिए क्योंकि बोलने से कभी-कभी मृत्यु तक हो जाती है जैसे हंसों द्वारा ले जाए जाते हुए कछुवे का पतन हुआ था।

राजा-राजहंस ने कहा—'यह कैसे ?' मंत्री चकवे ने कहा—

कथा १

अस्ति मगधदेशे फुल्लोत्पलाभिधानं सरः। तत्र चिरं सङ्कट-विकटनामानौ हंसौ निवसतः। तयोर्मित्रं कम्बुग्रीवनामा कूर्मश्च प्रतिवसति।

अथैकदा धीवरैरागत्य तत्रोक्तं, यत्—अत्रास्माभिरद्योषित्वा प्रातर्मत्स्यकूर्मादयो व्यापादयितव्याः'। तदाकर्ण्य कूर्मो हंसावाह—'सुहृदौ! श्रुतोऽयं धीवरालापः। अधुना किं मया कर्तव्यम्?।' हंसावाहतुः—ज्ञायतान्तावत्, पुनस्तावत्प्रातर्यदुचितं तत्कर्त्तव्यम्'। कूर्मो ब्रूते—'मैवम्। यतो दृष्टव्यतिकरोऽहमत्र'। तथा चोक्तम्—

फुल्लोत्पलाभिधानम् = फुल्लोत्पलनामकम्। तत्र=तस्मिन् सरसि। चिरं= बहुकालात्। धीवरैः = मत्स्यवधाजीविभिः। अत्र = अस्मिन् स्थाने। उषित्वा = निवासं कृत्वा। व्यापादयितव्याः=हन्तव्याः। तदाकर्ण्य=धीवरवचं श्रुत्वा। हंसौ= स्वमित्रे हंसौ प्रति। आह=उवाच। श्रुतः = आकर्णितः। धीवरालापः = धीवर-वार्ता। अधुना=इदानीम्। किं कर्तव्यम्=कः प्रतीकारः कार्यः। ज्ञायताम् तावत्= विचार्यताम् तावत्। आहतुः = ऊचतुः। यदुचितम् = यत् योग्यं प्रतिकार्यम्। दृष्टव्यतिकरः=निरीक्षितोपेक्षाक्षतिः, समुत्पन्ने व्यसने उपेक्षया या क्षतिः जायते सा मया दृष्टा एवेत्यर्थः।

मगध देश में फुल्लोत्पल नाम का एक तालाब है उसमें बहुत दिनों से संकट और विकट नाम के दो हंस रहते थे। उन दोनों का मित्र कम्बुग्रीव नामक कछुवा भी वहीं रहता था। एक बार मछुओं ने वहाँ आकर कहा कि—'आज हम लोग यहीं ठहरें और प्रातःकाल मछली तथा कछुवों आदि का शिकार करें।' यह सुन कर कछुवे ने हंसों से कहा—'मित्रों, इन मछुओं की बात सुन ली न। अब मुझे क्या करना चाहिए ?' 'हंसों ने कहा—'अभी विचार किया जाय, फिर प्रातःकाल जैसा उचित होगा, वैसा किया जायगा।' कछुवे ने कहा—नहीं ऐसा नहीं क्योंकि मैंने ऐसा करने से होने वाली हानि देखी है। जैसा कि कहा भी गया है—

'अनागतविधाता च, प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा।
द्वावेतौ सुखमेधेते, यद्भविष्यो विनश्यति' ॥ ६ ॥

तावाहतुः—'कथमेतत् ?'। कूर्मः कथयति—

अन्वयः—अनागतविधाता तथा प्रत्युत्पन्नमतिः च एतौ द्वौ सुखमेधेते (किन्तु) यद्भविष्यः विनश्यति ॥ ६ ॥

अनागतविधाता=तन्नामा मत्स्यः, भाविन्यर्थे विचारकुशलः, इत्यभिधेयार्थः। प्रत्युत्पन्नमतिः=तन्नामा अपरः मत्स्यः, कार्यकाले तीक्ष्णबुद्धिः, इति अभिधेयार्थः। सुखमेधेते=सुखेन वर्द्धेते। यद्भविष्यः=तन्नामा मत्स्यः। भाविन्यर्थे न कोऽपि शक्तः यद्भविष्यति तद्भविष्यत्येवेति विचारकः इति अभिधेयार्थः। विनश्यति=मृत्युं प्राप्नोति ॥ ६ ॥

'जो भविष्य की चिन्ता करने वाला तथा समयानुसार बुद्धि द्वारा कार्य पूरा करने वाला होता है वह दोनों सुख से बढ़ते हैं किन्तु जो होगा सो होगा, ऐसा सोचने वाला नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

दोनों हंसों ने कहा—यह कैसे। कछुवे ने कहा—

कथा २

पुरास्मिन्नेव सरस्येवंविधेष्वेव धीवरेषूपस्थितेषु मत्स्यत्रयेणालोचितम्। तत्रानागतविधाता नामैको मत्स्यः। तेनोक्तम्—'अहं तावज्जलाशयान्तरं गच्छामि'। इत्युक्त्वा स ह्रदान्तरं गतः। अपरेण प्रत्युत्पन्नमतिनाम्ना मत्स्येनाभिहितं—'भविष्यदर्थे प्रमाणाभावात्कुत्र मया गन्तव्यम् ?। तदुत्पन्ने यथाकार्यं तदनुष्ठेयम्'। तथा चोक्तम्—

पुरा=प्राचीनकाले। एवंविधेषु=ईदृशेषु। उपस्थितेषु=मत्स्यव्यापादनायागतेषु। आलोचितम्=निरूपितम्। जलाशयान्तरम्=अन्यसरोवरम्। ह्रदान्तरम्=अन्यतडागम्। अपरेण=द्वितीयेन। अभिहितम्=उक्तम्। भविष्यदर्थे = भाविनि विषये। प्रमाणाभावात्=प्रमाणं विना। तदुत्पन्ने=भये समागते सति। यथाकार्यं=कर्तव्यमनुगम्य। अनुष्ठेयम्=प्रतिविधानं कार्यम्।

आज से बहुत पहिले इसी तालाब पर इसी प्रकार मछुओं के आने पर तीन मछलियों ने विचार किया था। उनमें एक मछली का नाम अनागतविधाता था। उसने कहा कि 'मैं तो दूसरे तालाब में चली जा रही हूँ।' ऐसा कह कर वह

दूसरे तालाब में चली गई। व्युत्पन्नमति नाम की दूसरी मछली ने कहा—'भविष्य में होने वाली बात के प्रमाण के अभाव में भला मैं क्यों कहीं जाऊँ? समयानुसार जो करना होगा, करूँगा।' जैसा कि कहा भी गया है—

'उत्पन्नामापदं यस्तु समाधत्ते स बुद्धिमान्।
वणिजो भार्यया जारः प्रत्यक्षे निहृतो यथा'॥ ७॥

यद्भविष्यः पृच्छति—'कथमेतत्? प्रत्युत्पन्नमतिः कथयति—

अन्वयः—यः उत्पन्नम् आपदम् समाधत्ते स बुद्धिमान् (भवति) यथा वणिजः भार्यया जारः प्रत्यक्षे निह्नुतः॥ ७॥

उत्पन्नाम्=समागताम्। आपदम्=विपदाम्। समाधत्ते = समाधानं करोति, दूरीकरोतीत्यर्थः। स बुद्धिमान्=पंडितः। यथा=येन प्रकारेण। वणिजः भार्यया= वणिक्पत्न्या। प्रत्यक्षे=स्वपत्युः समक्षे अपि। निह्नुतः=अपनीतः॥ ७॥

जो आई हुई विपत्ति का समाधान तत्काल कर लेता है वही बुद्धिमान कहा जाता है जैसे बनिए की स्त्री ने अपने पति के सामने ही अपने जार को छिपा लिया था'॥ ७॥

यद्भविष्य ने पूछा—'यह कैसे'? प्रत्युत्पन्नमति ने कहा—

कथा ३

'पुरा' विक्रमपुरे समुद्रदत्तो नाम वणिगस्ति। तस्य रत्नप्रभा नाम गृहिणी स्वसेवकेन सह सदा रमते। यतः—

विक्रमपुरे=तन्नामनगरे। गृहिणी=पत्नी। स्वसेवकेन = निजभृत्येन। रमते= सहगमनं करोति।

'प्राचीन काल में विक्रमपुर में समुद्रदत्त नाम का एक बनिया था। उसकी स्त्री रत्नप्रभा अपने नौकर के साथ सदा भोग-विलास करती थी। क्योंकि—

'न स्त्रीणामप्रियः कश्चित्, प्रियो वापि न विद्यते।
गावस्तृणमिवारण्ये प्रार्थयन्ते नवं नवम्'॥ ८॥

अन्वयः—स्त्रीणाम् कश्चित् अप्रियः प्रियः वापि न विद्यते। (यथा) अरण्ये गावः नवम् नवम् तृणम् प्रार्थयन्ते (तथैव) स्त्रियः (नवम् नवम् प्रार्थयन्ते)॥ ८॥

स्त्रीणाम्=नारीणाम्। अप्रियः प्रियः वापि=अश्लाघ्यः श्लाघ्यो वापि। न=न भवति। कश्चित्=पुरुषः। यथा=येन प्रकारेण। गावः = सुरभयः। अरण्ये=वने। नवंनवम्=नूतनं नूतनम्। तृणम्=शष्पम्। प्रार्थयन्ते=वाञ्छन्ति। तथैव = स्त्रियः अपि। नवम् नवम्=युवानम् पुरुषम् अभिलषन्ति॥ ८॥

स्त्रियों के लिए न तो कोई अप्रिय होता है और न तो कोई प्रिय ही होता है। बल्कि जैसे जंगल में गायें नित्य नई-नई घास चरना चाहती हैं उसी प्रकार स्त्रियाँ नए-नए नवयुवकों की कामना किया करती हैं ॥ ८ ॥

अथैकदा सा रत्नप्रभा तस्य सेवकस्य मुखे चुम्बनं ददती समुद्रदत्तेनावलोकिता। ततः सा बन्धकी सत्वरं भर्तुः समीपं गत्वाह—'नाथ ! एतस्य सेवकस्य महती निकृतिः। यतोऽयं 'चौरिकां कृत्वा कर्पूरं खादतो'ति मयास्य मुखमाघ्राय ज्ञातम्। तथा चोक्तम्—

सेवकस्य=भृत्यस्य। अवलोकिता=दृष्टा। बन्धकी=कुलटा। सत्वरम्=शीघ्रम्। आह=उक्तवती। निकृतिः=दुष्टप्रवृत्तिः। चौरिकाम् कृत्वा=चोरयित्वा।

एक बार रत्नप्रभा उस सेवक का चुम्बन ले रही थी कि समुद्रदत्त ने देख लिया। तब उस कुलटा ने शीघ्र ही पति के पास जाकर कहा कि 'नाथ, इस नौकर में एक बहुत बड़ी दुष्टता है, यह चोरी करके कपूर खाता है। मैंने इसका मुख सूँघ कर ऐसा जान लिया है। कहा भी गया है—

'आहारो द्विगुणः स्त्रीणां, बुद्धिस्तासां चतुर्गुणा।
षड्गुणो व्यवसायश्च, कामश्चाष्टगुणः स्मृतः' ॥ ९ ॥

अन्वयः—स्त्रीणाम् आहारः द्विगुणः, तासाम् बुद्धिः चतुर्गुणा, व्यवसायः षड्गुणः, कामः च अष्टगुणः स्मृतः ॥ ९ ॥

स्त्रीणाम्=नारीणाम्। आहारः = भोज्यम्। द्विगुणः = पुरुषापेक्षया द्विगुणः। व्यवसायः=उद्यमः। कामः=विषयाभिलाषः ॥ ९ ॥

स्त्री में पुरुष की अपेक्षा भोजन की शक्ति दुगुनी, बुद्धि चौगुनी, परिश्रम करने की शक्ति छगुनी और कामवासना आठगुनी होती है ॥ ९ ॥

तच्छ्रुत्वा सेवकेनापि प्रकुप्योक्तं-'नाथ ! यस्य स्वामिनो गृहे एतादृशी भार्या तत्र सेवकेन कथं स्थातव्यम् ?। यत्र च प्रतिक्षणं गृहिणी सेवकस्य मुखं जिघ्रति।' ततोऽसावुत्थाय चलितः। साधुना च यत्नात्प्रबोध्य धृतः। अतोऽहं ब्रवीमि-'उत्पन्नामापदम्' इत्यादि ॥ ❀ ॥

ततो यद्भविष्येणोक्तम्—

प्रकुप्योक्तम्=क्रोधावेशेन कथितम्। जिघ्रति=गन्धमुपादत्ते। असौ=सेवकः। यत्नात्प्रबोध्य=प्रयत्नेन संतोष्य। धृतः=गमनात् वारितः।

यह सुनकर सेवक ने क्रुद्ध होकर कहा कि—स्वामी, जिस मालिक के घर में ऐसी स्त्री होगी वहाँ भला नौकर कैसे रह सकते हैं ? जहाँ स्त्री हर समय नौकर का मुँह सूंघती हैं । बच्चे ने कहा इसके बाद वह नौकर उठ कर चल पड़ा । तब उस बनिये ने उसे समझा-बुझा कर किसी प्रकार रोका । इसीलिए मैं कह रहा हूँ—'आपत्ति आने पर' इत्यादि । तब यद्भविष्य ने कहा—

'यदभावि न तद्भावि, भावि चेन्न तदन्यथा' ।
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते' ? ॥ १० ॥

अन्वयः—यत् अभावि न तद्भावि भावि चेत् तत् अन्यथा न, इति अयम् चिन्ताविषघ्नः अगदः किं न पीयते ? ॥ १० ॥

यत् अभावि = यत् न भविष्यति । न तद्भावि—तत् न भविष्यत्येव । भावि चेत्—यदि भविष्यति । तत् अन्यथा न=तत् कदापि केनापि दूरीकर्तुं न शक्यः । चिन्ताविषघ्नः=चिन्तागरलापहारकः । अगदः=औषधम् । किं न पीयते—कथं न सेव्यते ॥ १० ॥

'जो नहीं होने वाला है वह नहीं होगा और जो होने वाला है वह अवश्य ही होगा, उसे कोई टाल नहीं सकता । यह चिन्तारूपी विष को दूर करने की सबसे अच्छी दवा है । इसे क्यों नहीं पीते ? ॥ १० ॥

ततः प्रातर्जालेन बद्धः प्रत्युत्पन्नमतिर्मृतवदात्मानं सन्दर्श्य स्थितः । ततो जालादपसारितो यथाशक्त्युत्प्लुत्य गभीरं नीरं प्रविष्टः । यद्भविष्यश्च धीवरैः प्राप्तो, व्यापादितः । अतोऽहं ब्रवीमि—'अनागतविधाता च' इत्यादि ॥

तद्यथाहमन्यं ह्रदं प्राप्नोमि तथा क्रियताम् ।' हंसावाहतुः—'जलाशयान्तरे प्राप्ते तव कुशलम् । स्थले गच्छतस्ते को विधिः ? ।' कूर्म आह-'यथाहं भवद्भ्यां सहाकाशवर्त्मना यामि, तथा विधीयताम् । हंसौ ब्रूतः—'कथमुपायः सम्भवति' ? । कच्छपो वदति—'युवाभ्यां चञ्चुधृतं काष्ठखण्डमेकं मया मुखेनावलम्बितव्यम् । ततश्च युवयोः पक्षबलेन मयापि सुखेन गन्तव्यम् ।' हंसौ ब्रूतः—'सम्भवत्येष उपायः' । किन्तु—

जालेन बद्धः=धीवरजालमागतः । आत्मानम्=स्वम् । मृतवत्=मृत्युं गतः इव । सन्दर्श्य = प्रदर्श्य । अपसारितः = निष्कासितः । उत्प्लुत्य—ऊर्ध्वंप्लवनं कृत्वा (उछलकर) । जलाशयान्तरम्=अन्यह्रदम् । प्राप्ते=लब्धे । तव कुशलम्—भवतः

आकाशवर्त्मना=गगन-
मंगलम् । स्थले = भूमौ । को विधिः = कः रक्षणोपायः ।
मार्गेण । विधीयताम्=उपायः क्रियताम् ।

तब प्रातःकाल जाल में बँधे हुए प्रत्युत्पन्न मति ने अपने आप को मुर्दे के
समान पड़ा हुआ प्रदर्शित किया । जिससे मछुओं ने उसे जाल से बाहर फेंक
दिया । और वह तत्काल अपनी शक्ति के अनुसार शीघ्रता से उछल कर गहरे
पानी में चली गई । यद्भविष्य मछुओं के द्वारा पकड़ कर मार डाली गई ।
इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि 'अनागत विधाता इत्यादि' ।

इसलिए मैं जिस उपाय से दूसरे तालाब में जा सकूँ, वही उपाय कीजिए ।
हंसों ने कहा—'दूसरे तालाब में चले जाने पर तो आपकी रक्षा हो जायगी
किन्तु भूमि पर चलते समय रक्षा का क्या उपाय होगा ?' कछुवे ने कहा मैं आप
दोनों के साथ आकाश मार्ग से जा सकूं, ऐसा उपाय कीजिए । हंसों ने कहा—
'इसके लिए क्या उपाय हो सकता है ?' कछुवे ने कहा—आप दोनों अपनी
चोंच से इधर उधर एक काठ का टुकड़ा पकड़ लीजिएगा और मैं उस लकड़ी के
बीच में अपने मुँह से पकड़ कर लटक जाऊँगा इस प्रकार आप दोनों के पंखों के
बल से मैं भी आसानी से चल चलूँगा ।' हंसों ने कहा—'यह उपाय तो हो
सकता है' किन्तु—

'उपायं चिन्तयन्प्राज्ञो, ह्यपायमपि चिन्तयेत् ।
पश्यतो बकमूर्खस्य नकुलैर्भक्षिताः प्रजाः' ॥ ११ ॥

कूर्मः पृच्छति—'कथमेतत् ? ।' तौ कथयतः—

अन्वयः—उपायम् चिन्तयन् प्राज्ञः अपायमपि चिन्तयेत् बकमूर्खस्य पश्यतः
प्रजाः नकुलैः भक्षिताः ॥ ११ ॥

उपायम्=विधिम् । चिन्तयन्=विचारयन् । प्राज्ञः=बुद्धिमान् । अपायमपि=
हानिमपि । चिन्तयेत्=विचारयेत् । पश्यतः=दृश्यतः । प्रजाः=सन्तानाः,
भक्षिताः=खादिताः ॥ ११ ॥

बुद्धिमान् को उचित है कि वह उपाय का विचार करते समय उससे होने
वाली हानि का भी विचार कर ले । नहीं तो जैसे उस मूर्ख बगुले की सन्तानों
को नेवले ने खा डाला उसी प्रकार हानि का विचार न करने वाला भी नष्ट
हो जाता है ॥ ११ ॥

कछुवे ने पूछा 'यह कैसे हुआ ?' दोनों हंसों ने कहा—

कथा ४

अस्त्युत्तरापथे गृध्रकूटनाम्नि पर्वते महान्पिप्पलवृक्षः । तत्रानेके बका निवसन्ति । तस्य वृक्षस्याधस्ताद्विवरे सर्पस्तिष्ठति । स च

बकानां बालापत्यानि खादति । अथ शोकार्त्तानां विलापं श्रुत्वा, केनचिद् वृद्धबकेनाभिहितम्–'भो एवं कुरुत, यूयं मत्स्यानुपादाय, नकुलविवरादारभ्य सर्पविवरं यावत्पङ्क्तिक्रमेण एकैकशो विकिरत । ततस्तदाहारलुब्धैर्नकुलैरागत्य सर्पो द्रष्टव्यः, स्वभाव-द्वेषाद्व्यापादयितव्यश्च ।' तथानुष्ठिते सति तद् वृत्तम् ।

अथ नकुलैर्वृक्षोपरि बकशावकानां रावः श्रुतः । पश्चात्तद्वृक्ष-मारुह्य, बकशावकाः खादिताः । अत आवां ब्रूवः–'उपायं चिन्तयन्'– इत्यादि ॥

आवाभ्यां नीयमानं त्वामवलोक्य लोकैः किञ्चिद्वक्तव्यमेव । यदि त्वमुत्तरं दास्यसि, तदा त्वन्मरणम् । तत्सर्वथात्रैव स्थीयताम् ।'

कूर्मो वदति–'किमहमप्राज्ञः, नाहमुत्तरं दास्यामि । न किमपि मया वक्तव्यम् ।' तथानुष्ठिते तथाविधं कूर्ममालोक्य, सर्वे गोरक्षकाः पश्चाद्धावन्ति, वदन्ति च । अहो ! महदाश्चर्यं ! पक्षिभ्यां कूर्मो नीयते ।

कश्चिद्वदति–'यद्ययं कूर्मः पतति, तदात्रैव पक्त्वा खादितव्यः' । कश्चिद्वदति–'सरसस्तीरे दग्ध्वा खादितव्योऽयम् ।' कश्चिद्वदति–'गृहं नीत्वा भक्षणीयः' इति । तद्वचनं श्रुत्वा स कूर्मः कोपाविष्टो विस्मृतपूर्वसंस्कारः प्राह–'युष्माभिर्भस्म भक्षितव्यम्'–इति वदन्नेव पतितस्तैर्व्यापादितश्च । अतोऽहं ब्रवीमि–'सुहृदां हित-कामानाम्' इत्यादि ॥ ❀ ॥

अथ प्रणिधिर्बकस्तत्रागत्योवाच–'देव ! प्रागेव मया निगदितं, 'दुर्गशोध हि प्रतिक्षणं कर्त्तव्य'मिति । तच्च युष्माभिर्न कृतं, तदन-वधानस्य फलमिदमनुभूतम् । 'दुर्गदाहो मेघवर्णेन वायसेन गृध्रप्रयुक्तेन कृतः' राजा निःश्वस्याह–

उत्तरापथे=उत्तरस्यां दिशि । वृक्षस्याधस्तात् = तरोः मूले । विवरे=बिले । बालापत्यानि = शिशून् । शोकार्तानाम् = शोकपीडितानाम् । विलापम्=रोदन-ध्वनिम् । अभिहितम्= उक्तम् । उपादाय=गृहीत्वा । विकिरत=विक्षिपत । तदा-हारलुब्धैः=मत्स्यभोजनेच्छुकैः । स्वभावद्वेषात्=प्रकृतवैरात् । व्यापादयितव्यः= हन्तव्यः । बकशावकानां=बकशिशूनाम् । रावः=ध्वनिः । श्रुतः=आकर्णितः । तैः= नकुलैः । आरुह्य=आरोहणम् कृत्वा । नीयमानम्=आकाशपथे उह्यमानम् । लोकैः=

जनै: । किञ्चिद्=उचितमनुचितं वा । तदाकर्ण्य = लोकवचनं श्रुत्वा । सर्वथा= सर्वतोभावेन । अप्राज्ञः=अविवेकी । गोरक्षका:=गोपालका: । कोपाविष्ट:=क्रोधाभिभूत: । विस्मृतपूर्वसंस्कार: = विस्मृतस्वपूर्वप्रतिज्ञः । निगदितम् = कथितम् । दुर्गशोधनम् = दुर्गान्वेषणम् । अनवधानस्य=असावधानताया: । अनुभूतम् = अनुभवविषयीकृतम् । गृध्रप्रयुक्तेन = गृध्रनियुक्तेन । वायसेन=काकेन । नि:श्वस्य= दीर्घश्वासं विसृज्य ।

उत्तरापथ में गृध्रकूट नाम के पहाड़ पर एक बहुत बड़ा पीपल का पेड़ था । उस पर बहुत से बगुले रहते थे । उस वृक्ष के नीचे बिल में एक साँप रहता था । वह बगुलों के बच्चों को खा जाया करता था । किसी दिन शोक से व्याकुल उन बगुलों का रोना सुन कर एक बूढ़े बगुले ने कहा—'तुम लोग ऐसा करो, मछलियाँ लेकर नेवले के बिल से साँप के बिल तक एक कतार बाँध कर फैला दो । तब भोजन के लालच में नेवले साँप की बिल तक पहुँच कर उसे देख लेंगे और स्वाभाविक शत्रुता के कारण उसे मार डालेंगे । बगुलों के ऐसा करने पर वह साँप नेवलों द्वारा मार डाला गया । फिर उन नेवलों ने वृक्ष के ऊपर बगुलों के बच्चों की आवाज सुनी और पेड़ पर चढ़ कर उन बच्चों को भी खा डाला । इसीलिए हम दोनों कह रहे हैं कि 'उपाय सोचते समय' इत्यादि । हम दोनों के द्वारा ले जाते हुए तुम्हें देख कर लोग अवश्य ही कुछ कहेंगे । उसे सुनकर यदि तुम उत्तर दोगे तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है । इसलिए तुम्हें यहीं रहना उचित है । कछुवे ने कहा कि क्या मैं मूर्ख हूँ । मैं उत्तर नहीं दूँगा । मैं कुछ भी नहीं कहूँगा । ऐसा करने पर कछुए को उस प्रकार हंसों द्वारा ले जाते हुए देख कर गाँव के सभी रखवाले पीछे-पीछे दौड़ते हुए कुछ न कुछ कहने लगे । कितना आश्चर्य है कि दो पक्षी कछुवा लिए जा रहे हैं । किसी ने कहा—'यदि यह कछुवा गिर पड़े तो यहीं पका कर खाया जाय ।' किसी ने कहा—'तालाब के किनारे भूनकर खाया जायगा ।' किसी ने कहा—'घर ले जाकर खाना ठीक होगा ।' इस प्रकार की बातें सुन कर कछुवा क्रोध में आकर अपनी पहली प्रतिज्ञा भूल गया और उसने कहा कि 'तुम लोग राख खाना ।' यह कहते ही वह गिर पड़ा और मारा गया । इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि—'हित चाहने वाले मित्रों का' इत्यादि । इसके बाद प्रधान गुप्तचर बगुले ने आकर कहा कि राजन्, मैंने पहले ही कहा था कि किले की टोह हर समय की जानी चाहिए । आप लोगों ने वैसा नहीं किया । उसी असावधानी का यह फल भोगना पड़ा है । किले के जलाने का काम गृद्ध द्वारा भेजे गए मेघवर्ण कौवे ने किया है । राजा ने साँस खींचते हुए कहा—

'प्रणयादुपकाराद्वा यो विश्वसिति शत्रुषु ।
स सुप्त इव वृक्षाग्रात्पतितः प्रतिबुध्यते' ॥ १२ ॥

अन्वयः—प्रणयात् उपकाराद्वा यः शत्रुषु विश्वसिति सः सुप्तः इव वृक्षाग्रात्पतितः प्रतिबुध्यते ॥ १२ ॥

प्रणयात्=प्रेम्णः । उपकाराद्वा=हितकामाद्वा । सः सुप्तः इव=वृक्षाग्रे निद्रितः इव । वृक्षाग्रात्=तरुशिखरात् । पतितः=भ्रष्टः । प्रतिबुध्यते=जागर्ति ॥

जो व्यक्ति प्रेम अथवा उपकार की भावना से शत्रु पर विश्वास करता है वह कुछ खोने के बाद ही सावधान होता है जैसे पेड़ की चोटी पर सोने वाला वहाँ से गिरने पर जाग जाता है ॥ १२ ॥

अथ प्रणिधिरुवाच—इतो दुर्गदाहं विधाय, यदा गतो मेघवर्णस्तदा चित्रवर्णेन प्रसादितेनोक्तम्—'अयं मेघवर्णोऽत्र कर्पूरद्वीपराज्येऽभिषिच्यताम्' । तथा चोक्तम्—

प्रणिधिः=गुप्तचरः । विधाय=कृत्वा । प्रसादितेन=प्रसन्नेन । अभिषिच्यताम्=अभिषेकः क्रियताम् ।

तब प्रधान गुप्तचर ने कहा—जब किले को जलाकर मेघवर्ण यहाँ से गया तो उसके ऊपर प्रसन्न होकर चित्रवर्ण ने कहा—इस मेघवर्ण को इस कर्पूरद्वीप का राजा बना दिया जाय । क्योंकि कहा भी गया है—

'कृतकृत्यस्य भृत्यस्य कृतं नैव प्रणाशयेत् ।
फलेन मनसा, वाचा, दृष्ट्या चैनं प्रहर्षयेत्' ॥ १३ ॥

अन्वयः—कृतकृत्यस्य भृत्यस्य कृतम् न प्रणाशयेत् फलेन मनसा वाचा दृष्ट्या च एनम् प्रहर्षयेत् ॥ १३ ॥

कृतकृत्यस्य=कृतस्वामिकार्यस्य । भृत्यस्य=सेवकस्य । कृतम्=उपकारम् । न प्रणाशयेत्=न विस्मरेत् । फलेन=उपहारादिना । मनसा=सौम्यभावेन । वाचा=प्रशंसावचनैश्च । दृष्ट्या = प्रसन्नेक्षणेन । एनम् = भृत्यम् । प्रहर्षयेत्=संतोषयेत् ॥ १३ ॥

क्योंकि अच्छी तरह से अपने काम को पूरा करने वाले नौकर के कार्य की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । बल्कि धन, मन, वाणी और कृपा दृष्टि से उसे प्रसन्न करना चाहिए ॥ १३ ॥

चक्रवाको ब्रूते—'देव ! श्रुतं यत्प्रणिधिः कथयति' ? । राजा प्राह—ततस्ततः ? ।' प्रणिधिरुवाच—'ततः प्रधानमन्त्रिणा गृध्रेणाभिहितम्—'देव ! नेदमुचितं, प्रसादान्तरं किमपि क्रियताम्' । यतः—

देव=राजन् । श्रुतम्=आकर्णितम् । यत्=दुर्गदाहविषयकतथ्यम् । प्रणिधिः=चरनायकः । ततस्ततः=अग्रे किं वृत्तम् । नेदमुचितम्=वायसस्य कर्पूरद्वीपराज्याभिषेचनं नोपयुक्तम् । प्रसादान्तरम्=अभिषेकं विहाय अन्यमनुग्रहम् ।

चकवे ने कहा—'राजन्, गुप्तचर ने जो कुछ कहा है उसे आपने सुन लिया न ! राजा राजहंस ने कहा—'तो फिर आगे क्या हुआ !' गुप्तचर ने कहा—'तब प्रधान मंत्री गृद्ध ने कहा—'राजन्, यह ठीक नहीं है । इसके ऊपर (राज्याभिषेक के अतिरिक्त) कोई दूसरी कृपा होनी चाहिए । क्योंकि—

अविचारयतो युक्तिकथनं तुषखण्डनम् ।
नीचेषूपकृतं राजन्वालुकास्विव मूत्रितम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—अविचारयतः युक्तिकथनम् तुषखण्डनम् (एष) हे राजन्, नीचेषु उपकृतम् बालुकासु मूत्रितम् इव ॥ १४ ॥

अविचारयतः=विचाररहितस्य । युक्तिकथनम्=उपायोपदेशः । तुषखण्डनम्=तुषावघातः, व्यर्थप्रयासः (भूसी कूटना अर्थात् व्यर्थ परिश्रम करना) । नीचेषु=निम्नाचारेषु । उपकृतम्=उपहारादिदानम् । बालुकासु = सिकतासु । मूत्रितम् इव=मूत्रोत्सर्गं इव ॥ १४ ॥

जैसे विचाररहित पुरुष से कोई युक्तिसंगत बात कहना भूसी कूटने के समान (व्यर्थ) होता है वैसे ही नीच पुरुष का उपकार करना भी बालू पर किए गए मूत्र के समान होता है ॥ १४ ॥

महतामास्पदे नीचः कदापि न कर्त्तव्यः । तथा चोक्तम्—

महतामास्पदे=महापुरुषाणां योग्यस्थाने । न कर्तव्यः=न प्रतिष्ठेयः ।

महान् लोगों के योग्य स्थान पर नीच को कभी नहीं नियुक्त करना चाहिए । जैसा कि कहा भी गया है—

'नीचः श्लाघ्यपदं प्राप्य स्वामिनं हन्तुमिच्छति ।
मूषिको व्याघ्रतां प्राप्य मुनिं हन्तुं गतो यथा' ॥ १५ ॥

चित्रवर्णः पृच्छति—'कथमेतत् ?' । मन्त्री कथयति—

अन्वयः—नीचः श्लाघ्यपदं प्राप्य स्वामिनम् हन्तुम् इच्छति । यथा मूषिकः व्याघ्रताम् प्राप्य मुनिम् हन्तुं गतः ॥ १५ ॥

नीचः=निम्नपुरुषः । श्लाघ्यपदम्=उन्नतस्थानम् । प्राप्य = लब्ध्वा । स्वामिनम्=उपकारकारकं नृपमपि । हन्तुम् = व्यापादयितुम् । इच्छति = अभिलषति । मुनिम्=येन सः मूषिकः व्याघ्रः कृतः तमपि ॥ १५ ॥

नीच स्वामी की कृपा से उच्च पद पाकर स्वामी को ही मारना चाहता है। चूहा मुनि द्वारा बाघ बन जाने पर मुनि को ही मारने के लिए तैयार हो गया॥

कथा ९

अस्ति गौतमस्य महर्षेस्तपोवने महातपा नाम मुनिः। तत्र तेन आश्रमसंनिधाने मूषिकशावकः काकमुखाद् भ्रष्टो दृष्टः। ततो दयायुक्तेन तेन मुनिना नीवारकणैः संवर्द्धितः। ततो बिडालस्तं मूषिकं खादितुमुपधावति। तमवलोक्य मूषिकस्तस्य मुनेः क्रोडे प्रविवेश। ततो मुनिनोक्तम्-'मूषिक! त्वं मार्जारो भव।' ततः स बिडालः कुक्कुरं दृष्ट्वा पलायते। ततो मुनिनोक्तम्-'कुक्कुराद्बिभेषि, त्वमेव कुक्कुरो भव'। स च कुक्कुरो व्याघ्राद् बिभेति। ततस्तेन मुनिना कुक्कुरो व्याघ्रः कृतः।

अथ तं व्याघ्रं मुनिर्मूषिकोऽयमिति पश्यति। अथ तं मुनिं, व्याघ्रञ्च दृष्ट्वा सर्वे वदन्ति—'अनेन मुनिना मूषिको व्याघ्रतां नीतः'।

एतच्छ्रुत्वा सव्यथो व्याघ्रोऽचिन्तयत्-'यावदनेन मुनिना स्थीयते, तावदिदं मे स्वरूपाख्यानमकीर्तिकरं न पलायिष्यते'!—इत्यालोच्य मूषिकस्तं मुनिं हन्तुं गतः। ततो मुनिना तज्ज्ञात्वा 'पुनर्मूषिको भव'—त्युक्त्वा मूषिक एव कृतः। अतोऽहं ब्रवीमि-'नीचः श्लाघ्यपदं प्राप्य' इत्यादि॥ ❀॥

अपरञ्च देव—'सुकरमिद'मिति न मन्तव्यम्, शृणु—

काकमुखात्=वायसवदनात्। शावकः=शिशुः। दयायुक्तेन = कृपासहितेन। नीवारकणैः=श्यामाकधान्यकणैः। संवर्धितः=वृद्धिं प्रापितः पोषितश्च। खादितुम्=भक्षयितुम्। तमवलोक्य=बिडालं दृष्ट्वा। क्रोडे=अङ्के। प्रविवेश = प्रविष्टोऽभवत्। मार्जारः=बिडालः। पलायते=भयात् पलायनं करोति। बिभेषि = भयमाप्नोषि। सर्वे वदन्ति=सर्वे जनाः कथयन्ति।

स्वरूपाख्यानम्=मद्रूपपरिवर्तनसम्बन्धिनी कथा। अकीर्तिकरम्=वचनीयम्। न पलायिष्यते=न गमिष्यति। इत्यालोच्य=एवं विचार्य। तज्ज्ञात्वा = तद्भावमवगम्य।

सुकरम्=अनायाससिद्धम्। इदम्=वायसस्य राज्याभिषेचनम्। न मन्तव्यम्=न ज्ञातव्यम्।

चित्रवर्ण ने पूछा—यह कैसे हुआ ? मंत्री ने कहा—'गौतम ऋषि के तपोवन में महातपा नाम के एक मुनि रहते थे। उन्होंने अपने आश्रम के पास कौवे के मुँह से गिरा हुआ एक चूहा देखा। उस दयालु मुनि ने उसे नीवारकण खिलाकर पाला पोसा। एक बार एक वनबिलाव ने उस चूहे को खाने के लिए उसे दौड़ाया। चूहा उस बिलाव को देखकर मुनि की गोद में चला गया। तब मुनि ने कहा—'चूहे तुम भी बिलाव बन जाओ।' इसके बाद वह बिलाव कुत्ते को देख कर भागा तो मुनि ने कहा 'कुत्ते से डरते हो तो तुम भी कुत्ते हो जाओ।' वह कुत्ता व्याघ्र से डरने लगा तो मुनि ने उसे बाघ बना दिया। उस बाघ को मुनि चूहा ही समझते थे। और उस मुनि तथा बाघ को देखकर सभी लोग कहा करते थे कि इस मुनि ने चूहे को बाघ बना दिया है। यह सुनकर उस बाघ ने सोचा कि जब तक यह मुनि रहेंगे तब तक हमारे रूप बदलने की यह बदनामी से भरी हुई कहानी समाप्त नहीं होगी। यह सोचकर वह मुनि को मारने के लिए गया। मुनि ने यह जानकर 'फिर चूहे बन जाओ' ऐसा कह कर उसे चूहा बना दिया। इसीलिए मैं कह रहा हूँ 'नीच उत्तम पद पाकर' इत्यादि और भी इसे राजा बनाना आप सरल न समझिए। सुनिए—

'भक्षयित्वा बहून्मत्स्यानुत्तमाधममध्यमान्।
अतिलोभाद्बकः पश्चान्मृतः कर्कटकग्रहात्' ॥ १६ ॥

अन्वयः—उत्तमाधममध्यमान् बहून् मत्स्यान् भक्षयित्वा बकः अतिलोभात् कर्कटकग्रहात् पश्चात् मृतः ॥ १६ ॥

उत्तमाः=महान्तः। अधमाः=अत्यल्पाः। बहून्=बहुसंख्यकान्। मत्स्यान्=मीनान्। अतिलोभात्=अतिलौल्यात्। कर्कटकग्रहात्=कर्कटकर्तृकादानात् (पकड़ने से)। मृतः=मृत्युम् प्राप्तः ॥ १६ ॥

उत्तम, मध्यम और अधम कोटि की बहुत सी मछलियों को खाने के बाद लोभ में बगुले ने केकड़े को खाना चाहा जिससे वह केकड़े द्वारा पकड़े जाने से मर गया ॥ १६ ॥

कथा ६

चित्रवर्णः पृच्छति—'कथमेतत्?'। मन्त्री कथयति—

अस्ति मालवविषये पद्मगर्भाभिधानं सरः। तत्रैको वृद्धो बकः सामर्थ्यहीन उद्विग्नमिवात्मानं दर्शयित्वा स्थितः। स च केनचित्कुलीरेण दूरादेव दृष्टः, पृष्टश्च—'किमिति भवानत्राहारत्यागेन तिष्ठति'?। बकेनोक्तम्—''मत्स्या मम जीवनहेतवः। ते 'कैवर्तै-

रागत्य व्यापादयितव्या'—इति वार्त्ता नगरोपान्ते मया श्रुता। अतो 'वर्त्तनाभावादेवास्मन्मरणमुपस्थितमिति ज्ञात्वाहारेऽप्यनादरः कृतः। ततो मत्स्यैरालोचितम्—इह समये तावदुपकारक एवायं लक्ष्यते, तदयमेव यथाकर्त्तव्यं पृच्छ्यताम्। तथा चोक्तम्—

मालवविषये=मालवदेशे। पद्मगर्भाभिधानम्=पद्मगर्भनामधेयम्। सरः=तटाकः। सामर्थ्यहीनः=वृद्धत्वादतिशक्तिरहितः। तद्विग्नमिव = व्याकुलम् इव। कुलीरेण=कर्कटकेन। आहारत्यागेन=भोजनवर्जनेन। मत्स्याः=मीनाः। जीवनहेतवः=प्राणावलम्बनाः। भोज्याश्च। कैवर्तैः=धीवरैः। व्यापादयितव्याः=हन्तव्याः। नगरोपान्ते=नगरनिकटे। वर्तनाभावात्=जीविकाविरहात्। उपस्थितम्=आगतम्। आहारेऽपि=भोजनेऽपि। अनादरः कृतः=तिरस्कृतः=परित्यक्त इत्यर्थः। मत्स्यैरालोचितम्=मीनैः चिन्तितम्। इह समये=इदानीम्। उपकारकः=शुभेच्छु। लक्ष्यते=दृश्यते। यथाकर्तव्यम्=समयोचितम् कार्यम्।

चित्रवर्ण ने पूछा—'यह कैसे हुआ, मंत्री ने कहा—मालवा देश में पद्मगर्भ नाम का एक तालाब था वहाँ एक शक्तिहीन और अत्यन्त व्याकुल सा बूढ़ा बगुला पड़ा हुआ था। उसे किसी केकड़े ने दूर से ही देखा और पूछा—'आप यहाँ भोजन छोड़कर क्यों पड़े हैं? बगुले ने कहा—'मछली ही मेरे जीवन का सहारा है, और उसे मछुवे कल आकर मारेंगे ऐसी बात मैंने नगर के पास सुनी है। इसलिए भोजन के विना अब मेरी मौत आ गई है ऐसा सोचकर अभी भोजन करना छोड़ दिया है। तब मछलियों ने विचार किया कि इस समय तो यह हम लोगों की भलाई करने वाला मालूम पड़ रहा है, इसलिए इसी से पूछना चाहिए कि अब हम लोगों को क्या करना चाहिए। जैसा कि कहा भी गया है—

'उपकर्त्राऽरिणा सन्धिर्न मित्रेणापकारिणा।
उपकारापकारो हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः'॥ १७॥

अन्वयः—उपकर्त्रा अरिणा संधिः (कार्यः किन्तु) अपकारिणा मित्रेण न (कार्यः) एतयोः उपकारापकारौ, लक्षणम् हि॥ १७॥

उपकर्त्रा=उपकारकारिणा। अरिणा=शत्रुणा। सन्धिः=मेलनम्। अपकारिणा=अपकारकारकेण। मित्रेण=सुहृदा। एतयोः=शत्रुमित्रयोः। लक्षणम्=चिह्नम्। लक्ष्यम्=ज्ञेयम्॥ १७॥

उपकार करने वाले शत्रु से सन्धि करना अच्छा है लेकिन बुराई चाहने वाले मित्र से सन्धि करना ठीक नहीं है। क्योंकि शत्रु और मित्र का लक्षण ही अपकार और उपकार करना होता है॥ १७॥

मत्स्या ऊचुः—'भो बक! कोऽत्र अस्माकं रक्षणोपायः?'। बको ब्रूते– 'अस्ति रक्षणोपायो जलाशयान्तराश्रयणम्। तत्राहमेकैकशो युष्मान्नयामि'। मत्स्या आहुः—'एवमस्तु।' ततोऽसौ दुष्टबकस्तान्मत्स्यानेकैकशो नीत्वा खादति। अनन्तरं कुलीरस्तमुवाच 'भो बक, मामपि तत्र नय।' ततो बकोऽप्यपूर्वकुलीरमांसार्थी सादरं तं नीत्वा स्थले धृतवान्। कुलीरोऽपि मत्स्यकण्टकाकीर्णम् स्थलमालोक्याचिन्तयत्—'हा हतोऽस्मि मन्दभाग्यः। भवतु। इदानीं समयोचितं व्यवहरिष्यामि।' यतः—

अत्र = इदानीम्। जलाशयान्तराश्रयणम् = अन्यस्य सरोवरस्यालम्बनम्। आहुः=उक्तवन्तः। स्थले=भूमौ। मत्स्यकण्टकाकीर्णम्=मीनास्थिसंकुलम्। अचिन्तयत्=व्यचारयत्। हतोऽस्मि=मृतोऽस्मि। मन्दभाग्यः = हतभाग्यः। समयोचितम्=यथावसरम्। व्यवहरिष्यामि=आचरिष्यामि।

मछलियों ने कहा—'हे बगुले अब हम लोगों की रक्षा का क्या उपाय है?' बगुले ने कहा—'दूसरे तालाब में चला जाना ही रक्षा का उपाय है। इससे तुम लोगों में से एक-एक को वहाँ पहुँचा भी दूँगा।' मछलियों ने कहा—ठीक है, ऐसा ही करो।' तब वह दुष्ट बगुला एक-एक को ले जाकर खाने लगा। इसके बाद केकड़े ने कहा—'हे बगुले मुझे भी वहाँ ले चलो। बगुला भी केकड़े को पहले कभी नहीं खाया था इसलिए उसके मांस खाने की लालच से बड़े आदर के साथ उसे पानी से बाहर निकाल कर रखा। केकड़े ने मछलियों की हड्डियों से भरी हुई उस जगह को देखकर विचार किया कि अब तो मुझ अभागे को मरना पड़ा। अच्छा, समयानुसार उपाय करना चाहिए। क्योंकि—

'तावद्भयेन भेतव्यं यावद्भयमनागतम्।
आगतन्तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्त्तव्यमभीतवत्' ॥ १८ ॥

अन्वयः—यावत् भयम् अनागतम् तावत् भयेन भेतव्यम्। तु भयम् आगतं दृष्ट्वा अभीतवत् प्रहर्त्तव्यम् ॥ १८ ॥

भयम् = भयहेतुः। अनागतम् = अनुपस्थितम्। अभीतवत् = निर्भयसदृशः। प्रहर्त्तव्यम्=तस्योपरि प्रहारः करणीयः, प्रतीकारः कार्यं इत्यर्थः ॥ १८ ॥

'भय से तभी तक डरना चाहिए जब तक वह सामने न हो किन्तु भय को सामने उपस्थित देखकर निडर होकर उस पर प्रहार करना चाहिए' ॥ १८ ॥

किञ्च—'अभियुक्तो यदा पश्येन्न किञ्चिद् गतिमात्मनः।
युध्यमानस्तदा प्राज्ञो म्रियेत रिपुणा सह' ॥ १९ ॥

अन्वयः—अभियुक्तः यदा आत्मनः किञ्चित् गतिम् न पश्येत् तदा प्राज्ञः रिपुणा सह युध्यमानः म्रियेत ॥ १९ ॥

अभियुक्तः=शत्रुणा, भयकारणेन वा आक्रान्तः पुरुषः । आत्मानः = स्वस्य । किञ्चिद्गतिम्=किञ्चिदन्यम् प्रतीकारोपायम् । न पश्येत्=न विलोकयेत् । प्राज्ञः= बुद्धिमान् । रिपुणा सह=शत्रुणा सह । युध्यमानः=युद्धं कुर्वाणः । म्रियेत = प्राण-मुत्सृजेत् ॥ १९ ॥

शत्रु द्वारा आक्रान्त व्यक्ति जब अपने बचने का दूसरा कोई भी उपाय न देखे तो शत्रु के साथ युद्ध करते हुए मरना ही उसकी बुद्धिमानी है ॥ १९ ॥

—इत्यालोच्य स कुलीरकस्तस्य बकस्य ग्रीवां चिच्छेद । अथ स बकः पञ्चत्वं गतः । अतोऽहं ब्रवीमि—'भक्षयित्वा बहून्मत्स्यान्' इत्यादि ॥

इत्यालोच्य=एवं विचार्य । कुलीरकः = कर्कटकः । ग्रीवाम् = गलप्रदेशम् । चिच्छेद=कर्तितवान् । पञ्चत्वं गतः=मृत्युं प्राप्तः ।

ऐसा विचार कर केकड़े ने उस बगुले के गले को काट दिया जिससे वह बगुला मर गया । इसीलिए मैं कह रहा हूँ बहुत सी मछलियों को खाकर इत्यादि ।'

ततश्चित्रवर्णोऽवदत्—'शृणु तावन्मन्त्रिन् ! मयैतदालोचितम्—(-अस्ति-) यद्—अत्रावस्थितेनानेन मेघवर्णेन राज्ञा यावन्ति वस्तूनि कर्पूरद्वीपस्योत्तमानि तावन्त्यस्माकमुपनेतव्यानि । तेनास्माभिर्महा-सुखेन विन्ध्याचले स्थातव्यम्' । दूरदर्शी विहस्याह—'देव !

आलोचितम्=विचारितम् । अत्रावस्थितेन = अत्राभिषिक्तेन । उपनेतव्यानि= उपढौकितव्यानि । दूरदर्शी=राज्ञः चित्रवर्णस्य मंत्री गृध्रः ।

तब चित्रवर्ण ने कहा—हे मंत्री सुनो, मैंने यह सोचा है कि यहाँ राज्यपद पर नियुक्त मेघ वर्ण कर्पूर द्वीप की सभी अच्छी-अच्छी वस्तुओं को हमारे पास भेजा करेगा, जिससे हम लोग विन्ध्याचल पर बड़े सुख से रहेंगे । दूरदर्शी ने हँस कर कहा—राजन्,

'अनागतवतीं चिन्तां कृत्वा यस्तु प्रहृष्यति ।
स तिरस्कारमाप्नोति भग्नभाण्डो द्विजो यथा' ॥ २० ॥

राजाह--'कथमेतत् ?' । मन्त्री कथयति--

अन्वयः—यः अनागतवतीं चिन्तां कृत्वा प्रहृष्यति स भग्नभाण्डः द्विजः यथा तिरस्कारमाप्नोति ॥ २० ॥

यः=पुरुषः । अनागतवतीं=भविष्यानुवर्तिनीम् । प्रहृष्यति = मोदते । भग्न-भाण्डः = भग्नसक्तुपूर्णपात्रः । द्विजः=ब्राह्मणः । यथा=इव । तिरस्कारमाप्नोति= अनादृतो भवति ॥ २० ॥

जो मनुष्य भविष्य की कल्पना करके झूठे सुख की आशा से प्रसन्न होता है वह कुम्हार का बर्तन फोड़ डालने वाले ब्राह्मण के समान अपमानित होता है ॥

राजा ने कहा—यह कैसे ? मन्त्री ने कहा—

कथा ७

अस्ति देवीकोट्टनाम्नि नगरे देवशर्मा नाम ब्राह्मणः । तेन महा-विषुवत्सङ्क्रान्त्यां सक्तुपूर्णशराव एकः प्राप्तः । ततस्तमादायासौ कुम्भकारस्य भाण्डपूर्णमण्डपैकदेशे रौद्रेणाकुलितः सुप्तः । ततः सक्तुरक्षार्थं हस्ते दण्डमेकमादायाचिन्तयत्—'अद्याहं सक्तुशरावं विक्रीय दश कपर्दकान्प्राप्स्यामि, तदात्रैव तैः कपर्दकैर्घटशरावादिक-मुपक्रीयानेकधा वृद्धैस्तद्धनैः पुनः पुनः पूगवस्त्रादिमुपक्रीय, विक्रीय, लक्षसङ्ख्यानि धनानि कृत्वा, विवाहचतुष्टयं करिष्यामि । अनन्तरं तासु स्वपत्नीषु या रूपयौवनवती तस्यामधिकानुरागं करिष्यामि । सपत्न्यो यदा द्वन्द्वं करिष्यन्ति, तदा कोपाकुलोऽहं ताः सर्वा लगुडेन ताडयिष्यामीत्यभिधाय तेन लगुडः प्रक्षिप्तः । तेन सक्तु-शरावश्चूर्णितो, भाण्डानि च बहूनि भग्नानि । ततस्तेन शब्देना-गतेन कुम्भकारेण तथाविधानि भाण्डान्यवलोक्य, ब्राह्मणस्तिर-स्कृतो, मण्डपाद्बहिष्कृतश्च । अतोऽहं ब्रवीमि—'अनागतवतीं चिन्ताम्' इत्यादि ॥

ततो राजा रहसि गृध्रमुवाच—'तात ! यथा कर्त्तव्यं तथो-पदिश ।' गृध्रो ब्रूते—

विषुवत्सङ्क्रान्त्याम् = वैशाखमासस्य मेषसङ्क्रान्तिवासरे । सक्तुपूर्ण-शरावः=सक्तुपूरितवर्द्धमानकः (सतुवे से भरा कसोरा)। भाण्डपूर्णमण्डपैक-देशे = मृत्पात्रपूर्णगृहस्यैकभागे । रौद्रेण=घर्मेण । आकुलितः = व्यग्रः । सुप्तः = सुप्तवान् । दण्डमेकम्=एकां यष्टिकाम् । आदाय=गृहीत्वा । कपर्दकान्=काकिणीः । अनेकधावृद्धैः = वारं वारं क्रयविक्रयकरणेन वर्द्धितैः । तद्धनैः = तन्मूल्यत्वेन प्राप्तधनैः । पुनः पुनः = वारं वारम् । पूगवस्त्रादिकम् = पूगीफलवस्त्रादिकम्

(सुपाड़ी तथा कपड़े आदि) । द्वन्द्वम् = कलहम् । कोपाकुलः = क्रोधोन्मत्तः । लगुडेन=दंडेन । ताडयिष्यामि=प्रहरिष्यामि । चूर्णितः=भग्नः । भांडानि=कुम्भकारस्य पात्राणि । तेन शब्देन = चूर्णितस्य भाण्डस्य शब्देन । तथाविधानि=भग्नानि । अवलोक्य=दृष्ट्वा । तिरस्कृतः=अपमानितः । बहिष्कृतः=निष्कासितः । रहसि=एकान्ते ।

देवीकोट्ट नाम के नगर में देवशर्मा नाम का एक ब्राह्मण रहता था एक बार सतुवा संक्रान्ति के दिन उसने सतुवे से भरा हुआ एक मिट्टी का कसोरा पाया । वह उसे लेकर बर्तनों से भरे हुए कुम्हार के मंडप के एक किनारे गया और धूप से व्याकुल होकर वहीं सो गया । तब सतुवे की रक्षा के लिए हाथ में एक डंडा लेकर वह मन ही मन सोचने लगा । यदि मैं इस सतुवे के कसोरे को बेंच कर दस कौड़ी पा जाऊँ तो उसी से घड़े कसोरे आदि खरीद कर बेंच कर लाखों का धन प्राप्त करके चार विवाह करूँगा इसके पश्चात् उन चारों स्त्रियों में जो सबसे सुन्दरी तथा युवती होगी, मैं उससे अधिक प्रेम करूँगा । जब वह चारों आपस में झगड़ा करेंगी तो मैं क्रुद्ध होकर उन सभी को डंडे से पीटूंगा । ऐसा कहकर उसने डंडा चला दिया जिससे सतुवे का कसोरा तो टूट ही गया साथ ही कुम्हार के बहुत से बर्तन भी टूट गए । बर्तन के टूटने का शब्द सुनकर कुम्हार वहाँ आया और उन टूटे फूटे बर्तनों को देख कर उसने ब्राह्मण को डाँटा । इसी से मैं कह रहा हूँ--'भविष्य की कल्पना करने वाले' आदि ।

तब राजा ने एकान्त में गृद्ध से कहा--तात,

अब मुझे बताइए कि क्या करना चाहिए । गृद्ध ने कहा--

मदोद्धतस्य नृपतेः प्रकीर्णस्येव दन्तिनः ।
गच्छन्त्युन्मार्गयातस्य नेतारः खलु वाच्यताम् ॥ २१ ॥

अन्वयः—मदोद्धतस्य प्रकीर्णस्य उन्मार्गयातस्य दन्तिनः नेतारः इव (मदोन्मत्तस्य प्रकीर्णस्य उन्मार्गयातस्य) नृपतेः नेतारः वाच्यताम् गच्छन्ति ॥

मदोद्धतस्य=उन्मत्तस्य, नृपतिपक्षे, गर्वोन्मत्तस्य । प्रकीर्णस्य=मदाकुलस्य, नृपतिपक्षे विवेकरहितस्य उन्मार्गयातस्य = कुपथप्रवृत्तस्य । दन्तिनः = हस्तिनः । नेतारः=हस्तिपकाः, उपदेष्टारः=मन्त्रिणः । इव=यथा । वाच्यम् = लोकनिन्दनीयताम् । गच्छन्ति = प्राप्नुवन्ति ॥ २१ ॥

जैसे मद से पागल हाथी के बुरे मार्ग में चले जाने का सारा दोष महावत के ऊपर होता है उसी प्रकार अभिमानी मतवाले राजा के बुरे मार्ग में जाने का सारा दोष मंत्री पर होता है और वह निन्दा का पात्र बनता है ॥ २१ ॥

'शृणु देव ! किमस्माभिर्बलदर्पाद् दुर्गं भग्नम् ?, उत तव प्रतापाधिष्ठितेनोपायेन ? ।' राजाह—'भवतामुपायेन ।' गृध्रो ब्रूते—'यद्यस्मद्वचनं क्रियते, तदा स्वदेशे गम्यताम् । अन्यथा वर्षाकाले प्राप्ते पुनस्तुल्यबलेन विग्रहे सत्यस्माकं परभूमिष्ठानां स्वदेशगमनमपि दुर्लभं भविष्यति । तत्सुखशोभार्थं सन्धाय गम्यताम् । दुर्गं भग्नं, कीर्त्तिश्च लब्धेव' । मम संमतं तावदेतत्' । यतः—

बलदर्पात्=पराक्रमाभिमानात् । उत=अथवा । प्रतापाधिष्ठितेन=प्रतापाश्रयेण । अस्मद्वचनम्=अस्मन्मंत्रणाम् । पुनर्विग्रहे=पुनः युद्धे सति । परभूमिष्ठानाम्=शत्रुदेशस्थितानाम् । सुखशोभार्थम्=स्वस्य सुखाय यशसे वा । सन्धाय=सन्धि विधाय ।

'यो हि धर्मं पुरस्कृत्य हित्वा भर्त्तुः प्रियाप्रिये ।
अप्रियाण्याह पथ्यानि, तेन राजा सहायवान्' ॥ २२ ॥

अन्वयः—यः भर्तुः प्रियाप्रिये हित्वा धर्मं पुरस्कृत्य अप्रियाणि तथ्यानि आह, तेन राजा सहायवान् (भवति) ॥ २२ ॥

यः=राजमंत्री । भर्तुः=नृपस्य । प्रियाप्रिये=इदम् स्वामिनः प्रियम्, इदम् अप्रियम् इति च । हित्वा=विहाय । धर्मम्=न्यायम् । पुरस्कृत्य=अग्रेकृत्वा । तथ्यानि=तथ्यवचनानि । तेन=मंत्रिणा । राजा=नृपः । सहायवान्=सहायकान्वितः भवति ॥ २२ ॥

राजन्, सुनिए—'क्या हम लोगों ने अपनी सेना के अभिमान से किला तोड़ा है अथवा आपके प्रताप या उपाय से !' राजा ने कहा—'आपके उपाय से ।' गृध्र ने कहा—यदि हमारी बात मानते हैं तो अपने देश चलिए । नहीं तो वर्षा आ जाने पर और फिर समान बल वाले शत्रु से युद्ध होने पर दूसरे देश में रहने वाले हम लोगों को अपने देश में जाना भी कठिन हो जायगा । इसलिए सुख और यश दोनों के लिए सन्धि करके चले चलिए । किला टूट ही गया और यश मिल ही गया । मेरा तो अब यही विचार है । क्योंकि—जो धर्म को आगे करके राजा के प्रिय और अप्रिय का ध्यान छोड़ कर केवल राजा के हित की बात को ही कहता है, भले ही वह राजा को बुरा लगे, वही राजा का सच्चा सहायक होता है ॥ २२ ॥

अन्यच्च—'सुहृद्बलं, तथा राज्यमात्मानं, कीर्त्तिमेव च ।
युधि सन्देहदोलास्थं को हि कुर्यादबालिशः ?' ॥ २३ ॥

अन्वयः—युधि सुहृत्, बलम्, राज्यम्, तथा आत्मानं कीर्तिमेव च हि कः अबालिशः संदेहदोलास्थम् कुर्यात् ॥ २३ ॥

युधि=युद्धे । सुहृत्=मित्रम् । बलम्=सैन्यम् । राज्यम्=स्वदेशम् । आत्मानं कीर्तिम्=स्वकीयं यशः । अबालिशः=पंडितः । संदेहदोलास्थम्=संशयदोलारूढम् ॥ २३ ॥

भला कौन बुद्धिमान् युद्ध में पड़कर मित्र, सेना, राज्य, कीर्ति तथा अपने आप को सन्देह रूपी झूले में डालेगा ॥ २३ ॥

अपरञ्च--'सन्धिमिच्छेत्समेनापि, सन्दिग्धो विजयो युधि ।
नहि संशयितं कुर्यादित्युवाच बृहस्पतिः' ॥ २४ ॥

अन्वयः—युधि विजयः संदिग्धः (अतः) समेनापि संधिं इच्छेत् । संशयितं नहि कुर्यात् इति बृहस्पतिः उवाच ॥ २४ ॥

युधि=युद्धे । विजयः=विजयलाभः । संदिग्धः = अनिश्चितः । अत एव समेनापि=स्वतुल्यपराक्रमेणापि । संधिमिच्छेत्=संधिं कुर्यात् । संशयितं=संदिग्धम् कार्यम् । नहि कुर्यात्=नाचरेत् ॥ २४ ॥

लड़ाई में विजय प्राप्त होने में सन्देह होता है इसलिए समान बल वालों के साथ संधि कर लेना चाहिए । क्योंकि बृहस्पति ने बताया है कि जिस कार्य के पूरा होने में संदेह हो, उसे नहीं करना चाहिए ॥ २४ ॥

अपि च--'युद्धे विनाशो भवति कदाचिदुभयोरपि ।
सुन्दोपसुन्दावन्योन्यं, नष्टौ तुल्यबलौ न किम् ?' ॥ २५ ॥

राजोवाच--'कथमेतत् ?' मन्त्री कथयति—

अन्वयः—कदाचित् युद्धे उभयोरपि विनाशः भवति तुल्यबलौ सुन्दोपसुन्दौ अन्योन्यं किम् नष्टौ न ? ॥ २५ ॥

युद्धे=संग्रामे । उभयोरपि=युध्यमानयोः द्वयोरपि । अन्योन्यम्=परस्परम् । तुल्यबलौ=तुल्यपराक्रमौ । किम् न नष्टौ=नष्टौ एव ॥ २५ ॥

और भी—युद्ध में कभी-कभी दोनों पक्षों का विनाश निश्चित होता है । समान बल वाले सुन्द और उपसुन्द क्या आपस में लड़कर नष्ट नहीं हुए ? ॥

राजा ने कहा—यह कैसे ? मंत्री ने कहा—

कथा ८

पुरा दैत्यौ सहोदरौ सुन्दोपसुन्दनामानौ महता कायक्लेशेन त्रैलोक्यराज्यकामनया चिराच्चन्द्रशेखरमाराधितवन्तौ । ततस्तयोर्भगवान् परितुष्टः सन् 'वरं वरयतम्' इत्युवाच । अनन्तरं तयोः कण्ठाधिष्ठितायाः सरस्वत्याः प्रभावात्तावन्यद्वक्तुकामावन्यदभिहितवन्तौ—'यद्यावयोर्भवान्परितुष्टस्तदा स्वप्रियां पार्वतीं परमेश्वरो ददातु ।'

कायक्लेशेन=शरीरकष्टेन । त्रैलोक्यराज्यकामनया=त्रिभुवनराज्याभिलाषेण । चिरात्=बहुकालात् । चन्द्रशेखरम्=शिवम् । भगवान्=शिवः । वरयतम्=याचेयाम् । कण्ठाधिष्ठितायाः=कण्ठे स्थितायाः । अन्यद् वक्तुकामौ=अन्यत् वक्तुम् अभिलाषुकौ । अभिहितवन्तौ=उक्तवन्तौ । स्वप्रियाम्=निजपत्नीम् ।

प्राचीन काल में सगे भाई सुन्द और उपसुन्द ने तीनों लोक के राज्य की अभिलाषा से बहुत अधिक शारीरिक कष्ट उठा कर बहुत दिनों तक भगवान शंकर की आराधना की। तब भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर कहा कि 'वर मांगो ?' तब कंठ में बसी सरस्वती के प्रभाव से वह दोनों जो कुछ माँगना चाहते थे उसके प्रतिकूल बोले—यदि आप हम दोनों पर प्रसन्न हैं, तो अपनी प्रियपत्नी पार्वती को हमें दे दीजिए।

अथ भगवता क्रुद्धेन वरदानस्यावश्यकतया, विचारमूढयोः पार्वती प्रदत्ता । ततस्तस्या रूपलावण्यलुब्धाभ्यां, जगद्घातिभ्यां मनसोत्सुकाभ्यां, पापतिमिराभ्यां, 'ममे'त्यन्योन्यं कलहायमानाभ्यां 'प्रमाणपुरुषः कश्चित्पृच्छयता' मिति मतौ कृतायां, स एव भट्टारको वृद्धद्विजरूपः समागत्य तत्रोपस्थितः । अनन्तरम्—'आवाभ्यामियं स्वबललब्धा, कस्येयमावयोर्भवति'—इति ब्राह्मणमपृच्छताम् । ब्राह्मणो ब्रूते—

विचारमूढयोः=विवेकशून्ययोः । रूपलावण्यलुब्धाभ्याम्=सौन्दर्यप्रसक्ताभ्याम् । जगद्घातिभ्याम्=लोकपीडकाभ्याम् । मनसोत्सुकाभ्याम्=चित्तेनोत्सुकाभ्याम् । पापतिमिराभ्याम् = पापान्धकाराच्छादिताभ्याम् । कलहायमानाभ्याम्=द्वन्द्वायमानाभ्याम् । प्रमाणपुरुषः=मध्यस्थः । पृच्छयताम्=निर्णयार्थम्, पृच्छयताम् । भट्टारकः=परमेश्वरः । वृद्धद्विजरूपः = वृद्धब्राह्मणवेशः । स्वबललब्धा=स्वपराक्रमैः उपार्जिता ।

यह सुन कर भगवान् शिव बहुत क्रुद्ध हुए किन्तु अपनी वरदान देने की बात पूरी करने के लिए इन मूर्खों को उन्होंने पार्वती को दे दिया। तब दोनों पार्वती के रूप पर मुग्ध हो गये और संसार के घाती तथा अत्यन्त पापी वह दोनों अत्यन्त उत्सुक होकर 'यह मेरी हैं, यह मेरी है' इस प्रकार झगड़ा करने लगे। तब उन दोनों ने यह विचार किया कि किसी मध्यस्थ द्वारा निर्णय करा लेना चाहिए। उसी समय शंकर जी वृद्ध ब्राह्मण का वेश धारण करके उन दोनों के पास उपस्थित हुए। इसके पश्चात् इन दोनों ने ब्राह्मण से पूछा कि हम दोनों ने इसे अपने बल से प्राप्त किया है अतः यह किसकी होनी चाहिए। ब्राह्मण ने कहा—

'ज्ञानश्रेष्ठो द्विजः पूज्यः, क्षत्रियो बलवानपि।
धनधान्याधिको वैश्यः, शूद्रस्तु द्विजसेवया' ॥ २६ ॥

अन्वयः—ज्ञानश्रेष्ठः द्विजः, बलवान् क्षत्रियः, धनधान्याधिकः वैश्यः, द्विजसेवया तु शूद्रः पूज्यः (भवति) ॥ २६ ॥

वर्णश्रेष्ठः=वर्णेषु उत्तमः। द्विजः=ब्राह्मणः। बलवान्=बलाधिकः। धनधान्याधिकः=वैभवादियुक्तः। द्विजसेवया=ब्राह्मणसेवया। पूज्यः=श्रेष्ठः ॥ २६ ॥

ज्ञान में श्रेष्ठ ब्राह्मण, बल में श्रेष्ठ क्षत्रिय, धनधान्य में श्रेष्ठ वैश्य और सेवा करने में श्रेष्ठ शूद्र सबसे बड़ा माना जाता है ॥ २६ ॥

तद्युवां क्षात्त्रधर्मानुगौ। युद्ध एव युवयोर्नियमः।' इत्यभिहिते सति, साधूक्तमनेने'ति कृत्वान्योन्यतुल्यवीर्यौ, समकालमन्योन्यघातेन विनाशमुपगतौ। अतोऽहं ब्रवीमि—'सन्धिमिच्छेत्समेनापि' इत्यादि ॥

राजाह—'तत् प्रागेव किं नेदमुपदिष्टं भवद्भिः ?।' मन्त्री ब्रूते—'तदा मद्वचनं किमवसानपर्यन्तं श्रुतं भवद्भिः ?। तदापि मम संमत्या नायं विग्रहारम्भः। यतः—साधुगुणयुक्तोऽयं हिरण्यगर्भो, न विग्राह्यः'। तथा चोक्तम्—

क्षत्रधर्मानुगौ=क्षत्रियधर्मानुचारिणौ। नियमः=विधिः, निर्णयोपायः इत्यर्थः। अभिहिते सति=कथिते सति। साधूक्तम्=युक्तमुचितम्। इति कृत्वा=इत्यमवधार्य। समकालम्=तुल्यकालमेव। अन्योन्यघातेन=परस्परप्रहारेण। विनाशमुपगतौ=मृतौ। प्रागेव=आदौ एव। अवसानपर्यन्तम्=यावदन्तम्। तथापि=तस्मिन्नेव काले, विग्रहात्पूर्वम्। विग्रहारम्भः=युद्धारम्भः। साधुगुणयुक्तः=शिष्टगुणपूर्णः, साधुस्वभावः। न विग्राह्यः=युद्धाय नोचितः।

तुम दोनों क्षत्रिय हो। युद्ध ही तुम दोनों के बीच निर्णय करने का उपाय है। ब्राह्मण के ऐसा कहने पर 'इन्होंने बहुत ठीक कहा है' ऐसा कह कर समान बल वाले वह दोनों आपस में तत्काल ही एक दूसरे के ऊपर प्रहार करके मर गए। इसीलिये मैं कह रहा हूँ—'समान बलवाले के साथ संधि कर लेनी चाहिए' इत्यादि।

राजा चित्रवर्ण ने कहा—'तो पहले ही आप ने ऐसा क्यों नहीं कहा ?' मन्त्री गृद्ध ने कहा—

उस समय क्या आप ने मेरी पूरी-पूरी बातें सुनी थीं ? उस समय भी मेरी राय से यह युद्ध प्रारम्भ नहीं हुआ था। उत्तम गुणों से पूर्ण राजा राजहंस के साथ युद्ध करना उचित नहीं है। जैसा कि कहा भी गया है—

'सत्यार्यौ धार्मिकोऽनार्यो भ्रातृसङ्घातवान्बली।
अनेकयुद्धविजयी, सन्धेयाः सप्त कीर्तिताः॥ २७॥

अन्वयः—सत्यार्यौ, धार्मिकः, अनार्यः, भ्रातृसंघातवान्, वली, अनेकयुद्ध-विजयी (एते) सप्त सन्धेयाः कीर्तिताः॥ २७॥

सत्यार्यौ=सत्यवादी कुलीनश्च। अनार्यः=नीचवंशप्रसूतः। भ्रातृसंघातवान्=बहुभ्रातृयुक्तः। सन्धेयाः=सन्धियोग्याः। कीर्तिताः=कथिताः॥ २७॥

सत्यवादी, आर्य धर्म के पालन करने वाले, धार्मिक, बहुत अनार्य, भाइयों वाले, बलवान् तथा अनेक युद्धों में विजयी ये सात प्रकार के राजा सन्धि करने के योग्य हैं॥ २७॥

'सत्योऽनुपालयन् सत्यं सन्धितो नैति विक्रियाम्।
प्राणबाधेऽपि सुव्यक्तमार्यो नायात्यनार्यताम्'॥ २८॥

अन्वयः—सत्यः सत्यम् अनुपालयन् सन्धितः विक्रियाम् न एति, आर्यः प्राणबाधे अपि अनार्यताम् न आयाति इति सुव्यक्तम्॥ २८॥

सत्यः=सत्यपरः। सत्यम्=याथातथ्यम्। अनुपालयन्=समाचरन्। सन्धितः=कृतसंधानः। विक्रियाम्=विकृतिम्। न एति=न प्राप्नोति। आर्यः=सद्वंशप्रसूतः। प्राणबाधेऽपि=जीवितसंदेहेऽपि। अनार्यताम्=अकुलीनताम्। न आयाति=नागच्छति। सुव्यक्तम्=सुस्पष्टम्॥ २८॥

सत्य का पालन करने वाला राजा सन्धि करने पर भी कभी दोषयुक्त नहीं होता अर्थात् सन्धि के नियमों को नहीं तोड़ता और प्राण-संकट उपस्थित होने पर भी आर्य नियमों का पालन करने वाला राजा दुष्टता कभी नहीं ग्रहण करता है॥ २८॥

'धार्मिकस्याभियुक्तस्य सर्व एव हि युध्यते ।
प्रजानुरागाद्धर्माच्च दुःखोच्छेद्यो हि धार्मिकः' ॥ २९ ॥

अन्वयः—अभियुक्तस्य धार्मिकस्य सर्वं एव हि युध्यते (अतः) प्रजानुरागात् धर्मात् च धार्मिकः दुःखोच्छेद्यः (भवति) ॥ २९ ॥

अभियुक्तस्य = शत्रुणा आक्रान्तस्य । धार्मिकस्य=धर्मपरायणस्य नृपस्य । सर्वं एव=सम्पूर्णलोकवर्गः । प्रजानुरागात् = प्रजाप्रेम्णः । धर्मात् = धर्मावलम्बनात् । दुःखोच्छेद्यः=काठिन्येन विनाश्यः ॥ २९ ॥

धार्मिक राजा पर जब शत्रु चढ़ाई करता है तो मन्त्री, सेना और प्रजा आदि सभी उसके लिये जान देकर लड़ते हैं। इसलिए प्रजाप्रेम तथा धर्म का पालन करने के कारण धार्मिक राजा को जीतना अत्यन्त कठिन होता है ॥२९॥

'सन्धिः कार्योऽप्यनार्येण विनाशे समुपस्थिते ।
विना तस्याश्रयेणार्यो न कुर्यात्कालयापनम्' ॥ ३० ॥

अन्वयः—विनाशे समुपस्थिते अनार्येण सन्धिः कार्यः तस्य आश्रयेण विना आर्यः कालयापनम् न कुर्यात् ॥ ३० ॥

विनाशे=राज्यकोशादिनाशे । समुपस्थिते=आगते सति, अनार्येणापि = नीचेन सहापि । तस्य=अनार्यस्य । आश्रयेण = अवलम्बनेन, सन्धानेन इत्यर्थः । कालयापनम्=समयातिक्रमणम् ॥ ३० ॥

अपना विनाश आया हुआ देख कर दुष्ट राजा के साथ भी सन्धि कर लेनी चाहिए क्योंकि उसका सहारा लिये बिना भी अपना समय नहीं बिता सकता है ॥

'संहतत्वाद्यथा वेणुर्निबिडैः कण्टकैर्वृतः ।
न शक्यते समुच्छेत्तुं भ्रातृसङ्घातवांस्तथा' ॥ ३१ ॥

अन्वयः—निबिडैः कण्टकैः वृतः वेणुः संहतत्वात् यथा समुच्छेत्तुं न शक्यते तथा भ्रातृसंघातवान् (अपि) ॥ ३१ ॥

निबिडैः=घनैः । कण्टकैः = ग्रन्थकण्टकैः । वृतः=आच्छादितः । वेणुः=वंशः । संहतत्वात्=मिलितत्वात् । समुच्छेत्तुम्=समुद्धर्तुम्, न शक्यते=न पार्यते ॥३१॥

घने काँटों से घिरा हुआ तथा एक में एक गुंथा हुआ बाँस जिस प्रकार नहीं काटा जा सकता उसी प्रकार भाइयों का समूह रखने वाला राजा भी शीघ्र ही नहीं विनष्ट किया जा सकता है ॥ ३१ ॥

'बलिना सह योद्धव्य' मिति नास्ति निदर्शनम् ।
प्रतिवातं न हि घनः कदाचिदुपसर्पति' ॥ ३२ ॥

अन्वयः—बलिना सह योद्धव्यम् इति निदर्शनम् नास्ति हि घनः कदाचित् प्रतिवातम् न उपसर्पति ॥ ३२ ॥

बलिना सह=सपराक्रमेण सार्द्धम् । योद्धव्यम्=युद्धम् करणीयम् । निदर्शनम्=दृष्टान्तः । घनः=पयोदः । प्रतिवातम्=विपरीतं वायुम्प्रति । न उपगच्छति=न उपधावति ॥ ३२ ॥

ऐसा दृष्टान्त कहीं भी नहीं मिलता है कि बली के साथ युद्ध करना उचित है । क्योंकि बादल भी वायु के प्रतिकूल चढ़ाई नहीं करता है ॥ ३२ ॥

'जमदग्नेः सुतस्येव सर्वः सर्वत्र सर्वदा ।
अनेकयुद्धजयिनः प्रतापादेव भज्यते' ॥ ३३ ॥

अन्वयः—जमदग्नेः सुतस्येव अनेकयुद्धजयिनः प्रतापात् एव सर्वत्र सर्वदा सर्वः भज्यते ॥ ३३ ॥

जमदग्नेः = भृगुवंशोद्भूतस्य महर्षेः । सुतस्य=पुत्रस्य, परशुरामस्येत्यर्थः । प्रतापादेव=प्रभावादेव । सर्वत्र=सर्वस्थाने । सर्वदा=सर्वकाले । सर्वः=समस्तरिपुवर्गः । भज्यते=समरात् पलायते ॥ ३३ ॥

जमदग्नि के पुत्र परशुराम के समान अनेक युद्धों में विजय प्राप्त करने वाले राजा के प्रताप से ही सभी स्थान पर और सभी समय सारे शत्रु वश में हो जाते हैं ॥ ३३ ॥

'अनेकयुद्धविजयी सन्धानं यस्य गच्छति ।
तत्प्रतापेन तस्याशु वशमायान्ति शत्रवः' ॥ ३४ ॥

अन्वयः—अनेकयुद्धविजयी यस्य सन्धानं गच्छति तत्प्रतापेन तस्य शत्रवः आशु वशमायान्ति ॥ ३४ ॥

अनेकयुद्धविजयी=बहुसमरविजेता नृपः । यस्य=राज्ञ । सन्धानं गच्छति=सन्धिमायाति । तत्प्रतापेन=विजयप्रभावेण । तस्य, रिपवः=शत्रवः आशु=शीघ्रम् । वशम्=अधीनत्वम्, आयान्ति=प्राप्नुवन्ति ॥ ३४ ॥

अनेक युद्धों में जीतने वाले राजा के साथ सन्धि करने वाला राजा भी उसी के प्रताप से शीघ्र ही अपने शत्रुओं को वश मे कर लेता है ॥ ३४ ॥

तत्र तावद्बहुभिर्गुणैरुपेतः सन्धेयोऽयं राजा ।' चक्रवाकोऽवदत्—'प्रणिधे ! सर्वमवगतम् । व्रज । पुनरागमिष्यसि' ।

अथ राजा हिरण्यगर्भश्चक्रवाकं पृष्टवान्—'मन्त्रिन् ! असन्धेयाः कति ? ताञ्छ्रोतुमिच्छामि ।' मन्त्री ब्रूते—'देव ! कथयामि । शृणु—

बालो, वृद्धो, दीर्घरोगी, तथा ज्ञातिबहिष्कृतः ।
भीरुको, भीरुकजनो, लुब्धो, लुब्धजनस्तथा ॥ ३५ ॥

विरक्तप्रकृतिश्चैव, विषयेष्वतिसक्तिमान् ।
अनेकचित्तमन्त्रस्तु, देव-ब्राह्मण-निन्दकः ॥ ३६ ॥
दैवोपहतकश्चैव, तथा दैवपरायणः ।
दुर्भिक्षव्यसनोपेतो, बलव्यसनसङ्कुलः ॥ ३७ ॥
अदेशस्थो, बहुरिपुर्युक्तः कालेन यश्च न ।
सत्यधर्मव्यपेतश्च, विंशतिः पुरुषा अमी ॥ ३८ ॥

बहुभिर्गुणैरुपेतः=अनेकगुणयुक्तः । अयम् राजा = राजहंसः । सर्वमवगतम्= सर्वम् ज्ञातम् । असन्धेयाः=सन्ध्ययोग्याः ।

अन्वयः—बालः·········अमी विंशतिः (असंधेयाः भवन्ति) ॥३५–३८॥

यः बालः=शिशुः । दीर्घरोगी=बहुकालरोगी । ज्ञातिबहिष्कृतः = सम्बन्धिना परित्यक्तः । भीरुकः=कातरः । भीरुकजनः=कातरसैन्यः । लुब्धः = लोभी । लुब्धजनः = लुब्धानुचरवर्गः । विरक्तप्रकृतिः = अननुरक्तप्रजाजनः । विषयेषु = इन्द्रियार्थेषु । अतिसक्तिमान् = आसक्तचित्तः । अनेकचित्तमंत्रः = चंचलचित्तमन्त्रियुक्तः । देवब्राह्मणनिन्दकः = सुरविप्रगर्हकः । दैवोपहतः = दुर्भाग्योपहतः । दैवपरायणः=भाग्याधीनः, दुर्भिक्षव्यसनोपेतः=दुष्कालापदुपहतः । बलव्यसनसङ्कुलः= सैन्यापत्संयुतः । अदेशस्थः=परदेशे स्थितः । बहुरिपुः = अनेकशत्रुः । कालेन= समयेन । न युक्तः=नोपेतः सत्यधर्मव्यपेतः=सत्येन, धर्मेण च हीनः ॥३५–३८॥

इसलिए बहुत गुणों से युक्त यह राजहंस राजा संधि करने के योग्य है। चकवे ने कहा—'गुप्तचर, मुझे सब मालूम हो गया । जाओ । फिर आना ।' तब राजा राजहंस ने चक्रवाक से पूछा—'मंत्रिवर, कितने प्रकार के राजा संधि करने योग्य नहीं होते, मैं उन्हें सुनना चाहता हूँ ।' मंत्री ने कहा—राजन्, कह रहा हूँ, सुनिए—

बालक, बूढ़ा, रोगी, जाति से निकाला गया, कायर, कायर सैनिकों वाला, लालची, लालची सैनिकों अथवा सेवकों वाला, जिसके मंत्री सेवक आदि उससे उदासीन हों, जो अत्यन्त विषयी हो, जो चंचल हृदय तथा राय वाला हो, देव ब्राह्मण की निन्दा करने वाला, भाग्य का मारा हुआ, भाग्य के अधीन रहने वाला, दुर्भिक्ष की विपत्ति में पड़ा हुआ, सैनिक विपत्ति में फँसा हुआ, बुरे स्थान में स्थित, बहुत शत्रुओं वाला, समयानुसार कार्य न करने वाला, सच्चे धर्म से रहित—ये बीस प्रकार के राजा संधि करने योग्य नहीं होते हैं ॥ ३५–३८ ॥

एतैः सन्धिं न कुर्वीत, विगृह्णीयात्तु केवलम्' ।
एते विगृह्यमाणा हि क्षिप्रं यान्ति रिपोर्वशम्' ॥ ३९ ॥

अन्वयः—एतैः सन्धिम् न कुर्वीत केवलम् विगृह्णीयात् यतः एते विगृह्यमाणाः क्षिप्रम् रिपोर्वशम् यान्ति ॥ ३९ ॥

एतैः=पूर्वोक्तैः विंशत्यैः पुरुषैः । विगृह्णीयात् = युद्धमेव कुर्यात् । विगृह्यमाणाः=युध्यमानाः । क्षिप्रम्=त्वरितम् । रिपोः=शत्रोः । वशम् यान्ति= अधीना भवन्ति ॥ ३९ ॥

इनसे संधि न करके केवल युद्ध ही करना चाहिए क्योंकि यह बीसों प्रकार के राजा युद्ध करने से शीघ्र ही शत्रु के वश में हो जाते हैं ॥ ३९ ॥

बालस्याल्पप्रभावत्वान्न लोको योद्धुमिच्छति ।
युद्धायुद्धफलं यस्माज्ज्ञातुं शक्तो न बालिशः' ॥ ४० ॥

अन्वयः—लोकः अल्पप्रभावत्वात् बालस्य योद्धुम् न इच्छति । यस्मात् बालिशः युद्धायुद्धफलम् ज्ञातुं न शक्तः ॥ ४० ॥

लोकः=जनः । अल्पप्रभावत्वात्=स्वल्पप्रतापत्वात् । बालस्य=शिशुनृपतेः । योद्धुं नेच्छन्ति = विग्रहं कर्तुं न वाञ्छन्ति । यस्मात्=यतः, बालिशः = बालकः, मूर्खश्च । युद्धायुद्धफलम्=विग्रहाविग्रहपरिणामम् । ज्ञातुम् न शक्तः=ज्ञातुमसमर्थः भवति ॥ ४० ॥

राजा यदि बालक होता है तो उसमें तेज का अभाव होने से मंत्री, सैनिक तथा प्रजा आदि पर उसका प्रभाव बहुत कम पड़ता है जिससे ये सभी लोग उसके लिए ठीक से युद्ध नहीं करते हैं और युद्ध तथा अयुद्ध का परिणाम जानने की शक्ति भी बालक अथवा मूर्ख में नहीं होती है ॥ ४० ॥

'उत्साहशक्तिहीनत्वाद्वृद्धो, दीर्घामयस्तथा ।
स्वैरेव परिभूयेते द्वावप्येतावसंशयम्' ॥ ४१ ॥

अन्वयः—वृद्धः तथा दीर्घामयः उत्साहशक्तिहीनत्वात् द्वौ अपि एतौ असंशयम् स्वैरेव परिभूयेते ॥ ४१ ॥

वृद्धः = स्थविरः । तथा दीर्घामयः = दीर्घरोगी । उत्साहशक्तिहीनत्वात्= सामर्थ्योत्साहरहितत्वात् । असंशयम्=निस्सन्देहम् । स्वैरेव = आत्मीयैरेव । परिभूयेते=तिरस्क्रियेते ॥ ४१ ॥

वृद्ध तथा बहुत दिनों से रोगी राजा उत्साह और शक्ति से रहित होते हैं। अतः यह दोनों ही अपने आप पराजित हो जाते हैं, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है' ॥

'सुखोच्छेद्यो हि भवतिसर्व-ज्ञाति-बहिष्कृतः ।
त एवैनं विनिघ्नन्ति ज्ञातयस्त्वात्मसात्कृताः' ॥ ४२ ॥

अन्वयः—स्वज्ञातिबहिष्कृतः सुखच्छेद्यः भवति । आत्मसात्कृताः ज्ञातयः तु ते एव एनम् विनिघ्नन्ति ॥ ४२ ॥

स्वज्ञातिबहिष्कृतः=स्वसजातीयैः निष्कासितः । सुखोच्छेद्यः=सारल्येनोन्मूलनीयः । आत्मसात्कृताः=स्वपक्षे नीताः । ज्ञातयः=सजातीयाः । तु ते एव=ज्ञातिलोकाः । एवम्=जातिबहिष्कृतम् । विनिघ्नन्ति=विनाशयन्ति ॥ ४२ ॥

अपनी जातिवालों (भाई-बन्धुओं) से निकाला गया राजा आसानी से नष्ट किया जा सकता है । क्योंकि अपने पक्ष में किए गये उसके भाई बन्धु ही उसे मार डालते हैं ॥ ४२ ॥

'भीरुर्युद्धपरित्यागात्स्वयमेव प्रणश्यति ।
तथैव भीरुपुरुषः संग्रामे तैर्विमुच्यते' ॥ ४३ ॥

अन्वयः—भीरुः युद्धपरित्यागात् स्वयमेव प्रणश्यति तथैव भीरुपुरुषः संग्रामे तैः विमुच्यते ॥ ४३ ॥

भीरुः=कापुरुषः । युद्धपरित्यागात् = युद्धस्य परिहारात् । प्रणश्यति=विनश्यति । भीरुपुरुषः=कातरसैनिकः युद्धत्यागात्, स्वयमेव=आत्मना, नृपः । तैः=भीरुभिः सैनिकैः । संग्रामे=युद्धे । विमुच्यते=परित्यज्यते ॥ ४३ ॥

कायर युद्ध छोड़ कर भागने से अपने आप मारा जाता है और यदि राजा के सैनिक-मंत्री आदि कायर हुए तो वे सभी राजा को युद्ध में छोड़ कर भाग जाते हैं ॥ ४३ ॥

'लुब्धस्यासंविभागित्वान्न युध्यन्तेऽनुजीविनः ।
लुब्धानुजीवी तैरेव दानभिन्नैर्निहन्यते' ॥ ४४ ॥

अन्वयः—असंविभागित्वात् अनुजीविनः लुब्धस्य न युध्यन्ते । लुब्धानुजीवी दानभिन्नैः तैः एव निहन्यते ॥ ४४ ॥

असंविभागित्वात्=उचितांशादानात् । अनुजीविनः = सैनिकाः । लुब्धस्य=लोभपरायणस्य नृपस्य । लुब्धानुजीवी=लोलुपसैनिकः नृपः । दानभिन्नैः=शत्रुभिः दत्तैः द्रव्यैः तत्पक्षे स्थितैः । तैः=लुब्धसेवकैः । निहन्यते=व्यापाद्यते ॥ ४४ ॥

लोभी राजा अपने कर्मचारियों को उचित रूप से उनका हिस्सा न देकर स्वयं हड़प लेता है जिससे उसके कर्मचारी उसके लिए मन से युद्ध नहीं करते हैं । और जिस राजा के कर्मचारी लालची होते हैं वे सभी शत्रु के घूस देने पर फूट जाते तथा राजा को मार डालते हैं ॥ ४४ ॥

'सन्त्यज्यते प्रकृतिभिर्विरक्तप्रकृतिर्युधि ।
सुखाभियोज्यो भवति विषयेष्वतिसक्तिमान्' ॥ ४५ ॥

अन्वयः—विरक्तप्रकृतिः युधि प्रकृतिभिः सन्त्यज्यते । विषयेषु अतिसक्तिमान् सुखोभियोज्यः भवति ॥ ४५ ॥

विरक्तप्रकृतिः=उदासीनप्रजः, विरक्ताः उदासीनाः प्रकृतयः यस्य सः नृपः । युधि=संग्रामे । प्रकृतिभिः=प्रजाभिः अमात्यादिभिश्च । संत्यज्यते=विमुच्यते । विषयेषु=इन्द्रियार्थेषु । अतिसक्तिमान्=अत्यासक्तः । सुखाभियोज्यः=अनायासवश्यः भवति ॥ ४५ ॥

जिस राजा के मन्त्री-कर्मचारी आदि उससे प्रेम नहीं करते वे सभी युद्ध में राजा का साथ छोड़ देते हैं और जो राजा विषय-वासनाओं में लिपटा हुआ होता है वह आसानी से पराजित किया जा सकता है ॥ ४५ ॥

'अनेकचित्तमन्त्रस्तु द्वेष्यो भवति मन्त्रिणाम् ।
अनवस्थितचित्तत्वात्कार्यतः स उपेक्ष्यते' ॥ ४६ ॥

अन्वयः—अनेकचित्तमंत्रस्तु मन्त्रिणाम् द्वेष्यः भेद्यः भवति अनवस्थित-चित्तत्वात् कार्यतः स उपेक्ष्यते ॥ ४६ ॥

अनेकचित्तमंत्रस्तु=मंत्रणायाम् चंचलस्वभावः, मंत्रापरायणः । मंत्रिणाम्=अमात्यानाम् । द्वेष्यः=द्वेषार्हः भवति । अनवस्थितचित्तत्वात्=चंचलहृदयत्वात् । कार्यतः=कार्यकाले, विग्रहे उपस्थिते सति । सः=नृपः । उपेक्ष्यते=उपेक्षितो भवति ॥

जिस राजा का चित्त चंचल और राय अनिश्चित होती है, वह राजा अपने मंत्रियों द्वारा ही शत्रु समझा जाता है और चंचल चित्त होने के कारण लोग कार्य के समय उसकी उपेक्षा करने लगते हैं ॥ ४६ ॥

'सदाधर्मबलीयस्त्वाद्देव ब्राह्मण निन्दकः ।
विशीर्यते स्वयं ह्येषः, 'दैवोपहतकस्तथा' ॥ ४७ ॥

अन्वयः—देवब्राह्मणनिन्दकः सदा अधर्मबलीयस्त्वात् हि एषः दैवोपहतकः स्वयम् विशीर्यते ॥ ४७ ॥

देवब्राह्मणनिन्दकः=देवताद्विजविनिन्दकः । सदा = सर्वदैव । अधर्मबलीय-स्त्वात्=पापस्य बलवत्त्वात् । दैवोपहतकः=भाग्योपहतः । स्वयं विशीर्यते=आत्मनैव नश्यति ॥ ४७ ॥

सदा अधर्म बली होने से देवता और ब्राह्मण की निन्दा करने वाला अधर्म-बल से युक्त होने के कारण तथा भाग्य का मारा हुआ राजा अपने आप नष्ट हो जाता है ॥ ४७ ॥

'सम्पत्तेश्च, विपत्तेश्च दैवमेव हि कारणम् ।
इति दैवपरो ध्यायन्नात्मना न विचेष्टते' ॥ ४८ ॥

अन्वयः—दैवपरः सम्पत्तेः विपत्तेश्च दैवमेव हि कारणम् इति ध्यायन् आत्मना न विचेष्टते ॥ ४८ ॥

दैवपरः=भाग्यवादी । दैवमेव=भाग्यमेव । हि=निश्चयेन, कारणम्=हेतुः । इति ध्यायन्=एवं चिन्तयन् । न विचेष्टते=कर्तव्यकर्मणि न यतते ॥ ४८ ॥

'सम्पत्ति और विपत्ति का देने वाला केवल भाग्य होता है' इस प्रकार भाग्य के अधीन रहने वाला राजा स्वयं ठीक-ठीक प्रयत्न नहीं करता है अतः वह भी नष्ट हो जाता है ॥ ४८ ॥

'दुर्भिक्षव्यसनी चैव स्वयमेव विषीदति ।
बलव्यसनसक्तस्य योद्धुं शक्तिर्न जायते' ॥ ४९ ॥

अन्वयः—दुर्भिक्षव्यसनी च·········न जायते ॥ ४९ ॥

दुर्भिक्षव्यसनी=दुर्भिक्षरूपापदाग्रस्तः । चैव स्वयमेव=आत्मनैव । विषीदति=व्याकुलो भवति । बलव्यसनसक्तस्य = सैन्यापदाग्रस्तस्य । योद्धुं=विग्रहीतुम् । शक्तिः=सामर्थ्यम् । न जायते=नोद्भवति ॥ ४९ ॥

अकाल की विपत्ति में पड़ा हुआ राजा स्वयम् दुखी होता है और सैनिक विपत्ति में पड़े हुए राजा में युद्ध करने की शक्ति ही नहीं होती है ॥ ४९ ॥

'अदेशस्थो हि रिपुणा स्वल्पकेनापि हन्यते ।
ग्राहोऽल्पीयानपि जले गजेन्द्रमवकर्षति' ॥ ५० ॥

अन्वयः—अदेशस्थः हि स्वल्पकेनापि रिपुणा हन्यते, अल्पीयान् अपि ग्राहः जले गजेन्द्रम् अवकर्षति ॥ ५० ॥

अदेशस्थः=अनुचितप्रदेशस्थः । हि=निश्चयेन स्वल्पकेन=तुच्छबलेन सामान्येन । रिपुणा = शत्रुणा । हन्यते = विनाश्यते । अल्पीयान्=अल्पकायः अपि । ग्राहः=मकरः । गजेन्द्रम्=बृहत्कायं गजम् अपि । अवकर्षति=अपकर्षति ॥ ५० ॥

बुरे स्थान में पड़ा हुआ राजा छोटे शत्रुओं द्वारा भी आसानी से मारा जाता है जैसे जल में पड़े हुए हाथी को छोटा-सा मगर मार डालता है ॥५०॥

'बहुशत्रुस्तु सन्त्रस्तः श्येनमध्ये कपोतवत् ।
येनैव गच्छति पथा तेनैवाशु विपद्यते' ॥ ५१ ॥

अन्वयः—श्येनमध्ये कपोतवत् सन्त्रस्तः बहुशत्रुः येनैव पथा गच्छति तेनैव आशु विपद्यते ॥ ५१ ॥

श्येनमध्ये=पत्रिमध्ये (बाजों के बीच में)। कपोतवत् = पारावतसदृशः। बहुशत्रुः = बहुरिपुः नृपः। सन्त्रस्तः = शत्रुणा भीतः सन्। येनैव पथा=येनैव मार्गेण। आशु=शीघ्रम्। विपद्यते=विपत्तिमाप्नोति॥ ५१॥

बहुत शत्रुओं वाला राजा बाज के बीच में पड़े हुए कबूतर के समान पीड़ित रहता है और जिस मार्ग से जाता है उसी मार्ग में शीघ्र ही मारा जाता है॥

'अकालयुक्तसैन्यस्तु हन्यते कालयोधिना।
कौशिकेन हतज्योतिर्निशीथ इव वायसः' ॥ ५२॥

अन्वयः—निशीथे कौशिकेन हतज्योतिः वायसः इव कालयोधिना अकालयुक्तसैन्यस्तु हन्यते॥ ५२॥

निशीथे=अर्द्धरात्रे। हतज्योतिः=नष्टनेत्रद्युतिः। वायसः=काकः। इव=यथा। कौशिकेन=उलूकेन। कालयोधिना=अनुकूलावसरे युद्धकारकेण शत्रुणा। अकालयुक्तसैन्यः=असमये सैन्यसंचालकः नृपः। हन्यते=मार्यते॥ ५२॥

जो राजा अवसर का ध्यान रखे बिना दूसरे राजा पर चढ़ाई कर देता है वह समयानुसार युद्ध करने वाले राजा से उसी प्रकार मारा जाता है जैसे आधी रात के समय दिखाई न देने के कारण कौवा उल्लू द्वारा मारा जाता है॥५२॥

'सत्यधर्मव्यपेतेन सन्दध्यान्न कदाचन।
स सन्धितोऽप्यसाधुत्वादचिराद्याति विक्रियाम्' ॥५३॥

अन्वयः—सत्यधर्मव्यपेतेन कदाचन न सन्दध्यात् स सन्धितः अपि असाधुत्वात् अचिरात् विक्रियाम् याति॥ ५३॥

सत्यधर्मव्यपेतेन=सत्यधर्मरहितेन, न सन्दध्यात्=सन्धि न कुर्वीत। सन्धितः=सन्धिना युक्तः अपि। असाधुत्वात्=दुष्टप्रकृतित्वात्। विक्रियाम्=विकारम्, निरोधम्। याति=प्राप्नोति॥ ५३॥

सत्य तथा धर्म से हीन राजा के साथ कभी भी संधि नहीं करनी चाहिए क्योंकि वह संधि करने पर भी दुष्टता के कारण शीघ्र ही बिगड़ जाता है अर्थात् संधि के नियमों का पालन करना छोड़ देता है॥ ५३॥

अपरमपि कथयामि—सन्धि-विग्रह-यानासन-संश्रय-द्वैधीभावाः षाड्गुण्यम्। कर्मणामारम्भोपायः, पुरुष-द्रव्य-सम्पत्, देश-कालविभागः, विनिपातप्रतीकारः, कार्यसिद्धिश्च (इति) पञ्चाङ्गो मन्त्रः। साम-दान-भेद-दण्डाश्चत्वार उपायाः। उत्साहशक्तिः, मन्त्र-

शक्तिः, प्रभुशक्तिश्चेति शक्तित्रयम्। एतत्सर्वमालोच्य नित्यं विजिगीषवो भवन्ति महान्तः। यतः—

सन्धिः = सन्धानम्। विग्रहः=युद्धम्। यानम्=रिपुम् प्रति अभियानम् (चढ़ाई)। आसनम् = दुर्गादौ स्थित्वा उचितावसरस्य प्रतीक्षणम्। संश्रयः= बलवदाश्रयणम्। द्वैधीभावः=द्विधा व्यवहारः। कर्मणाम्=कार्याणाम्। आरम्भोपायः = प्रारम्भस्य प्रयत्नः। पुरुषद्रव्यसम्पत्=पुरुषाणाम्=सैन्यादीनाम् सहायकानाम्, द्रव्यस्य=धनधान्यादेश्च, सम्पत्=समृद्धिः। देशकालविभागः=देशकाल-(कुत्र कदा च) भेदेन कर्तव्यनिश्चयः। विनिपातप्रतीकारः = विपत्तेः प्रतीकारः। विजगीषवः=विजयाभिलाषुकाः॥

और भी कह रहा हूँ—'संधि, युद्ध, चढ़ाई, समय की प्रतीक्षा, अपने से बली का आश्रय लेना तथा दोरंगी नीति ग्रहण करना—ये राजनीति के छः गुण होते हैं। कार्यों के आरम्भ करने का उपाय, सहायक व्यक्तियों तथा उचित द्रव्य का संग्रह, देश-काल का उचित विभाग, आई हुई विपत्तियों के दूर करने के उपाय और कार्य की सिद्धि—यह पाँच मंत्रणा के अंग होते हैं। साम, दाम, दण्ड और भेद—ये चार शत्रु को वश में करने के उपाय होते हैं। उत्साह, मंत्रणा तथा प्रभुत्व यह राज्य की तीन शक्तियाँ होती हैं। महान लोग इन सभी बातों का विचार करके ही शत्रु को जीतने की अभिलाषा करते हैं। क्योंकि—

'या हि प्राणपरित्यागमूल्येनापि न लभ्यते।
सा श्रीर्नीतिविदं पश्य चञ्चलापि प्रधावति'॥ ५४॥

अन्वयः—या (श्रीः) प्राणपरित्यागमूल्येनापि न लभ्यते सा श्रीः चञ्चलापि नीतिविदं प्रधावति इति पश्य॥ ५४॥

या श्रीः=या लक्ष्मीः। प्राणपरित्यागमूल्येनापि=युद्धे जीवितदानेनापि। नीतिविदम्=नीतिज्ञम्। चंचलापि=चंचलस्वभावापि। प्रधावति=स्वयमेवागच्छति। इति पश्य=अवलोकय॥ ५४॥

जो लक्ष्मी प्राणत्यागरूपी मूल्य चुकाने पर भी नहीं प्राप्त होती है वही लक्ष्मी नीतिमान राजा के पास अपने आप दौड़ी हुई जाती है॥ ५४॥

तथा चोक्तम्—'वित्तं सदा यस्य समं विभक्तं,
गूढश्चरः, संनिभृतश्च मन्त्रः।
न चाप्रियं प्राणिषु यो ब्रवीति,
स सागरान्तां पृथिवीं प्रशास्ति'॥ ५५॥

अन्वयः—यस्य वित्तं सदा समं विभक्तम्, चरः गूढः मंत्रश्च संनिभृतः, यः प्राणिषु अप्रियं न ब्रवीति स सागरान्तां पृथिवीं प्रशास्ति ॥ ५५ ॥

यस्य=राज्ञः । वित्तम्=धनम् । समं विभक्तम्=सेवकेषु तुल्यभावेन विभक्तम् । चरः=गुप्तचरः । सर्वदा गूढः = सर्वदैव अत्यंतगोप्यभावेन विचरति । मंत्रश्च संनिभृतः=यस्य मंत्रणाविषयः अतिसुगुप्तः । यः प्राणिषु=समस्तप्रजासु । अप्रियं न ब्रवीति=प्रियवाग्भवति । सः समुद्रान्ताम्=आसमुद्राम् । पृथ्वीं शास्ति = चक्रवर्ती नृपः भवति ॥ ५५ ॥

जो राजा अपनी सम्पत्ति को अपने सेवकों में समान रूप से बाँट देता है, जिसके गुप्तचर तथा मंत्रणाएँ अत्यन्त गुप्त होती हैं और जो कभी किसी से कटुभाषण नहीं करता वह समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का शासन करता है ॥ ५५ ॥

किन्तु देव ! यद्यपि महामन्त्रिणा गृध्रेण सन्धानमुपन्यस्तं, तथापि तेन राज्ञा सम्प्रति भूतजयदर्पान्न मन्तव्यम् । (देव !) तदेवं क्रियतां-सिंहलद्वीपस्य महाबलो नाम सारसो राजास्मन्मित्रं जम्बुद्वीपे कोपं जनयतु । यतः—

महामंत्रिणा=मयूरस्य चित्रवर्णस्य प्रधानमंत्रिणा । सन्धानम् = संधिम् । उपन्यस्तम्=राज्ञः सम्मुखे उपस्थापितम् । सम्प्रति = इदानीम् । भूतजयदर्पात्= पूर्वं प्राप्तविजयाभिमानात् । न मन्तव्यम् = न स्वीकरिष्यति । कोपम् = क्रोधम् । जनयतु=उत्पादयतु ॥

किन्तु राजन्, यद्यपि महामंत्री गृध्र ने संधि का प्रस्ताव उपस्थित किया किन्तु इस समय राजा चित्रवर्ण प्राप्तविजय के अभिमान से उसे स्वीकार नहीं कर रहा है इसलिए ऐसा कीजिय—सिंहल द्वीप का राजा महाबली सारस, जो हम लोगों का मित्र है, उसे जंबूद्वीप के प्रति क्रुद्ध करा दीजिए ।

'सुगुप्तिमाधाय, सुसंहतेन
बलेन वीरो विचरन्नरातिम् ।
सन्तापयेद् येन समं सुतप्त-
स्तप्तेन सन्धानमुपैति तप्तः' ॥ ५६ ॥

अन्वयः—वीरः सुगुप्तिमाधाय सुसंहतेन बलेन विचरन् अरातिम् सन्तापयेत् येन सः समं सुतप्तः भवेत् हि तप्तेन तप्तः सन्धानम् उपैति ॥ ५६ ॥

वीरः = बलवान् नृपः । सुगुप्तिमाधाय=अत्यंतप्रच्छन्नभावं विधाय । सुसंहतेन=परस्परमनुरक्तेन, सुसंगठितेनेत्यर्थः । बलेन=सैन्येन सह । विचरन्=इतस्ततः भ्रमन् । अरातिम्=शत्रुम् । सन्तापयेत् = पीडयेत् । येन सः = यस्मात्कारणात् स

शत्रुः । समम्=तुल्यमेव, संतप्तः=पीडितः, उत्तप्तश्च । तप्तेन=उत्तप्तेन, पीडितेन च सह । तप्तः=उत्तप्तः, पीडितः । सन्धानमुपैति=सन्धिम् प्राप्नोति ॥ ५६ ॥

क्योंकि—

विजय की अभिलाषा रखनेवाले को अपनी रक्षा का दृढ़ उपाय करके सुसंगठित सेना लेकर इधर-उधर घूमते हुए शत्रु को भलीभाँति पीड़ित करना चाहिए, उसे संताप पहुँचाना चाहिए, जिससे वह भी अपने ही समान संतप्त हो जाय, तभी वह संधि कर सकता है क्योंकि दो लोहे भलीभाँति गरम हो जाने पर ही आपस में मिल सकते हैं ॥ ५६ ॥

राज्ञा 'एवमस्तु' इति निगद्य विचित्रनामा बकः सुगुप्तलेखं दत्त्वा सिंहलद्वीपं प्रहितः ।

निगद्य=उक्त्वा । सुगुप्तलेखम्=गुप्तपत्रम् । प्रहितः=प्रेषितः ।

राजा राजहंस ने कहा कि ठीक है, ऐसा ही हो । फिर उसने विचित्र नाम वाले बगुले को बुलाकर और उसे गुप्त पत्र देकर सिंहलद्वीप भेज दिया ।

अथ प्रणिधिः पुनरागत्योवाच—'देव ! श्रूयतां तावत्तत्रस्थ-प्रस्तावः'—एवं तत्र गृध्रेणोक्तं—'देव ! मेघवर्णस्तत्र चिरमुषितः, स वेत्ति किं सन्धेयगुणयुक्तो हिरण्यगर्भो राजा, न वा' ?-इति । ततोऽसौ मेघवर्णश्चित्रवर्णेन राज्ञा समाहूय पृष्टः—'वायस ! कीदृशोऽसौ हिरण्यगर्भो राजा ? । चक्रवाको मन्त्री वा कीदृशः' ? । वायस उवाच—'देव ! स हिरण्यगर्भो राजा युधिष्ठिरसमो महाशयः, सत्यवाक् । चक्रवाक-समो मन्त्री न क्काप्यवलोक्यते ।' राजाह—'यद्येवं तदा कथमसौ त्वया वञ्चितः ? ।' विहस्य मेघवर्णः प्राह—देव !

प्रणिधिः = प्रधानगुप्तचरः । तत्रत्यप्रस्तावः = शत्रुपक्षस्य कार्यम् । तत्र = शत्रुदुर्गे । चिरमुषितः=बहुकालपर्यन्तस्थितः । वेत्ति=जानाति । महाशयः= उदारहृदयः ।

इसके बाद गुप्तचर ने फिर आकर कहा—राजन्, शत्रुपक्ष में अब जो हो रहा है, उसे सुनिए । वहाँ मंत्री गृध्र ने कहा कि—राजन्, मेघवर्ण तो वहाँ बहुत दिनों तक रहा है, उसे मालूम है कि राजहंस संधि करने के गुणों से युक्त है या नहीं । तब राजा चित्रवर्ण ने मेघवर्ण को बुलाकर पूछा—'कौवे, वह राजा हिरण्यगर्भ कैसा है ? और मंत्री चक्रवाक कैसा है ?' कौवे ने कहा— वह राजा हिरण्यगर्भ युधिष्ठिर के समान उदार और सत्यवादी है । चक्रवाक के समान मंत्री तो कहीं नहीं दिखाई पड़ता । राजा चित्रवर्ण ने कहा यदि ऐसी

बात है तो तुमने उसे कैसे धोखा दिया। हँस कर कौवे ने कहा—राजन्,

'विश्वासप्रतिपन्नानां वञ्चने का विदग्धता ?।
अङ्कमारुह्य सुप्तं हि हत्वा किं नाम पौरुषम्' ॥ ५७ ॥

अन्वयः—विश्वासप्रतिपन्नानाम् वञ्चने का विदग्धता (अस्ति) हि अङ्कमारुह्य सुप्तम् हत्वा किं नाम पौरुषम् ॥ ५७ ॥

विश्वासप्रतिपन्नानाम् = विश्वासभूमिमुपगतानाम्, वञ्चने=प्रतारणे। का विदग्धता=किं चातुर्यम्। अङ्कमारुह्य=क्रोडमासाद्य। सुप्तम् हत्वा = सुप्तजनम् व्यापाद्य। किं नाम पौरुषम्=किं पराक्रमः ॥ ५७ ॥

विश्वास में पड़े हुए लोगों को धोखा दे देने में कौन-सी चतुराई है ? गोद में आकर सोए हुए व्यक्ति को मार डालने में कौन-सी बहादुरी है ॥ ५७ ॥

शृणु देव ! तेन मन्त्रिणाहं प्रथमदर्शने एव विज्ञातः। किन्तु महाशयोऽसौ राजा, तेन मया विप्रलब्धः। तथा चोक्तम्—

तेन=चक्रवाकेण। प्रथमदर्शने = प्रथमप्रत्यक्षे। विज्ञातः = तत्त्वतः ज्ञातः, 'गुप्तचरोऽहम्' इति ज्ञातवान् इत्यर्थः। महाशयः=उदारहृदयः। तेन = उदारहृदयत्वेन। विप्रलब्धः=प्रतारितः।

राजन्, उस मंत्री ने तो मुझे देखते ही देखते पहचान लिया था किन्तु वह राजा अत्यन्त उदार है इसीलिए मैंने उसे धोखा दे दिया। जैसा कि कहा भी गया है—

'आत्मौपम्येन यो वेत्ति दुर्जनं सत्यवादिनम्।
स तथा वञ्च्यते धूर्त्तैर्ब्राह्मणश्छागतो यथा' ॥ ५८ ॥

अन्वयः—यः दुर्जनम् आत्मौपम्येन सत्यवादिनम् वेत्ति स धूर्तैः तथा वञ्च्यते यथा ब्राह्मणः छागतः (वञ्चितः) ॥ ५८ ॥

दुर्जनम्=दुष्टमपि। आत्मौपम्येन=आत्मसदृशेन। सत्यवादिनम्=सत्याचरणम्। वेत्ति=जानाति। वञ्च्यते=प्रतार्यते। छागतः=छागप्रसंगेन ॥ ५८ ॥

जो व्यक्ति अपने समान ही दुष्ट को भी सत्यवादी समझता है वह उसी प्रकार ठगा जाता है जैसे बकरे के प्रसंग में धूर्तों ने ब्राह्मण को ठग लिया था ॥

राजोवाच—कथमेतत् ?। मेघवर्णः कथयति—

राजा ने कहा—यह कैसे ?—मेघवर्ण ने कहा—

कथा ९

अस्ति गौतमस्यारण्ये प्रस्तुतयज्ञः कश्चिद् ब्राह्मणः। स च यज्ञार्थं ग्रामान्तराच्छागमुपक्रीय, स्कन्धे नीत्वा, गच्छन्धूर्तत्रयेणावलोकितः। ततस्ते धूर्ताः—'यद्येष च्छागः केनाप्युपायेन लभ्यते, तदा मतिप्रकर्षो भवती'ति समालोच्य, वृक्षत्रयतले क्रोशान्तरेण तस्य ब्राह्मणस्यागमनं प्रतीक्ष्य, पथि स्थिताः।

प्रस्तुतयज्ञः=यज्ञं कर्तुं प्रस्तुतः। ग्रामान्तरात् = अन्यस्मात् ग्रामात्। छागम्=अजम् (बकरा)। उपक्रीय=मूल्येनादाय। अवलोकितः=दृष्टः। लभ्यते=प्राप्यते। मतिप्रकर्षः = बुद्धिचातुर्यम्। समालोच्य=विचार्य। क्रोशान्तरेण वृक्षत्रयतले=क्रमशः क्रोशान्तरेण त्रयाणाम् वृक्षाणाम् अधःप्रदेशे। प्रतीक्ष्य = प्रतीक्षां कुर्वन्तः। पथि=मार्गे।

गौतमारण्य में एक ब्राह्मण यज्ञ करना चाहता था। वह यज्ञ के लिए किसी गाँव में जाकर एक बकरा खरीदकर उसे कंधे पर रखकर ले आ रहा था कि रास्ते में उसे तीन धूर्तों ने देखा और विचार किया कि अगर किसी तरह यह बकरा मिल जाय तो हम लोगों की बुद्धि की चतुराई समझी जाय। यह सोचकर वह तीनों एक-एक कोस की दूरी पर तीन पेड़ों के नीचे खड़े होकर ब्राह्मण के आने की बाट जोहने लगे।

तत्रैकेन धूर्त्तेन गच्छन्स ब्राह्मणोऽभिहितः—'भो ब्राह्मण! किमिति त्वया कुक्कुरः स्कन्धेनोह्यते'। विप्रेणोक्तं—'नायं श्वा, किन्तु यज्ञच्छागः।' अथान्तरस्थितेनान्येन धूर्त्तेन तथैवोक्तम्। तदाकर्ण्य ब्राह्मणश्छागं भूमौ निधाय, मुहुर्निरीक्ष्य, पुनः स्कन्धे कृत्वा, दोलायमानमतिश्चलितः। यतः—

उह्यते=नीयते। भूमौ निधाय=पृथिव्यां संस्थाप्य। मुहुः=पुनः। निरीक्ष्य=सम्यक्तरत्वेन दृष्ट्वा। दोलायमानमतिः=शकाकुलबुद्धिः। चलितः=अग्रे गतवान्।

तब अपने पास से जाते हुए ब्राह्मण को देखकर एक धूर्त ने उससे कहा—तुम कुत्ते को क्यों अपने कंधेपर ले जा रहे हो? ब्राह्मण ने कहा—यह कुत्ता नहीं है यह तो यज्ञ का बकरा है। फिर थोड़ी दूर स्थित दूसरे धूर्त ने भी वही कहा। तब यह सुन कर ब्राह्मण बकरे को पृथ्वी पर रख कर, बार-बार देखकर और फिर कंधे पर रखकर सन्देह में पड़ा हुआ आगे चला। क्योंकि—

'मतिर्दोलायते सत्यं सतामपि खलोक्तिभिः ।
ताभिर्विश्वासितश्चासौ म्रियते चित्रकर्णवत्' ॥ ५९ ॥

अन्वयः—सतामपि मतिः खलोक्तिभिः सत्यम् दोलायते असौ ताभिः विश्वासितः चित्रकर्णवत् म्रियते ॥ ५९ ॥

सतामपि=सज्जनानामपि । मतिः=बुद्धिः । खलोक्तिभिः=दुष्टवचनैः । सत्यम्=नूनम् । दोलायते=चंचला भवति । ताभिः = दुष्टवचनैः । विश्वासितः = विश्वासमुपनीतः । म्रियते=मृत्युं प्राप्नोति ॥ ५९ ॥

सज्जनों की बुद्धि भी दुष्टों की बातों से चंचल हो जाती है और वे उसकी बातों का विश्वास करके उसी प्रकार मारे जाते हैं जैसे चित्रवर्ण मारा गया था ॥

राजाह—कथमेतत् ? स कथयति—

राजा ने कहा—यह कैसे ? उसने कहा—

कथा १०

अस्ति कस्मिश्चिद्वनोद्देशे मदोत्कटो नाम सिंहः । तस्य सेवकास्त्रयः काको, व्याघ्रो, जम्बुकश्च । अथ तैर्भ्रमद्भिः सार्थभ्रष्टः कश्चिदुष्ट्रो दृष्टः, पृष्टश्च-'कुतो 'भवानागतः सार्थाद् भ्रष्टः' ? । स चात्मवृत्तान्तमकथयत् । ततस्तैर्नीत्वा सिंहायासौ समर्पितः । तेन चाभयवाचं दत्त्वा, 'चित्रकर्ण' इति नाम कृत्वा, स्थापितः ।

वनोद्देशे=वनप्रान्ते । काकः=वायसः । जम्बुकः=शृगालः । भ्रमद्भिः=इतस्ततः विचरद्भिः । सार्थभ्रष्टः=वणिक्संघातच्युतः । आत्मवृत्तान्तम्=स्वकथाम् । अभयवाचम्=प्राणदानम् ।

किसी जंगल में मदोत्कट नाम का एक सिंह था उसके तीन सेवक थे, एक कौवा, दूसरा बाघ और तीसरा गीदड़ । उन तीनों ने घूमते घामते बनियों के संघ से छूटे हुए किसी ऊँट को देखा और पूछा—आप संघ से बिछुड़ कर कहाँ से आ रहे हैं ? इस पर ऊँट ने अपना वृत्तान्त कह सुनाया तब उन तीनों ने उसे ले जाकर सिंह को समर्पित कर दिया । उसने उसे अभयदान देकर उसका नाम चित्रकर्ण रखा और अपने पास रख लिया ।

अथ कदाचित्सिंहस्य शरीरवैकल्याद्भूरिवृष्टिकारणाच्चाहारमलभमानास्ते व्यग्रा बभूवुः । ततस्तैरालोचितम्—चित्रकर्णमेव

यथा स्वामी व्यापादयति तथानुष्ठीयताम्। किमनेन कण्टकभुजास्माकम् ?'।

व्याघ्र उवाच—'स्वामिनाभयवाचं दत्त्वानुगृहीतोऽयं, तत्कथमेवं सम्भवति' ?। काको ब्रूते—'इह समये परिक्षीणः स्वामी पापमपि करिष्यति'। यतः—

शरीरवैकल्यात् = देहास्वास्थ्यात्। भूरिवृष्टिकारणात् = अतिजलपातेन। आहारम्=भोजनम्। अलममानाः=अप्राप्नुवानाः। व्यग्राः=व्याकुलाः। व्यापादयति=हन्ति। अनुष्ठीयताम्=क्रियताम्। कण्टकभुजा=कण्टकभोजिना। अस्माकम् किम्=अस्माकम् किम् प्रयोजनम्। अनुगृहीतः=अनुकम्पया स्वाश्रये रक्षितः। इह समये = शरीरवैकल्यात् अलभ्यभोज्यावसरे। परिक्षोणः = बुभुक्षयातिविपन्नः। पापम्=अनुचिताचरणम्।

एक बार सिंह के अस्वस्थ हो जाने तथा बहुत अधिक पानी बरसने के कारण भोजन न मिलने से वे बहुत व्यग्र हुए। फिर उन सबों ने विचार किया कि ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे स्वामी चित्रकर्ण को ही मारें। इस कांटा खाने वाले से हम लोगों का प्रयोजन ही क्या है ? इस पर व्याघ्र ने कहा कि स्वामी ने अभयदान देकर इस पर कृपा की है अतः ऐसा कैसे हो सकता है ? कौवे ने कहा—इस समय स्वामी भूख से व्याकुल हैं अतः वह पाप कर्म भी कर सकते हैं। क्योंकि—

'त्यजेत्क्षुधार्त्ता महिला स्वपुत्रं,
खादेत्क्षुधार्त्ता भुजगी स्वमण्डम्।
बुभुक्षितः किं न करोति पापं,
क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति' ॥ ६० ॥

अन्वयः—क्षुधार्ता महिला स्वपुत्रं त्यजेत्, क्षुधार्ता भुजगी स्वमण्डम् खादेत्, बुभुक्षितः किं पापम् न करोति (यतः) क्षीणाः नराः निष्करुणाः भवन्ति ॥६०॥

क्षुधार्ता=बुभुक्षया पीडिता। महिला=स्त्री। स्वपुत्रम्=स्वसुतमपि। त्यजेत्=परित्यजति। भुजगी = सर्पिणी। स्वमण्डम् = स्वापत्यम्। खादेत् = भक्षयति। बुभुक्षितः = क्षुधितः। पापम् = पापाचरणम्। क्षीणाः = विपद्ग्रस्ताः। नराः= मनुष्याः। निष्करुणाः=निष्ठुरहृदयाः ॥ ६० ॥

भूख से व्याकुल स्त्री अपने पुत्र को भी छोड़ देती है, और सर्पिणी भूख से व्याकुल होकर अपना अण्डा खा डालती है। भूखा कौन-सा पाप नहीं कर सकता है क्योंकि व्याकुल मनुष्य करुणा से रहित होता है ॥ ६० ॥

अन्यच्च—'मत्तः प्रमत्तश्चोन्मत्तः, श्रान्तः, क्रुद्धो, बुभुक्षितः।
लुब्धो, भीरुस्त्वरायुक्तः, कामुकश्च न धर्मवित्' ॥ ६१ ॥

अन्वयः—मत्तः······कामुकश्च धर्मवित् न भवति ॥ ६१ ॥

मत्तः=गर्वोद्धतः। प्रमत्तः=असावधानः। उन्मत्तः=विक्षिप्तः। श्रान्तः=श्रमविह्वलः। क्रुद्धः=कोपयुक्तः। बुभुक्षितः=क्षुधापीडितः। भीरुः=कातरः। त्वरायुक्तः=सहसा कार्यविधायकः। कामुकः=कामासक्तः। न। धर्मवित्=धर्मज्ञः।

और भी—अभिमानी, असावधान, पागल, थका हुआ, क्रोधी, भूखा, लालची, डरपोक, जल्दबाज और कामी व्यक्ति धर्मज्ञ नहीं होते हैं ॥ ६१ ॥

इति सञ्चिन्त्य सर्वे सिंहान्तिकं जग्मुः। सिंहेनोक्तम्—'आहारार्थं किञ्चित्प्राप्तम् ?' तैरुक्तम्—'देव! यत्नादपि न प्राप्तं किञ्चित् !' सिंहेनोक्तम्—'कोऽधुना जीवनोपायः ?' काको वदति—'देव! स्वाधीनाहारपरित्यागात्सर्वनाशोऽयमुपस्थितः' ? सिंहेनोक्तम्—'अत्राहारः कः स्वाधीनः ? ।' काकः कर्णे कथयति—'चित्रकर्णः' इति। सिंहो भूमिं स्पृष्ट्वा, कर्णौ स्पृशति। अब्रवीच्च—'अभयवाचं दत्त्वा धृतोऽयमस्माभिः, तत्कथमेवं सम्भवति' ?। तथा हि—

संचिन्त्य=विचार्य। सिंहान्तिकम्=सिंहस्य समीपम्। जग्मुः=गतवन्तः। आहारार्थम्=भोजनाय। जीवनोपायः=प्राणधारणस्य उपायः। स्वाधीनाहार-परित्यागात्=निजायत्तभोज्यत्यागात्। सर्वनाशः=अस्माकम् प्राणहानिः। उपस्थितः=संमुखागतः। कः आहारः=कः भोज्यः। स्वाधीनः=निजायत्तः। अभयवाचं दत्वा=प्राणदानस्य वचनं दत्वा। धृतः=स्वाश्रये रक्षितः। एवं = तस्य मारणम्। कथं संभवति=केन प्रकारेण भवितुं शक्नोति।

यह सोच कर सभी सिंह के पास गए। सिंह ने कहा—'क्या भोजन के लिए कुछ मिला ?' उन सबों ने कहा—राजन्, बहुत उपाय करने पर भी कुछ नहीं प्राप्त हुआ। सिंह ने कहा तो अब जीवन का क्या उपाय है ?' कौवे ने कहा—राजन् अपने अधीन रहने वाले भोजन का परित्याग करने से ही यह सर्वनाश उपस्थित हुआ है।' सिंह ने कहा—'यहाँ कौन-सा आहार अपने अधीन है ?' कौवे ने कान में कहा—'चित्रकर्ण'। तब सिंह ने जमीन छूकर कान छुआ

और कहा—हम लोगों ने उसे अभयदान देकर रखा है इसलिए ऐसा कैसे हो सकता है ? क्योंकि—

'न भूप्रदानं, न सुवर्णदानं, न गोप्रदानं, न तथान्नदानम् ।
यथा वदन्तीह महाप्रदानं, सर्वेषु दानेष्वभयप्रदानम्' ॥ ६२ ॥

अन्वयः—सर्वेषु दानेषु यथा अभयप्रदानम् महाप्रदानम् (विज्ञाः) प्रवदन्ति तथा न भूप्रदानम्······तथा न अन्नदानम् ॥ ६२ ॥

सर्वेषु दानेषु=सर्वप्रकारेषु दानविषयेषु । अभयप्रदानम् = प्राणदानम् । महाप्रदानम्=महद्दानम् । प्रवदन्ति=कथयन्ति । भूप्रदानम्=पृथ्वीदानम् ॥ ६२ ॥

पृथ्वीदान, सोने का दान, गोदान तथा अन्नदान उतने बड़े नहीं कहे जाते हैं जितना कि सब दानों में सबसे महान दान अभयदान कहा जाता है ॥ ६२ ॥

अन्यच्च—'सर्वकामसमृद्धस्य अश्वमेधस्य यत्फलम् ।
तत्फलं लभते सम्यग् रक्षिते शरणागते' ॥ ६३ ॥

अन्वयः—सर्वकामसमृद्धस्य अश्वमेधस्य यत्फलम् भवति तत्फलम् शरणागते रक्षिते सम्यक् लभते ॥ ६३ ॥

सर्वकामसमृद्धस्य=सर्वेप्सितपरिपूर्णस्य । अश्वमेधस्य = अश्वमेधनामयज्ञस्य । शरणागते=आश्रयमागते । रक्षिते = परित्राणे कृते सति । सम्यक् = पूर्णरूपेण । लभते=प्राप्नोति ॥ ६३ ॥

और भी—सभी कामनाओं को पूरी करने वाले अश्वमेध यज्ञ करने से जो फल प्राप्त होता है, वह सभी फल शरण में आए हुए की रक्षा करने से भी प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥

काको ब्रूते—'नासौ स्वामिना व्यापादयितव्यः, किन्त्वस्माभिरेव तथा कर्त्तव्यं, यथासौ स्वदेहदानमङ्गीकरोति' ।

काकः=वायसः । ब्रूते=उवाच । असौ=चित्रकर्णः । स्वामिना=मदोत्कटेन । स्वदेहदानम्=निजशरीरसमर्पणम् ।

कौवे ने कहा—'स्वामी उसे मारेंगे नहीं बल्कि हम लोग ऐसा उपाय करेंगे जिससे वह स्वयम् अपने आपको स्वामी को समर्पित कर देगा ।

सिंहस्तच्छ्रुत्वा तूष्णीं स्थितः । ततोऽसौ लब्धावकाशः कूटं कृत्वा, सर्वानादाय सिंहान्तिकं गतः । अथ काकेनोक्तं—'देव !

यत्नादप्याहारो न प्राप्तः, अनेकोपवासक्लिष्टश्च स्वामी, तदिदानीं मदीयमांसमुपभुज्यताम्'। यतः—

तूष्णीम्=मौनम्। लब्धावकाशः=प्राप्तकालः। कूटं कृत्वा=कपटं विधाय। सर्वानादाय=व्याघ्रजम्बुकचित्रकर्णादीन् गृहीत्वा। सिंहान्तिकम्=सिंहसमीपम्। गतः=प्राप्तः। यत्नात् अपि=प्रयत्ने कृतेऽपि। आहारः=भोजनम्। अनेकोपवास-कृशः=चिरकालात् भोज्याभावेन क्षीणः।

सिंह यह सुन कर चुप रह गया। इसके पश्चात् कौवे ने अवसर पाकर षड्यन्त्र करके सभी को लेकर सिंह के पास गया और उसने कहा—'राजन् प्रयत्न करने पर भी भोजन नहीं मिला, आप अनेक उपवासों से बहुत कष्ट में हैं इसलिए इस समय मेरे मांस को खाकर प्राणरक्षा कीजिए। क्योंकि—

'स्वामिमूला भवन्त्येव सर्वाः प्रकृतयः खलु।
समूलेष्वपि वृक्षेषु प्रयत्नः सफलो नृणाम्'॥ ६४॥

अन्वयः—सर्वाः प्रकृतयः खलु स्वामिमूलाः भवन्ति नृणाम् प्रयत्नः समूलेषु वृक्षेषु अपि सफलः (भवति)॥ ६४॥

सर्वाः प्रकृतयः=समस्ताः प्रजाः। स्वामिमूलाः=नृपाश्रयाः। नृणाम्=मनुष्याणाम्। प्रयत्नः=यत्नः। सफलः=समूलात् वृक्षादेव फलाशा भवति॥ ६४॥

सारी प्रजा की जड़ राजा ही होता है और जड़ वाले वृक्ष में किया गया उपाय ही लोगों के लिए फलदायक होता है अर्थात् जब जड़ ही नष्ट हो जायगी तो फल कहाँ से प्राप्त होगा॥ ६४॥

सिंहेनोक्तम्—'भद्र! वरं प्राणपरित्यागो, न पुनरीदृशे कर्मणि प्रवृत्तिः।' जम्बुकेनापि तथोक्तम्। ततः सिंहेनोक्तं—'मैवम्'। अथ व्याघ्रेणोक्तं—'मद्देहेन जीवतु स्वामी।' सिंहेनोक्तं—'न कदाचिदेदमुचितम्'।

वरम्=श्रेष्ठः। प्राणपरित्यागः = मरणम्। ईदृशे कर्मणि=आश्रितस्य मांस-भोजने।

सिंह ने कहा—भद्र, प्राण छोड़ देना तो अच्छा है किन्तु इस प्रकार के कार्य में लगना अच्छा नहीं है। गीदड़ ने भी वैसा ही कहा। तब सिंह ने कहा—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। व्याघ्र ने कहा—'तो स्वामी मेरे शरीर को खाकर अपने जीवन की रक्षा करें।' सिंह ने कहा—'यह ठीक नहीं है।'

अथ चित्रकर्णोऽपि जातविश्वासस्तथैवात्मदेहदानमाह। ततस्तद्वचनात्तेन व्याघ्रेणासौ कुक्षिं विदार्य्य, व्यापादितः, सर्वैर्भक्षितश्च। अतोऽहं ब्रवीमि—'मतिर्दोलायते सत्यम्' इत्यादि॥

जातविश्वासः=जातप्रत्ययः, स्वामी वायसादिवत् मामपि न भक्षयिष्यति इति विश्वस्तः इत्यर्थः। तद्वचनात्=स्वशरीरार्पणवार्ताकथनात्।

फिर विश्वास में आकर चित्रकर्ण ने भी अपने शरीरदान की बात कही। उसकी बात सुनते ही बाघ ने उसके पेट को फाड़ कर मार डाला और सभी ने मिल कर भोजन किया इसीलिए मैं कह रहा हूँ—'सज्जनों की बुद्धि भी चञ्चल हो जाती है' इत्यादि।

ततस्तृतीयधूर्त्तवचनं श्रुत्वा, स्वमतिभ्रमं निश्चित्य छागं त्यक्त्वा, ब्राह्मणः स्नात्वा, गृहं ययौ। छागश्च तैर्धूर्तैर्नीत्वा भक्षितः। अतोऽहं ब्रवीमि—'आत्मौपम्येन यो वेत्ति'—इत्यादि॥ ❀॥

स्वमतिभ्रमम्=स्वबुद्धिमान्द्यम्। निश्चित्य=निर्णीत।

तब तीसरे धूर्त की बात सुनकर अपनी बुद्धि का भ्रम जान कर वह ब्राह्मण बकरे को छोड़ कर स्नान करके घर चला गया और उन धूर्तों ने बकरे को ले जाकर खा डाला। इसीलिए मैं कह रहा हूँ—'जो अपने समान समझता है' इत्यादि।

राजाह—'मेघवर्ण! कथं शत्रुमध्ये त्वया सुचिरमुषितम्?, कथं वा तेषामनुनयः कृतः!'। मेघवर्ण उवाच—'देव! स्वामिकार्यार्थितया, स्वप्रयोजनवशाद्वा किं किं न क्रियते। पश्य—

चिरमुषितम्=बहुकालम् निवासः कृतः। अनुनयः=चाटुकारिता। स्वामिकार्यार्थिना=राजकार्याभिलाषुकेण। स्वप्रयोजनवशात्=स्वार्थंसिद्ध्यर्थं च।

राजा चित्रवर्ण ने कहा—'मेघवर्ण! तुम शत्रुओं के बीच में कैसे बहुत दिन तक रहे और किस प्रकार उन्हें अपना बना रखा।' मेघवर्ण ने कहा—राजन्, स्वामी का कार्य पूरा करने के लिए तथा अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए मनुष्य क्या नहीं करता है। देखिए—

'लोको वहति किं राजन्न मूर्ध्ना दग्धुमिन्धनम्।
क्षालयन्त्यपि वृक्षाङ्घ्रिं नदीवेला निकृन्तति'॥ ६५॥

अन्वयः—हे राजन्, लोकः इन्धनम् दग्धुम् मूर्ध्ना किं न वहति। नदीवेला वृक्षाङ्घ्रिं क्षालयन्त्यपि निकृन्तति॥ ६५॥

राजन्=हे नृप । लोकः=जनः । इन्धनम्= शुष्ककाष्ठम् । दग्धुम्=प्रज्वालयितुम् । मूर्ध्ना=शिरसा । न वहति=न धारयति । नदीवेला=सरित्पूरः । वृक्षाङ्घ्रि=तरुमूलम् । क्षालयन्ती=प्रक्षालनम् कुर्वन्ती । निकृन्तति=उन्मूलयति ॥ ६५ ॥

क्या लोग जलाने वाली लकड़ी को अपने सिर पर रख कर नहीं ले जाते हैं और नदी की धारा वृक्षों की जड़ों (पैरों) को धोकर भी क्या उन्हें काटती नहीं है ? ॥ ६५ ॥

तथा चोक्तम्—'स्कन्धेनापि वहेच्छत्रून् कार्यमासाद्य बुद्धिमान् ।
यथा वृद्धेन सर्पेण मण्डूका विनिपातिताः' ॥ ६६ ॥

अन्वयः—कार्यमासाद्य बुद्धिमान् शत्रून् स्कन्धेनापि वहेत् । यथा वृद्धेन सर्पेण मण्डूकाः विनिपातिताः ॥ ६६ ॥

बुद्धिमान्=प्राज्ञः । कार्यमासाद्य=स्वार्थसिद्धयर्थम् । शत्रून्=अरीन् । वहेत्=धारयेत् । विनिपातिताः=विनाशिताः ॥ ६६ ॥

कहा भी गया है—

काम पड़ जाने पर बुद्धिमान् शत्रु को भी अपने कंधे पर ले जाता है जैसे बूढ़े साँप ने मेढकों को अपने सिर पर रख कर फिर उन्हें मार डाला था ॥६६॥

राजाह—'कथमेतत् ?' मेघवर्णः कथयति—

राजा चित्रवर्ण ने कहा—यह कैसे ? मेघवर्ण ने कहा—

कथा ११

अस्ति जीर्णोद्याने मन्दविषो नाम सर्पः । सोऽतिजीर्णतया स्वाहारमप्यन्वेष्टुमक्षमः सरस्तीरे पतित्वा स्थितः । ततो दूरादेव केनचिन्मण्डूकेन दृष्टः, पृष्टश्च—'किमिति त्वमाहारं नान्विष्यति' ? । सर्पोऽवदत्—'गच्छ भद्र ! किन्ते मम मन्दभाग्यस्य वृत्तान्तप्रश्नेन' ? ततः सञ्जातकौतुकः स च भेकः 'सर्वथा कथ्यताम्' इत्याह । सर्पोऽप्याह—'भद्र ! ब्रह्मपुरवासिनः श्रोत्रियस्य कौण्डिन्यस्य पुत्रो विंशतिवर्षदेशीयः, सर्वगुणसम्पन्नो, दुर्दैवान्मया नृशंसेन दष्टः । ततस्तं सुशीलनामानं पुत्रं मृतमवलोक्य, शोकेन मूर्छितः कौण्डिन्यः पृथिव्यां लुलोठ । अनन्तरं ब्रह्मपुरवासिनः सर्वे बान्धवास्तत्रागत्योपविष्टाः । तथा चोक्तम्—

जीर्णोद्याने=पुरातनोपवने । अतिजीर्णतया=अतिवार्द्धक्येन । आहारमपि=भोजनमपि । अन्वेष्टुम् = उपार्जितुम् । अक्षमः=असमर्थः । नान्विष्यति=अन्वेषणं न करोति । मन्दभाग्यस्य = दैवोपहतकस्य । वृत्तान्तप्रश्नेन = वृत्तान्तज्ञानाय पृच्छाकरणेन । सञ्जातकौतुकः=उद्भूताश्चर्यः । भेकः=मण्डूकः । सर्वथा=अवश्यमेव । कथ्यताम्=उच्यताम् । श्रोत्रियस्य=वेदपाठिनः । विंशतिवर्षदेशीयः=विंशतिवर्षप्रायः । दुर्दैवात्=दुर्भाग्यात् । नृशंसेन=निष्ठुरेण । मूर्च्छितः=विसंज्ञः । लुलोठ=पपात ।

एक उजड़े हुए बगीचे में मन्दविष नाम का एक साँप रहता था । वह बुड्ढा हो जाने के कारण अपना भोजन खोजने में भी असमर्थ हो गया था इसलिए तालाब के किनारे लेटा पड़ा हुआ था । उसे दूर ही से देखकर एक मेढक ने पूछा कि—तुम अपने भोजन को खोज क्यों नहीं करते हो ? साँप ने कहा—'भद्र, जाओ मुझ भाग्यहीन का समाचार पूछने का कष्ट क्यों कर रहे हो ?' तब आश्चर्य में पड़े हुए मेढक ने कहा—'आप अपनी पूरी कहानी अवश्य सुनाइये ।' इस पर साँप ने कहा—'ब्रह्मपुर में रहने वाले वेदपाठी कौण्डिन्य के सभी गुणों से युक्त बीस वर्ष की अवस्था वाले पुत्र को दुर्भाग्य से मुझ निष्ठुर ने काट लिया जिससे सुशील नाम वाले अपने पुत्र को मरा हुआ देख कर कौण्डिन्य शोक से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर लोटने लगा । इसके बाद ब्रह्मपुर के उसके सभी भाई-बन्धु वहाँ आए । जैसा कि कहा भी गया है—

'उत्सवे, व्यसने, युद्धे, दुर्भिक्षे, राष्ट्रविप्लवे ।
राजद्वारे, श्मशाने च यस्तिष्ठति, स बान्धवः' ॥ ६७ ॥

अन्वयः—उत्सवे······सः बान्धवः (अस्ति) ॥ ६७ ॥

उत्सवे=आनन्दपूर्णसमारोहे । व्यसने=विपत्तौ । युद्धे=विग्रहे । दुर्भिक्षे=अन्नसंकटे । राष्ट्रविप्लवे = राज्यक्रान्तौ । राजद्वारे = राजगृहे । यः तिष्ठति = यः सहायको भूत्वा उपस्थितः भवति ॥ ६७ ॥

उत्सव, विपत्ति, युद्ध, दुर्भिक्ष, राष्ट्रविप्लव, राजदरबार और श्मशान भूमि में जो साथ देता है वही भाई-बन्धु कहा जाता है ॥ ६७ ॥

तत्र कपिलो नाम स्नातकोऽवदत्—'अरे कौण्डिन्य ! मूढोऽसि, येनैवं विलपसि' । शृणु—

स्नातकः=वेदव्रतपारंगतः ब्रह्मचारी । मूढोऽसि=अज्ञः प्रतिभासि । विलपसि=रोदिषि ।

वहाँ कपिल नाम के स्नातक ने कहा—अरे कौण्डिन्य तुम बड़े मूर्ख हो, जो इस प्रकार विलाप कर रहे हो । सुनो—

'क्रोडीकरोति प्रथमं यदा जातमनित्यता ।
धात्रीव, जननी पश्चात्, तदा शोकस्य कः क्रमः' ? ॥६८॥

अन्वयः—यदा प्रथमम् धात्रीव अनित्यता क्रोडीकरोति पश्चात् जननी, तदा शोकस्य कः क्रमः ? ॥ ६८ ॥

प्रथमम्=आदौ । जातम्=उत्पन्नम् शिशुम् । धात्रीव = उपमातेव । अनित्यता, क्रोडीकरोति=अङ्के स्थापयति । जननी=माता । शोकस्य=पश्चात्तापस्य । कः क्रमः=कः कालः ? ॥ ६८ ॥

उत्पन्न होने वाले बालक को सबसे पहले अनित्यता ही दाई के समान अपनी गोद में लेती है, फिर माता लेती है अतः शोक करने की क्या आवश्यकता है ? ॥

तथा च—'क्व गताः पृथिवीपालाः ससैन्यबलवाहनाः ।
वियोगसाक्षिणी येषां भूमिरद्यापि तिष्ठति' ॥ ६९ ॥

अन्वयः—ससैन्यबलवाहनाः पृथिवीपालाः क्व याताः येषाम् वियोगसाक्षिणी भूमिः अद्यापि तिष्ठति ॥ ६९ ॥

ससैन्यबलवाहनाः=सेनापौरुषवाहनादिसहिताः । पृथ्वीपालाः=नृपाः । क्व= कुत्र । गताः=प्रस्थिताः । येषां=नृपाणाम् । वियोगसाक्षिणी = विरहसाक्षीभूता । भूमिः=पृथिवी । अद्यापि=इदानीमपि । तिष्ठति=स्थिताऽस्ति ॥ ६९ ॥

सेना, पराक्रम और अपने हाथी-घोड़ों के साथ वे राजा लोग कहाँ चले गए जिनके वियोग की साक्षिणी (गवाह) यह पृथ्वी आज भी पड़ी हुई है ॥ ६९ ॥

तथा च—'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः' ॥ ७० ॥

अन्वयः—जातस्य मृत्युः ध्रुवः मृतस्य च जन्म ध्रुवम् । अद्य अब्दशतान्ते वा प्राणिनाम् मृत्युः ध्रुवः ॥ ७० ॥

जातस्य=शरीरधारिणः । ध्रुवः = निश्चयः । अद्य = अस्मिन्नेव दिने । अब्दशतान्ते=वर्षशतान्ते वा । प्राणिनाम्=शरीरधारिणाम् ॥ ७० ॥

जो पैदा हुआ है उसकी मृत्यु अवश्य होगी और जो मरा है उसका जन्म अवश्य होगा आज अथवा सैकड़ों वर्षों के बाद प्राणियों की मृत्यु निश्चित है ॥७०॥

अपरञ्च—'कायः संनिहितापायः, सम्पदः पदमापदाम् ।
समागमाः सापगमाः, सर्वमुत्पादि भङ्गुरम्' ॥ ७१ ॥

अन्वयः—कायः सन्निहितापायः सम्पदः आपदाम् पदम् समागमाः सापगमाः सर्वम् उत्पादि भंगुरम् ॥ ७१ ॥

कायः=शरीरम् । सन्निहितापायः=विनाशोन्मुखः । सम्पदः = सम्पत्तयः । आपदाम्=विपदाम् । पदम्=स्थानम् । समागमाः=संयोगाः । सापगमाः = विरह-युक्ताः । उत्पादि=जायमानम् । भंगुरम्=विनश्वरम् ॥ ७१ ॥

और भी—शरीर प्रतिक्षण नाशवान है, सम्पत्ति विपत्तियों का स्थान है; मिलन वियोग से पूर्ण है और सभी उत्पन्न होने वाली वस्तुएँ नाश होने वाली हैं ॥

'प्रतिक्षणमयं कायः क्षीयमाणो न लक्ष्यते ।
आमकुम्भ इवाम्भःस्थो विशीर्णः सन्विभाव्यते' ॥ ७२ ॥

अन्वयः—प्रतिक्षणम् क्षीयमाणः अयम् कायः न लक्ष्यते अम्भःस्थः आमकुम्भः इव विशीर्णः सन् विभाव्यते ॥ ७२ ॥

प्रतिक्षणम्=प्रतिपलम् । अयं कायः=देहः । क्षीयमाणः = विनश्वरतां प्राप्य-माणः । न लक्ष्यते = न दृश्यते । अम्भःस्थः=जलस्थितः । आमकुम्भः = अपक्वः घटः । विशीर्णः=प्रस्फुटितः सन् । विभाव्यते=प्रतीयते ॥ ७२ ॥

यह शरीर प्रतिक्षण नष्ट होता रहता है किन्तु दिखाई नहीं पड़ता है लेकिन जैसे पानी में पड़ा हुआ कच्चा घड़ा गल जाने पर दिखाई पड़ता है उसी प्रकार शरीर के नष्ट हो जाने पर ही उसका नाश हो जाना मालूम होता है ॥ ७२ ॥

'आसन्नतरतामेति मृत्युर्जन्तोर्दिने-दिने ।
आघातं नीयमानस्य वध्यस्येव पदे-पदे' ॥ ७३ ॥

अन्वयः—आघातं नीयमानस्य वध्यस्य पदे-पदे इव जन्तोः मृत्युः दिने-दिने आसन्नतरताम् एति ॥ ७३ ॥

आघातम् = वध्यभूमिम् । नीयमानस्य = प्राप्यमाणस्य । वध्यस्य=वधार्हस्य जीवस्य । पदे-पदे=प्रतिपदम् । जन्तोः = प्राणिनः । मृत्युः=मरणम् । दिने-दिने= प्रतिदिवसम् । आसन्नतरताम्=अतिसन्निकटताम् । एति=प्राप्नोति ॥ ७३ ॥

मृत्यु प्रतिदिन प्राणियों के समीप आती जाती है जैसे वधभूमि में ले जाया जाता हुआ प्राणी पद-पद में मृत्यु के सन्निकट होता जाता है ॥ ७३ ॥

यतः—'अनित्यं यौवनं, रूपं, जीवितं, द्रव्यसञ्चयः।
ऐश्वर्यं, प्रियसंवासो, मुह्येत्तत्र न पण्डितः' ॥ ७४ ॥

अन्वयः—यौवनं……प्रियसंवासः अनित्यम् (अतः) पण्डितः तत्र न मुह्येत् ॥

यौवनम्=तारुण्यम्। रूपम्=सौन्दर्यम्। जीवितम् = प्राणितम्। द्रव्यसञ्चयः= धनसंग्रहः। ऐश्वर्यम्=समृद्धिः। प्रियसंवासः=प्रियसमागमः। पण्डितः = विवेकी। न मुह्येत्=मोहं न गच्छेत् ॥ ७४ ॥

जवानी, सुन्दरता, जीवन, धन का संचय, ऐश्वर्य और प्रिय लोगों का समागम अनित्य होते हैं इसलिए विद्वानों को चाहिए कि वे इन विषयों में आसक्त न हों ॥ ७४ ॥

'यथा काष्ठञ्च काष्ठञ्च समेयातां महोदधौ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद्भूतसमागमः ॥ ७५ ॥

अन्वयः—महोदधौ यथा काष्ठम् च काष्ठम् च समेयाताम् समेत्य च व्यपेयाताम् तद्वत् भूतसमागमः (अपि भवति) ॥ ७५ ॥

महोदधौ=महासागरे। समेयाताम्=सम्मिलितौ भवेताम्। समेत्य = संगम्य च। व्यपेयाताम् = वियुक्तौ भवेताम्। तद्वद्=तेनैव प्रकारेण। भूतसमागमः = प्राणिनां संयोगः ॥ ७५ ॥

जैसे समुद्र में एक लकड़ी दूसरी लकड़ी से मिल जाती है और मिलकर पुनः अलग हो जाती है उसी प्रकार प्राणियों का मिलन भी बिछुड़ने के लिए ही होता है ॥ ७५ ॥

'यथा हि पथिकः कश्चिच्छायामाश्रित्य तिष्ठति।
विश्रम्य च पुनर्गच्छेत्तद्वद्भूतसमागमः' ॥ ७६ ॥

अन्वयः—यथा पथिकः…………तद्वत् भूतसमागमः ॥ ७६ ॥

यथा=येन प्रकारेण। पथिकः = पान्थः। छायां = तरुच्छायाम्। आश्रित्य = अवलम्ब्य। तिष्ठति=विश्राम्यति ॥ ७६ ॥

जिस प्रकार राही किसी पेड़ की छाया का आश्रय लेकर उसके नीचे बैठता है और कुछ देर विश्राम करके फिर चला जाता है उसी प्रकार प्राणी भी इस संसार में कुछ देर तक आपस में मिलकर रहते हैं और फिर एक दूसरे को छोड़ कर चल देते हैं ॥ ७६ ॥

अन्यच्च—'पञ्चभिर्निर्मिते देहे, पञ्चत्वं च पुनर्गते।
स्वां स्वां योनिमनुप्राप्ते, तत्र का परिदेवना ?' ॥ ७७ ॥

अन्वयः—पञ्चभिः निर्मिते देहे पुनः च पञ्चत्वं गते स्वां स्वां यानिमनुप्राप्ते सति तत्र का परिदेवना ॥ ७७ ॥

पञ्चभिः=पृथिव्यादिपञ्चमहाभूतैः (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश)। निर्मिते=सङ्घटिते । देहे=शरीरे । पञ्चत्वं गते=मृते । स्वां स्वां = स्वकीयाम् । योनिम्=आदिस्थानम् । अनुप्राप्ते=गते सति । तत्र=अस्मिन् वृत्ते । परिदेवना=विलापः, शोकश्च ॥ ७७ ॥

इस शरीर का निर्माण क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर नाम के पाँच तत्त्वों से हुआ है और मरने के बाद ये सभी तत्त्व अपने-अपने तत्त्वों में फिर मिल जाते हैं अतः इस विषय में शोक करने की क्या आवश्यकता है ? ॥

'यावतः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान्मनसः प्रियान् ।
तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः' ॥ ७८ ॥

अन्वयः—जन्तुः यावतः मनसः प्रियान् सम्बन्धान् कुरुते तावन्तः अस्य हृदये शोकशङ्कवः निखन्यन्ते ॥ ७८ ॥

जन्तुः=प्राणी । मनसः प्रियान्=हृदयस्य प्रियकरान् । अस्य = प्राणिनः । हृदये=मनसि । शोकशङ्कवः=परितापकीलकाः । निखन्यन्ते=आरोप्यन्ते ॥

प्राणी जितना अधिक अपने मन को अच्छे लगने वाले सम्बन्धों को करता चलता है उतना ही वह अपने हृदय में शोक की कीलें धँसाता जाता है अर्थात् एक दिन उन्हीं-उन्हीं प्रिय वस्तुओं का वियोग उसके दुःख का कारण बनता है ॥

'नायमत्यन्तसंवासो लभ्यते येन केनचित् ।
अपि स्वेन शरीरेण, किमुतान्येन केनचित्' ॥ ७९ ॥

अन्वयः—अयम् येन केनचित् अत्यन्तसंवासः न लभ्यते (यदा) स्वेन शरीरेण अपि (न) किमुत अन्येन केनचित् ॥ ७९ ॥

अयम्=प्राणी । येन केनचित्=केनापि सह । अत्यन्तसंवासः = दृढसम्बन्धः, चिरसंयोगश्च । न लभ्यते = न प्राप्यते । स्वेन शरीरेणापि = यदा स्वदेहेनापि नित्यसम्बन्धः न भवति । किमुत=तर्हि । अन्येन केनचित् संसारस्य केनापि सह ॥

इस संसार में किसी भी प्राणी का मिलन चिरकाल तक नहीं हो सकता, यहाँ तक कि उसका अपना शरीर भी उसका नित्य साथ नहीं दे सकता तो दूसरी वस्तुओं की गिनती ही क्या है ? ॥ ७९ ॥

अपि च—'संयोगो हि वियोगस्य संसूचयति सम्भवम् ।
अनतिक्रमणीयस्य जन्म मृत्योरिवागमम्' ॥ ८० ॥

अन्वयः—संयोगः वियोगस्य सम्भवम् संसूचयति, जन्म अनतिक्रमणीयस्य मृत्योः आगमम् इव ॥ ८० ॥

संयोगः=संवासः । वियोगस्य=विरहस्य । संभवम्=उत्पत्तिम् । सूचयति=प्रकटयति । अनतिक्रमणीयस्य=अनुल्लंघनीयस्य । आगमम्=कारणम् । इव ॥८०॥

किसी वस्तु का संयोग ही उससे होने वाले वियोग की सूचना देता है। जैसे किसी प्राणी का जन्म उसकी अवश्यंभावी मृत्यु के आगमन की सूचना देने वाला होता है ॥ ८० ॥

'आपातरमणीयानां संयोगानां प्रियैः सह ।
अपथ्यानामिवान्नानां परिणामोतिदारुणः' ॥ ८१ ॥

अन्वयः—अपथ्यानाम् अन्नानाम् इव प्रियैः सह आपातरमणीयानाम् संयोगानाम् परिणामः अतिदारुणः भवति ॥ ८१ ॥

अपथ्यानाम् = कुभोज्यानाम् । अन्नानाम्=भोज्यपदार्थानाम् इव । आपातरमणीयानाम्=तत्क्षणप्रियकराणाम् । संयोगानाम्=संलभ्मानाम् । परिणामः=फलम् । अतिदारुणः=अतिदुःखदायकः ॥ ८१ ॥

जैसे अपथ्य भोजन ऊपर से देखने में बहुत ही स्वादिष्ट होता है किन्तु उसका अन्तिम परिणाम बहुत ही भयंकर होता है, उसी प्रकार प्रियजनों का समागम देखने में बहुत ही आनन्ददायक होता है किन्तु बियोग होने के कारण उसका फल बहुत ही दुःखदायी होता है ॥ ८१ ॥

अपरञ्च—'व्रजन्ति, न निवर्त्तन्ते स्रोतांसि सरितां यथा ।
आयुरादाय मर्त्यानां तथा राज्यहनी सदा' ॥ ८२ ॥

अन्वयः—सरिताम् स्रोतांसि यथा व्रजन्ति न निवर्तन्ते तथा राज्यहनी मर्त्यानाम् आयुः आदाय सदा व्रजतः न निवर्तन्ते ॥ ८२ ॥

सरिताम्=नदीनाम् । स्रोतांसि=प्रवाहाः । व्रजन्ति=गच्छन्ति, न निवर्तन्ते=न प्रत्यागच्छन्ति । राज्यहनी=रात्रिः दिवसश्च । मर्त्यानाम्=समस्तप्राणिनाम् । आयुः=जीवितसमयम् । आदाय=गृहीत्वा । सदा=सर्वदैव गच्छतः किन्तु पुनः न प्रत्यागच्छतः ॥ ८२ ॥

जैसे आगे जाने वाली नदी की धारा फिर लौट कर पीछे नहीं आती है उसी प्रकार रात और दिन प्राणियों की आयु लेकर सदा आगे बढ़ते ही जाते हैं अर्थात् प्रतिदिन मनुष्य की आयु क्षीण ही होती जाती है ॥ ८२ ॥

'सुखास्वादपरो यस्तु संसारे सत्समागमः ।
स वियोगावसानत्वाद् दुःखानां धुरि युज्यते' ॥ ८३ ॥

अन्वयः—संसारे सुखास्वादपरः यस्तु सत्समागमः स वियोगावसानत्वात् दुःखानाम् धुरि युज्यते ॥ ८३ ॥

संसारे=जगति । सुखास्वादपरः = नितान्तसुखपूर्णः । सत्समागमः = सज्जन-सहवासः । वियोगावसानत्वात्=विरहान्तरत्वात् । दुःखानाम् धुरि = परितापानाम् अग्रे । युज्यते=गण्यते ॥ ८३ ॥

इस संसार में सज्जनों का मिलन अत्यन्त सुख स्वाद का देने वाला कहा जाता है किन्तु उसका भी अन्त वियोग में ही होता है इसलिए वह भी दुःखों की कोटि में सबसे पहले गिना जाता है ॥ ८३ ॥

'अत एव हि नेच्छन्ति साधवः सत्समागमम् ।
यद्वियोगासिलूनस्य मनसो नास्ति भेषजम्' ॥ ८४ ॥

अन्वयः—अतः साधवः सत्समागमम् एव हि न इच्छन्ति । यद् वियोगा-सिलूनस्य मनसः भेषजम् नास्ति ॥ ८४ ॥

अतः=अस्मात्कारणात् । साधवः=सज्जनाः । सत्समागमम् = सत्संगतिम् । न इच्छन्ति = न अभिलषन्ति । यद्वियोगासिलूनस्य = यस्य विरहखड्गच्छिन्नस्य । मनसः=हृदयस्य । भेषजम्=औषधम् । नास्ति=न विद्यते ॥ ८४ ॥

इसीलिए सज्जन लोग इस संसार में सज्जनों का मिलन भी नहीं चाहते हैं; क्योंकि उनके विरहरूपी तलवार से कटे हुए हृदय की कोई दवा ही नहीं होती है ॥

'सुकृतान्यपि कर्माणि राजभिः सगरादिभिः ।
अथ तान्येव कर्माणि, ते चापि, प्रलयं गताः' ॥ ८५ ॥

अन्वयः—सगरादिभिः राजभिः सुकृतानि कर्माणि (कृतानि) तानि कर्माणि एव ते चापि प्रलयं गताः ॥ ८५ ॥

सगरादिभिः=सगरनहुषादिभिः । राजभिः=नृपैः । सुकृतानि कर्माणि=यज्ञादीनि पुण्यकर्माणि । ते चापि=नृपाश्चापि । प्रलयं गताः=विनष्टाः ॥ ८५ ॥

सगर इत्यादि राजाओं ने बहुत से पुण्य कार्यों को किया था किन्तु आज उनके वे पुण्य कर्म तथा वे स्वयं भी नष्ट हो गए । अर्थात् कर्ता और कर्म दोनों का विनाश हो गया ॥ ८५ ॥

'सञ्चिन्त्य सञ्चिन्त्य तमुग्रदण्डं,
मृत्युं मनुष्यस्य विचक्षणस्य ।
वर्षाम्बुसिक्ता इव चर्मबन्धाः,
सर्वे प्रयत्नाः शिथिलीभवन्ति' ॥ ८६ ॥

अन्वयः—तम् उग्रदण्डं मृत्युं संचिन्त्य संचिन्त्य विचक्षणस्य मनुष्यस्य सर्वे प्रयत्नाः वर्षाम्बुसिक्ताः चर्मबन्धाः इव शिथिलीभवन्ति ॥ ८६ ॥

उग्रदण्डम्=अतितीक्ष्णदण्डम् । मृत्युम्=मरणम् । संचिन्त्य संचिन्त्य = संस्मृत्य संस्मृत्य । विचक्षणस्य = कुशलस्य विदुषः इत्यर्थः । मनुष्यस्य = नरस्य । सर्वे प्रयत्नाः=कार्यसिद्धेः सर्वे प्रयासाः । वर्षाम्बुसिक्ताः=वर्षाजलक्लिन्नाः । चर्मबन्धाः= चर्मरज्जुग्रन्थयः । इव=यथा । शिथिलीभवन्ति=शिथिलतां प्राप्नुवन्ति ॥ ८६ ॥

प्राणी को प्राप्त होने वाले मृत्युरूपी महाभयानक दण्ड की बार-बार याद करके बुद्धिमान् मनुष्य के सम्पूर्ण प्रयास वर्षा के जल से भींगे हुए चमड़े के बन्धन के समान ढीले पड़ जाते हैं । अर्थात् बुद्धिमान सांसारिक प्रयत्नों से विमुख हो जाता है ॥ ८६ ॥

'यामेव रात्रिं प्रथमामुपैति गर्भे निवासं नरवीर ! लोकः ।
ततः प्रभृत्यस्खलितप्रयाणः, स प्रत्यहं मृत्युसमीपमेति' ॥ ८७ ॥

अन्वयः—हे नरवीर, लोकः याम् प्रथमाम् रात्रिं गर्भे निवासम् उपैति ततः प्रभृति अस्खलितप्रयाणः सः प्रत्यहम् मृत्युसमीपम् एति ॥ ८७ ॥

नरवीर=राजन् । लोकः = प्राणी । प्रथमाम्=आद्याम् । रात्रिम्=रजनीम् । उपैति=प्राप्नोति । ततः प्रभृति=गर्भनिवासमारभ्य । अस्खलितप्रयाणः=अनवरुद्धगमनः । सः=मनुष्यः । प्रत्यहम्=प्रतिदिनम् । मृत्युसमीपम्=मृत्योः सन्निकटम् । एति=आगच्छति ॥ ८७ ॥

हे राजन्, प्राणी सर्वप्रथम जिस रात्रि को गर्भ में निवास करता है उसी समय से वह अबाध गति से प्रतिदिन मृत्यु के निकट चलता जाता है ॥ ८७ ॥

अथ संसारं विचारय, शोकोऽयमज्ञानस्य प्रपञ्चः । पश्य—

संसारम् विचारय=विश्वगतिम् चिन्तय । अज्ञानस्य=अविवेकस्य ।

इसलिए इस संसार की स्थिति का विचार करो, यह शोक अज्ञान का ही प्रपञ्च है । देखो—

'अज्ञानं कारणं न स्याद् वियोगो यदि कारणम् ।
शोको दिनेषु गच्छत्सु वर्द्धतामपयाति किम्' ॥ ८८ ॥

अन्वयः—यदि (शोकस्य) अज्ञानस्य कारणम् न स्यात् (तस्य) कारणम् वियोगः (स्यात् तर्हि) दिनेषु गच्छत्सु शोकः वर्धताम् किन्तु (सः) अपयाति किम् ॥

यदि शोकः अज्ञानात् नोद्भवति, वियोगाज्जायते तर्हि किञ्चित्कालोपरान्ते, वियोगे विद्यमाने सति शोकोऽयम् वर्धताम् किन्तु स न वर्द्धते अपितु क्षयमुपयाति, अतः शोकस्य कारणम् अज्ञानम् एव ॥ ८८ ॥

यदि अज्ञान शोक का कारण नहीं बल्कि वियोग शोक का कारण है तो कुछ दिनों के बीतने पर शोक को और भी बढ़ना चाहिए। (क्योंकि वियोग तो तब भी रहता है) किन्तु वह बढ़ता नहीं है अपितु धीरे धीरे घटता जाता है। इससे प्रतीत होता है कि वियोग शोक का कारण नहीं बल्कि अज्ञान ही शोक का कारण होता है ॥ ८८ ॥

तद् भद्र ! तद् आत्मानमनुसन्धेहि, शोकचर्चां च परिहर। यतः—

आत्मानम्=स्वात्मतत्त्वम् । अनुसन्धेहि=अन्वेषय । परिहर=परित्यज ।

इसलिए हे भद्र, आत्मा की खोज करो और इस शोक की चर्चा छोड़ो। क्योंकि—

'अकाण्डपातजातानां गात्राणां मर्मभेदिनाम्' ।
गाढशोकप्रहाराणामचिन्तव महौषधम्' ॥ ८९ ॥

अन्वयः—अकाण्डपातजातानाम्······महौषधम् ॥ ८९ ॥

अकाण्डपातजातानाम्=आकस्मिकोपस्थितानाम् । गात्राणाम्=शरीराणाम् । मर्मभेदिनाम्=पीडाप्रदानाम् । गाढशोकप्रहाराणाम् = घनीभूतशोकाघातानाम् । अचिन्तैव=चिन्ताराहित्यमेव । महौषधम्=सफलभैषज्यम् ॥ ८९ ॥

आकस्मिकरूप से असमय में ही आने वाले और शरीर के मर्म का भेदन करने वाले अत्यन्त घने शोक के आघातों की सबसे बड़ी औषधि है उनकी चिन्ता ही छोड़ देना अर्थात् शोक की चिन्ता ही शोक को बढ़ा कर कष्ट देने वाली होती है ॥ ८९ ॥

ततस्तद्वचनं निशम्य, प्रबुद्ध इव कौण्डिन्यः उत्थायाब्रवीत्-तदलमिदानीं गृह-नरक-वासेन, वनमेव गच्छामि ।

तद्वचनम्=कपिलस्योपदेशम् । निशम्य=श्रुत्वा । गृहनरकवासेन=गृहरूप-नरकस्थित्या ।

इसके पश्चात् यह बातें सुन कर सोते से जगे हुए के समान कौण्डिन्य ने उठ कर कहा—तो अब इस घररूपी नरक में रहना हो चुका। अब तो मैं जंगल में जा रहा हूँ

कपिलः पुनराह—

'वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां,
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्त्तते,
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्' ॥ ९० ॥

अन्वयः—रागिणाम् वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति, पञ्चेन्द्रियनिग्रहः एव गृहेऽपि तपः (अत एव) यः अकुत्सिते कर्मणि प्रवर्तते तस्य निवृत्तरागस्य गृहम् तपोवनम् भवति ॥ ९० ॥

रागिणाम्=विषयासक्तहृदयानाम् । वनेऽपि=काननेऽपि, दोषाः = कामक्रोधादिविकाराः । प्रभवन्ति=संप्रजायन्ते । पञ्चेन्द्रियनिग्रहः = नेत्रादीनाम् इन्द्रियाणां संयमः । गृहेऽपि=विकारसंभूतिस्थानेपि । तपः एव=तपस्तुल्यः भवति । यः= पुरुषः । अकुत्सिते = अनिन्दिते, शास्त्रसम्पादिते । कर्मणि=करणीये । प्रवर्तते= संलग्नो भवति । निवृत्तरागस्य=आसक्तिरहितस्य । गृहमपि तपोवनम् एव भवति ॥

कपिल ने फिर कहा—

विषय वासनाओं में लिप्त रहने वाले वन में भी जाकर शोक दुःखादि प्रपञ्चों से छूट नहीं पाते हैं और पाँचों इन्द्रियों का यदि घर पर ही संयम किया जाय तो वही तप हो सकता है । जो शास्त्रविधानों के अनुसार कार्यों में लगा रहता है, उस विषय-वासनारहित के लिए घर ही तपोवन के समान है ॥ ९० ॥

यतः—'दुःखितोऽपि चरेद्धर्मं, यत्र कुत्राश्रमे रतः ।
समः सर्वेषु भूतेषु, न लिङ्गं धर्मकारणम्' ॥ ९१ ॥

अन्वयः—यत्र कुत्राश्रमे रतः दुःखितः अपि सर्वेषु भूतेषु समः धर्मम् चरेत् (यतः) लिङ्गम् धर्मकारणम् न (अस्ति) ॥ ९१ ॥

यत्र कुत्राश्रमे=यस्मिन्कस्मिन्नाश्रमे । रतः = लग्नः । सर्वेषु भूतेषु=सम्पूर्ण-प्राणिषु । समः=समबुद्धिः भूत्वा । धर्मं चरेत्=धर्माचरणम् कुर्यात् । लिङ्गम्= आश्रमचिह्नम् । धर्मकारणम् = धर्मस्य हेतुः । न = न भवति, अपि तु आचार एव हेतुः ॥ ९१ ॥

मनुष्य को चाहिए कि वह चाहे जिस किसी आश्रम में रहे किन्तु सभी प्राणियों के प्रति समान भाव रखता हुआ दुःख के समय भी धर्म का आचरण करता रहे । क्योंकि धर्म का आचरण सभी जगह हो सकता है केवल बाना बना लेना (वेशमात्र ही धारण कर लेना) ही धर्म का कारण नहीं होता ॥ ९१ ॥

उक्तञ्च—'वृत्त्यर्थं भोजनं येषां, सन्तानार्थं च मैथुनम् ।
वाक्सत्यवचनार्थाय, दुर्गाण्यपि तरन्ति ते' ॥ ९२ ॥

अन्वयः—येषाम् भोजनम् वृत्त्यर्थम्, मैथुनम् सन्तानार्थम्, वाक् सत्यवचनार्थाय (भवति) ते दुर्गाणि अपि तरन्ति ॥ ९२ ॥

वृत्यर्थम्=प्राणधारणाय । मैथुनम् = सुरतम् । सन्तानार्थम् = सन्तानोत्पत्त्यर्थम् । वाक्=वाणी । सत्यवचनार्थम्=सत्योद्घाटनप्रयोजनाय । ते=महापुरुषाः । दुर्गाणि=कृच्छ्राणि । तरन्ति=पारं गच्छन्ति ॥ ९२ ॥

जो केवल जीने के लिए ही भोजन करते हैं, संतानोत्पत्ति के लिए ही संभोग करते हैं और वाणी का प्रयोग, सत्य का प्रदर्शन करने के लिए ही करते हैं, वे महापुरुष कठिन विपत्तियों से भी छुटकारा पा जाते हैं ॥ ९२ ॥

तथा हि—'आत्मानदी संयमपुण्यतीर्था,
सत्योदका, शीलतटा, दयोर्मिः ।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र !
न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा' ॥ ९३ ॥

अन्वयः—हे पाण्डुपुत्र, वारिणा च अन्तरात्मा न शुद्धयति अतः आत्मानदी, संयमपुण्यतीर्था, सत्योदका, शीलतटा, दया ऊर्मिः (अस्ति) तत्र अभिषेकं कुरु ॥

महाभारते भीष्मपितामहेनैवमुक्तम्—हे पाण्डुपुत्र = हे युधिष्ठिर ! वारिणा=जलस्नानेन । आत्मानदी = आत्मा एव नदी । संयमपुण्यतीर्था = सर्वेन्द्रियाणाम् वशित्वमेव पवित्रं तीर्थस्थानं यस्यां सा । सत्योदका=सत्यमेव जलम् यस्यां सा । शीलतटा=सदाचारस्वभावः एव तटं यस्याः सा । दयोर्मिः=दया भूतकरुणा एव ऊर्मिः यस्याम् सा । अभिषेकम्=स्नानम् । मनोनिरोध एव आत्मशुद्धेः कारणम् इत्यर्थः ॥ ९३ ॥

जैसा कि—(भीष्मपितामह ने युधिष्ठिर से कहा था—)

यह आत्मा ही नदी है, संयम ही पवित्र तीर्थ स्थान है, सत्य ही जल है, शील ही किनारा है; दया ही लहरें हैं । अतः हे युधिष्ठिर ! इसी आत्मारूपी नदी में स्नान कीजिए तब अन्तरात्मा पवित्र होगा वह केवल जल से नहीं शुद्ध होता ॥

विशेषतश्च—'जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-वेदनाभिरुपद्रुतम् ।
संसारमिममुत्पन्नमसारं त्यजतः सुखम्' ॥ ९४ ॥

अन्वयः—जन्म-मृत्यु............उत्पन्नम् इमम् असारम् संसारम् त्यजतः सुखम् ॥ ९४ ॥

जरा=वृद्धावस्था । व्याधिः=रोगः । उपद्रुतम्=परिप्लुतम् । असारम्=निस्तत्त्वम् । असारसंसारपरित्यागः एव सुखम् इत्यर्थः ॥ ९४ ॥

विशेष करके—

जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा; रोग; पीड़ा आदि से भरे हुए इस तत्त्वरहित संसार का परित्याग करना ही सुख है ॥ ९४ ॥

यतः—'दुःखमेवास्ति, न सुखं, यस्मात्तदुपलक्ष्यते ।
दुःखार्त्तस्य प्रतीकारे सुखसंज्ञा विधीयते' ॥ ९५ ॥

अन्वयः—(अस्मिन् संसारे) दुःखमेव अस्ति, सुखं नास्ति यस्मात् तत् (एव) उपलक्ष्यते । दुःखार्तस्य प्रतीकारे सुखसंज्ञा विधीयते ॥ ९५ ॥

यस्मिन् संसारे । सुखं न=सुखात्मकं किञ्चिदपि नास्ति । यस्मात्=यतः । तत्=दुःखमेव । उपलक्ष्यते=दृश्यते । दुःखार्तस्य=दुःखैः पीडितस्य । प्रतीकारे=दुःखापनयनप्रयत्ने ॥ ९५ ॥

क्योंकि—

इस संसार में सचमुच दुःख है सुख कहीं भी नहीं है इसीलिए दुःख ही दिखाई देता है । किन्तु दुःख से पीड़ित के दुःखों से छुटकारा पाने के प्रयत्न को ही लोग सुख नाम से पुकारते हैं ॥ ९५ ॥

कौण्डिन्यो ब्रूते—'एवमेव' । ततोऽहं तेन शोकाकुलेन ब्राह्मणेन शप्तो, यद्–'अद्यारभ्य मण्डूकानां वाहनं भविष्यसि'–इति । कपिलो ब्रूते 'सम्प्रत्युपदेशासहिष्णुर्भवान्, शोकाविष्टं ते हृदयम् । तथापि कार्यं शृणु'—

एवमेव=सत्यमेव । तेन=ब्राह्मणेन । शोकाकुलेन=शोकव्याकुलेन । असहिष्णुः=ग्रहणे अशक्तः । शोकाविष्टम्=शोकाभिभूतम् । हृदयम्=चित्तम् ।

कौण्डिन्य ने कहा—हाँ, आपका कहना बिल्कुल ठीक है। सर्पने कहा कि 'उसी शोक से व्याकुल कौण्डिन्य ब्राह्मण ने मुझे शाप दिया कि तुम आज से मेढकों का वाहन बनोगे।' तब कपिल ने कहा—'इस समय उपदेश ग्रहण करने में तुम असमर्थ हो। तुम्हारा हृदय शोक से दबा हुआ है फिर भी कर्तव्य कर्म सुनो—

'सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः, स चेत्त्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्त्तव्यः, सतां सङ्गो हि भेषजम्' ॥ ९६ ॥

अन्वयः—सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः (किन्तु) चेत् स त्यक्तुं न शक्यते (तर्हि) स सद्भिः सह कर्तव्यः (यतः) सतां सङ्गः हि भेषजम् ॥ ९६ ॥

सङ्गः = सम्बन्धः। चेत्=यदि। त्यक्तुं न शक्यते=त्याज्यः न भवति। स सद्भिः=सज्जनैः सह सम्बन्धः। कर्तव्यः=करणीयः। सतां सङ्गः=सत्सम्बन्धः। भेषजम्=शोकव्याधेः औषधम् ॥ ९६ ॥

इस संसार में सम्बन्ध का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए और यदि वह पूर्णतः छोड़ा न जा सके तो सज्जनों के साथ करना चाहिए क्योंकि सांसारिक रोगों की एकमात्र दवा सज्जनों का सहवास है ॥ ९६ ॥

अन्यच्च—**'कामः सर्वात्मना हेयः, स चेद्धातुं न शक्यते।**
स्वभार्यां प्रति कर्त्तव्यः, सैव तस्य हि भेषजम् ॥ ९७ ॥

अन्वयः—कामः............औषधम् ॥ ९७ ॥

कामः=विषयेच्छा। हेयः=परित्याज्यः। हातुं न शक्यते। स्वभार्यां प्रति=स्वपत्नीम् प्रति। तस्य=कामोपशमस्य। भेषजम्=औषधम् ॥ ९७ ॥

कामवासना का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए और यदि वह पूर्णतः छोड़ी न जा सके तो उसे अपनी पत्नी तक ही सीमित रखनी चाहिए क्योंकि वही वासना तृप्ति की एक मात्र औषधि है ॥ ९७ ॥

एतच्छ्रुत्वा स कौण्डिन्यः कपिलोपदेशामृतप्रशान्तशोकानलो, यथाविधि दण्डग्रहणं कृतवान्। अतो 'ब्राह्मणशापान्मण्डूकान्वोढुमत्र तिष्ठामि'। अनन्तरं तेन मण्डूकेन गत्वा मण्डूकनाथस्य जालपादनाम्नोऽग्रे तत्कथितम्। ततोऽसावागत्य मण्डूकनाथस्तस्य सर्पस्य पृष्ठमारूढवान्। स च सर्पस्तं पृष्ठे कृत्वा चित्रपदक्रमं बभ्राम।

उपदेशामृतप्रशान्तशोकानल: = उपदेश एव अमृतं पीयूषम् तेन प्रशान्तः मन्दीभूत: शोक: एव अनल: अग्नि: यस्य स: । यथाविधि = यथाशास्त्रम् । दण्डग्रहणम्=संन्यासग्रहणम् । मण्डूकान्=भेकान् । वोढुम्=वहनाय । अत्र = तटाकस्य तटे । पृष्ठमारूढवान्=पृष्ठोपरि आरुरोह । तम्=जालपादम् मण्डूकनाथम् । पृष्ठे कृत्वा=पृष्ठोपरि आरोप्य । चित्रपदक्रमम्=विचित्राभि: गतिभि: ।

यह सुनकर, कपिल के उपदेशरूपी अमृत से कौण्डिन्य की शोकाग्नि शांत हो गई और उसने विधिपूर्वक संन्यास ले लिया । इसलिए ब्राह्मण के शाप से मेढकों को ढोने के लिए मैं यहाँ पड़ा हूँ । इसके पश्चात् उस मेढक ने जाकर यह सारी बातें मण्डूकों के राजा जालपाद से कह सुनायीं । तब वह मेढकों का राजा वहाँ आकर साँप की पीठ पर चढ़ गया और वह साँप उसे पीठ पर लेकर विचित्र गति से उसे इधर-उधर घुमाने लगा ।

परेद्युश्चलितुमसमर्थं तं मण्डूकनाथोऽवदत्-'किमद्य भवान्मन्दगतिः ?' सर्पो ब्रूते-'देव ! आहारविरहादसमर्थोऽस्मि ।

परेद्यु:=द्वितीय दिने । चलितुमसमर्थम्=गन्तुमक्षमम् । तं=मेढकम् । अवदत् = अगदत् । आहारविरहात् = भोजनाभावात् । असमर्थोऽस्मि = गन्तुमशक्तोऽस्मि ।

दूसरे दिन साँप को चलने में असमर्थ देखकर मण्डूकराज ने कहा—'आज आप धीरे-धीरे क्यों चल रहे हैं ।' साँप ने कहा—राजन्, भोजन न मिलने के कारण असमर्थ हो गया हूँ ।

मण्डूकनाथोऽवदत्-'अस्मादाज्ञया मण्डूकान्भक्षय ।' ततः 'गृहीतोऽयं महाप्रसादः' इत्युक्त्वा, क्रमशो मण्डूकान् खादितवान् । अथ निर्मण्डूकं सरो विलोक्य मण्डूकनाथोऽपि तेन खादितः । अतोऽहं ब्रवीमि—'स्कन्धेनापि वहेच्छत्रून्' इत्यादि ।

गृहीत:=स्वीकृत: । अयं महाप्रसाद: = महानुग्रह: । निर्मण्डूकम् = मण्डूकेन रहितम् । सरो विलोक्य=तटाकम् दृष्ट्वा तेन=सर्पेण । खादित:=भक्षितः ।

मण्डूकराज ने कहा—हमारी आज्ञा से मेढकों को खाया करो । तब 'आपकी यह कृपा स्वीकार है' ऐसा कह कर वह मेढकों को खाने लगा और जब तालाब मेढकों से रहित हो गया तो उसने मंडूकराज को भी खा डाला । इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि—'शत्रु को भी कंधे पर ग्रहण करना चाहिए' इत्यादि ।

'देव ! यात्विदानीं पुरावृत्ताख्यानकथनं, सर्वथा सन्धेयोऽयं हिरण्यगर्भो राजा, सन्धीयता'मिति मे मतिः । राजोवाच—'कोऽयं

भवतो विचारः ? यतो जितस्तावदयमस्माभिः । ततो यद्यस्मत्सेवया वसति, तदास्ताम् , नो चेद्विगृह्यताम्' ।

यात्विदानीम् = आस्ताम् तावत् । पुनरावृत्ताख्यानकथनम् = पूर्वघटितघटनावचनम् । मे मतिः = मम बुद्धिः । जितः = स्वाधीनीकृतः । सेवया = दास्येन । आस्ताम्=स्वभूमौ तिष्ठतु । विगृह्यताम् ।

राजन्, अब पुरानी कथाओं का कहना निष्प्रयोजन है अतः संधि करने योग्य राजा हिरण्यगर्भ से संधि करना ही उचित है, यही मेरी राय है । राजा चित्रवर्ण ने कहा—यह तुम्हारा कैसा विचार है ? क्योंकि हम लोगों ने उसे पराजित कर दिया है इसलिए यदि वह हमारी अधीनता में रहना चाहे तो अपने देश में रह सकता है, नहीं तो इससे लड़ना ही चाहिए ।

अत्रान्तरे जम्बूद्वीपादागत्य शुकेनोक्तं—'देव ! सिंहलद्वीपस्य सारसो राजा सम्प्रति जम्बूद्वीपमाक्रम्यावतिष्ठते । राजा ससम्भ्रमं ब्रूते—'किं किम् ?' । शुकः पूर्वोक्तं कथयति ।

गृध्रः स्वगतमुवाच—'साधु रे चक्रवाक मन्त्रिन् ! साधु ।' राजा सकोपमाह—'आस्तां तावदयं, गत्वा तमेव समूलमुन्मूलयामि' । दूरदर्शी विहस्याह—

सम्प्रति=इदानीम् । आक्रम्य=स्वसेनया परिवृत्य । ससम्भ्रमम्=साश्चर्यम् । तमेव=सारसमेव । उन्मूलयामि=विनाशयामि ।

इसी बीच जम्बूद्वीप से आकर सुग्गे ने कहा 'राजन्, सिंहलद्वीप के राजा सारस ने इस समय जम्बूदीप पर चढ़ाई करके घेर लिया है ।' राजा चित्रव अचकचा कर बोल उठा—क्या कहा ? । सुग्गे ने पहिले कही हुई बात फिर दुहरा दी ।

गृद्ध ने मन ही मन कहा—मंत्री चक्रवाक तुम धन्य हो और तुमने अच्छा किया । राजा ने क्रोध से कहा—'अब यहाँ की सारी बातें छोड़ो, अब वहाँ चलकर मैं पहिले उसे जड़मूल से नष्ट कर डालूँगा ।' तब मन्त्री दूरदर्शी ने हँस कर कहा—

'न शरन्मेघवत्कार्यं वृथैव घनगर्जितम् ।
परस्यार्थमनर्थं वा प्रकाशयति नो महान्' ॥ ९८ ॥

अन्वयः—(नरेण) शरन्मेघवत् वृथैव घनगर्जितम् न कार्यम् । महान् परस्यार्थम् अनर्थम् वा न प्रकाशयति ॥ ९८ ॥

शरन्मेघवत् = शरत्कालस्य पयोदवत् । वृथैव = निरर्थकम् । घनगर्जितम्=गम्भीरध्वनिः, स्वकार्यस्य प्रलापः । न कार्यम्=न करणीयम् । महान्=उदारा-

शय: । परस्य=शत्रोरपि । अर्थमनर्थम्=उचितानुचितम् । न प्रकाशयति=स्व-मुखेन न कथयति ॥ ९८ ॥

शरद् ऋतु के बादल के समान व्यर्थ गरजना नहीं चाहिए अर्थात् व्यर्थ ही डींग नहीं हांकनी चाहिए। बड़े लोग दूसरों का जो कुछ भी भला बुरा करते हैं उसे अपने मुँह से नहीं कह सुनाते हैं ॥ ९८ ॥

अपरञ्च—'एकदा न विगृह्णीयाद्बहून् राजाभिघातिनः ।
सदर्पोऽप्युरगः कीटैर्बहुभिर्नाश्यते ध्रुवम्' ॥ ९९ ॥

अन्वयः—राजा एकदा बहुन् अभिघातिन: न विगृह्णीयात् बहुभि: कीटैः सदर्प: अपि उरग: ध्रुवम् नाश्यते ॥ ९९ ॥

एकदा=एकस्मिन् एव काले। अभिघातिनः=आक्रामकान् शत्रून्। न विगृह्णीयात्=न युध्येत् । कीटै: = कृमिभि: । सदर्प:=सगर्व: । उरग: = सर्प: । ध्रुवम्=निश्चितम् ॥ ९९ ॥

एक ही साथ प्रहार करने वाले बहुत से शत्रुओं के साथ राजा को कभी नहीं लड़ना चाहिए। क्योंकि बहुत से कीड़े-मकोड़ों के द्वारा अत्यन्त अभिमानी साँप भी मारा जाता है ॥ ९९ ॥

'देव ! किमितो विना सन्धानं गमनमस्ति ?। यतस्तदास्माकं पश्चात्प्रकोपोऽनेन कर्त्तव्यः ।

इत:=अस्मात् स्थानात् । सन्धानम् बिना=बिना सन्धिम् । पश्चात्=पृष्ठत: । प्रकोप:=आक्रमणम् ।

राजन्, क्या यहाँ से संधि किए बिना ही जाना उचित है ? क्योंकि यह पीछे से हम लोगों पर आक्रमण कर देगा। और भी—

अपरञ्च—'योऽर्थतत्त्वमविज्ञाय क्रोधस्यैव वशं गतः ।
स तथा तप्यते मूढो, ब्राह्मणो नकुलाद्यथा' ॥ १०० ॥

अन्वयः—य: अर्थतत्त्वम् अविज्ञाय क्रोधस्य एव वशं गत: स मूढ: तथा तप्यते यथा नकुलात् ब्राह्मण: (तप्तोऽभवत्) ॥ १०० ॥

य:=पुरुष: । अर्थतत्त्वम्=वस्तुस्थितिम् । अविज्ञाय = अविचार्य । क्रोधस्य वशं गत:=क्रुद्ध्यति । स मूढ:=स मूर्ख: । तप्यते=मनस्तापं प्राप्नोति । नकुलात् ब्राह्मण:=यथा ब्राह्मणः अज्ञानात् नकुलं हत्वा दुःखितोऽभवत् ॥ १०० ॥

जो किसी विषय के तत्व को जाने बिना पहले ही क्रोध के वशीभूत हो जाता है, वह मूर्ख नेवले को मार कर ब्राह्मण के समान ही दुःखी होता है ॥

राजाह—'कथमेतत् ?'। दूरदर्शी कथयति—

राजा ने कहा—यह कैसे ? दूरदर्शी ने कहा—

कथा ११

अस्त्युज्जयिन्यां माधवो नाम विप्रः। तस्य ब्राह्मणी प्रसूता, (सा) बालापत्यस्य रक्षार्थं ब्राह्मणमवस्थाप्य, स्नातुं गता। अथ ब्राह्मणाय राज्ञः पार्वणश्राद्धं दातुमाह्वानमागतम्। तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणोऽपि सहजदारिद्र्यादचिन्तयत्—'यदि सत्वरं न गच्छामि, तदान्यः कश्चिच्छ्रुत्वा श्राद्धं ग्रहीष्यति। यतः—

विप्रः=ब्राह्मणः। प्रसूता=कृतप्रसवा। बालापत्यस्य=स्वशिशोः। रक्षार्थम्=रक्षणाय। ब्राह्मणमवस्थाप्य=स्वपतिम् तत्र नियोज्य। पार्वणश्राद्धं दातुम्=श्राद्धदक्षिणादानाय। आह्वानमागतम्=आमन्त्रणं प्राप्तम्। सहजदारिद्र्यात्=स्वाभाविकाकिञ्चनत्वात्। अचिन्तयत्=व्यचारयत्। सत्वरम्=शीघ्रम्। अन्यः कश्चित्=कश्चिदन्यः ब्राह्मणः। श्राद्धम्=श्राद्धदक्षिणाम् ॥

उज्जयिनी में माधव नाम का एक ब्राह्मण था। उसकी पत्नी को बच्चा हुआ। वह पुत्र की रक्षा करने के लिए वहाँ ब्राह्मण को बिठा कर स्नान करने चली गयी। इसी बीच श्राद्ध का दान लेने के लिए राजा के यहाँ से उस ब्राह्मण को बुलावा आया। यह सुनकर स्वभाव से ही दरिद्र ब्राह्मण ने विचार किया कि यदि शीघ्र ही न जाऊँगा तो कोई दूसरा ब्राह्मण आकर उसे ले लेगा। क्योंकि—

'आदेयस्य प्रदेयस्य, कर्त्तव्यस्य च कर्मणः।
क्षिप्रमक्रियमाणस्य कालः, पिबति तद्रसम्' ॥ १०१ ॥

अन्वयः—आदेयस्य प्रदेयस्य कर्तव्यस्य कर्मणः च क्षिप्रम् अक्रियमाणस्य कालः तत् रसम् पिबति ॥ १०१ ॥

आदेयस्य=ग्रहणयोग्यस्य। प्रदेयस्य=दानस्य; कर्तव्यस्य कर्मणः = करणीयस्य कार्यस्य। क्षिप्रम्=शीघ्रम्। अक्रियमाणस्य=न कृतस्य। कालः = समयम्। तस्य रसम्=तत्त्वम्। पिबति=पानं करोति, विनाशयतीति भावः ॥ १०१ ॥

लेने, देने तथा करने योग्य काम करने में शीघ्रता न करने के कारण समय उसके रस को पी जाता है अर्थात् उचित समय के बीत जाने पर काम बिगड़ जाता है ॥ १०१ ॥

किन्तु बालकस्यात्र रक्षको नास्ति । तत्किं करोमि ? । यातु । चिरकालपालितमिमं नकुलं पुत्रनिर्विशेषं बालकरक्षायां व्यवस्थाप्य गच्छामि । तथा कृत्वा गतः । ततस्तेन नकुलेन बालकसमीपमागच्छन् कृष्णसर्पो दृष्टो, व्यापाद्य कोपात्खण्डं खण्डं कृत्वा, भक्षितश्च । ततोऽसौ नकुलो ब्राह्मणमायान्तमवलोक्य, रक्तविलिप्तमुखपादः, सत्वरमुपगम्य, तच्चरणयोर्लुलोठ । ततः स विप्रस्तथाविधं तं दृष्ट्वा 'मम बालकोऽनेन खादित' इत्यवधार्य नकुलं व्यापादितवान् । अनन्तरं यावदुपसृत्यापत्यं पश्यति ब्राह्मणस्तावद्बालकः सुस्थः स्वपिति, सर्पश्च व्यापादितस्तिष्ठति । ततस्तमुपकारकं नकुलं निरीक्ष्य, भावितचेताः स ब्राह्मणः परं विषादमगमत् । अतोऽहं ब्रवीमि—'योऽर्थतत्त्वमविज्ञाय'—इत्यादि ॥

चिरकालात् पालितम्=बहुदिनात् रक्षितम् । पुत्रनिर्विशेषम् = पुत्रतुल्यम् । बालकरक्षायाम्=शिशुरक्षणार्थम् । व्यवस्थाप्य=नियोज्य । आयान्तम् = आगच्छन्तम् । रक्तविलुप्तमुखपदः=रक्तरञ्जितमुखचरणः । सत्वरमुपगम्य=शीघ्रमेव गत्वा । तथाविधम् = रक्तरञ्जितमुखचरणम् । अवधार्य = निश्चित्य । उपसृत्य= समीपं गत्वा । अपत्यं = बालकम् । सुस्थः = निश्चिन्तः । निरीक्ष्य = विचार्य । भावितचेताः=भावपूर्णहृदयः, खिन्न इत्यर्थः । विषादमगमत्=दुःखितोऽभूत् ।

किन्तु यहाँ बालक की रखवाली करने वाला कोई नहीं है । तो क्या करूँ ? अच्छा; तो पुत्र के समान ही बहुत दिनों से पाले-पोसे गये इस नेवले को ही बालक की रक्षा में नियुक्त करके चला जाऊँ । ऐसा करके वह चला गया । इसके बाद उस नेवले ने बालक के पास आते हुए एक काले साँप को देखा और क्रोध में आकर उसे मार डाला तथा टुकड़े-टुकड़े करके खा डाला । फिर नेवला ब्राह्मण को आते हुए देख कर रक्त में सने हुए मुँह तथा पंजों को लिए हुए उसके चरणों पर लोटने लगा । उस ब्राह्मण ने नेवले को इस प्रकार देख कर यह निश्चय कर लिया कि इसने मेरे बच्चे को मार डाला है अतः उसने नेवले को भी मार डाला । इसके पश्चात् उसने घर में जाकर देखा तो बालक सकुशल सोया है और साँप मरा हुआ पड़ा है तब वह ब्राह्मण अपने प्रति उपकार करने वाले उस नेवले को देखकर अनेक भावनाओं से पूर्ण होकर अत्यन्त दुःखी हुआ । इसीलिए मैं कह रहा हूँ—'जो तत्त्व को समझे बिना इत्यादि ।'

अपरञ्च—'कामः, क्रोधस्तथा मोहो, लोभो, मानो, मदस्तथा ।
षड्वर्गमुत्सृजेदेनमस्मिंस्त्यक्ते सुखी नृपः' ॥ १०२ ॥

अन्वयः—कामः·········षड्वर्गम् एनम् उत्सृजेत् अस्मिन् त्यक्ते नृपः सुखी भवेत् ।। १०२ ।।

मानः = गर्वः । षड्वर्गम् = कामादिशत्रुषड्वर्गम् । उत्सृजेत् = परित्यजेत् । अस्मिन्=कामादिषड्वर्गे ।। १०२ ।।

और भी—राजा को चाहिए कि वह काम, क्रोध; लोभ; मोह, मान तथा मद नाम के छः शत्रुओं का परित्याग कर दे क्योंकि इसे छोड़ने पर ही वह सुखी हो सकता है ।। १ २ ।।

राजाह—'मन्त्रिन् ! एष ते निश्चयः ? ।' मन्त्री ब्रूते—'एवमेव' । यतः—

राजा ने कहा—'मंत्री, क्या तुम्हारा यही निश्चय है ?' मंत्री ने कहा—हाँ यही क्योंकि—

'स्मृतिस्तत्परतार्थेषु, वितर्को, ज्ञाननिश्चयः ।
दृढता, मन्त्रगुप्तिश्च, मन्त्रिणः परमो गुणः' ॥ १०३ ॥

अन्वयः—अर्थेषु तत्परता, स्मृतिः, वितर्कः, ज्ञाननिश्चयः, दृढता, मन्त्रगुप्तिः च मन्त्रिणः परमः गुणः अस्ति ।। १०३ ।।

अर्थेषु=कर्तव्यकार्येषु । तत्परता=तत्संपादने एकचित्तता । स्मृतिः=स्मरण-शक्तिः । वितर्कः=कर्तव्याकर्तव्ये ऊहापोहः । ज्ञाननिश्चयः = दृढज्ञानम् । दृढता= स्वकार्ये दृढस्थितिः । मन्त्रगुप्तिः=मन्त्ररक्षा । परमः=उत्कृष्टः ।। १०६ ।।

स्मरण शक्ति, काम में संलग्नता, किसी विषय का पूर्ण विमर्श करना, ज्ञान का निश्चय, दृढ़ता और मंत्रणा को छिपाना—यह छः मन्त्रियों के श्रेष्ठ गुण होते हैं ।। १०३ ।।

तथा च—'सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणुते हि विमृश्य कारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः' ।।

अन्वयः—सहसा क्रियाम् न विदधीत, अविवेकः परमापदाम् पदम्, गुणलुब्धाः सम्पदः स्वयमेव विमृश्य कारिणम् वृणुते हि ।। १०४ ।।

सहसा=झटिति, अविचार्य । क्रियाम् = कार्यम् । न विदधीत = न कुर्यात् । अविवेकः=अविचारः । परमापदाम्=अत्युत्कृष्टानाम् विपदाम् । पदम् = स्थानम् । गुणलुब्धाः=गुणप्रियाः । विमृश्य कारिणम् = विविच्य कार्यशीलम् । सम्पदः= श्रियः । वृणुते=भजन्ते । हि निश्चये ।। १०४ ।।

और भी—किसी काम को बिना विचारे नहीं करना चाहिए क्योंकि अविचार ही बहुत बड़ी आपत्तियों का कारण होता है। गुणों को चाहने वाली सम्पत्तियाँ विवेकी पुरुषों को स्वयम् ग्रहण करती हैं ॥ १०४ ॥

तद्देव ! यदीदानीमस्मद्वचनं क्रियते, तदा सन्धाय गम्यताम्'। यतः—

इसलिए हे राजन्, यदि आप इस समय हमारी बात मानें तो सन्धि करके यहाँ से चले चलिए। क्योंकि—

'यद्यप्युपायाश्चत्वारो निर्दिष्टाः साध्यसाधने।
संख्यामात्रं फलं तेषां, सिद्धिः साम्नि व्यवस्थिता' ॥१०५॥

अन्वयः—यद्यपि साध्यसाधने चत्वारः उपायाः निर्दिष्टाः किन्तु तेषाम् संख्यामात्रम् फलम् सिद्धिः साम्नि व्यवस्थिता ॥ १०५ ॥

यद्यपि साध्यसाधने=कर्तव्यसाधने। चत्वारः उपायाः=सामदामदण्डभेदाः। निर्दिष्टाः=निहिताः। तथापि तेषाम्=उपायानाम्। संख्यामात्रम् फलम्=संख्यापूर्तिः एव परिणामः। वस्तुतः सिद्धिः=कर्तव्यपूर्तिः। साम्नि = सामाख्ये उपाये। व्यवस्थिता=स्थिता ॥ १०५ ॥

यद्यपि कार्यसिद्धि के लिए साम, दान, दण्ड, भेद—नाम के चार उपाय बताए गए हैं किन्तु उनमें तीन की गणना तो संख्या पूरी करने के लिए ही है। वास्तव में कार्य की सिद्धि तो 'साम' से ही होती है ॥ १०५ ॥

राजाह—'कथमेवं सत्वरं सम्भाव्यते'?। मन्त्री ब्रूते—'देव! सत्वरं भविष्यति'। यतः—

राजा ने कहा—तो यह संधि इतनी जल्दी कैसे हो सकती है?, मंत्री ने कहा—'राजन्, शीघ्र ही होगी।' क्योंकि—

'मृद्घटवत्सुखभेद्यो, दुःसन्धानश्च दुर्जनो भवति।
सुजनस्तु कनकघटवद् दुर्भेद्यश्चाशु सन्धेयः' ॥ १०६ ॥

अन्वयः—दुर्जनः मृद्घटवत् सुखभेद्यः दुःसन्धानः च भवति किन्तु सुजनस्तु कनकघटवत् दुर्भेद्यः आशु सन्धेयः च भवति ॥ १०६ ॥

दुर्जनः=दुष्टः। मृद्घटवत्=मृत्कलशवत्। सुखभेद्यः=सारल्येन भेदनीयः। दुःसन्धानः=काठिन्येन संधेयः। सुजनः=सज्जनः। कनकघटवत्=सुवर्णकलशवत्। दुर्भेद्यः=कठिनतया भेदनीयः। आशु=शीघ्रमेव। सन्धेयः=संधियोग्यः ॥१०६॥

जैसे मिट्टी का घड़ा आसानी से टूट सकता है किन्तु कठिनाई से जोड़ा जा सकता है उसी प्रकार दुष्टों की सन्धि मुश्किल से होती है किन्तु होकर भी वह आसानी से टूट जाती है और जैसे सोने का घड़ा कठिनाई से टूट सकता है किन्तु आसानी से जोड़ा जा सकता है उसी प्रकार सज्जनों की सन्धि सरलता से होती है जिसका टूटना बहुत कठिन होता है ॥ १०६ ॥

'अज्ञः सुखमाराध्यः, सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति' ॥ १०७ ॥

अन्वयः—अज्ञः सुखम् आराध्यः विशेषज्ञः सुखतरमाराध्यते ज्ञानलवदुर्विदग्धम् तम् नरम् ब्रह्मापि न रञ्जयति ॥ १०७ ॥

अज्ञः=मूर्खः । सुखम्=सारल्येन । आराध्यः=स्वानुकूल्यः । विशेषज्ञः=विद्वान् । सुखतरम्=आशु । आराध्यते=अनुकूलयितुम् शक्यते । ज्ञानलवदुर्विदग्धम्=स्वल्पज्ञानोन्मत्तम् । ब्रह्माऽपि=प्रजापतिरपि । तं नरं=तं मनुष्यम् । न रञ्जयति=अनुकूलयितुं न शक्नोति ॥ १०७ ॥

मूर्ख को सरलता से वश में किया जा सकता है, विद्वान् को और भी सरलता से अपने अनुकूल बनाया जा सकता है, किन्तु थोड़े से ज्ञान पर अभिमान करने वाले व्यक्ति को ब्रह्मा भी नहीं प्रसन्न कर सकते हैं ॥ १०७ ॥

'विशेषतश्चायं धर्मज्ञो राजा, 'सर्वज्ञो मन्त्री च । ज्ञातमेतन्मया पूर्वं मेघवर्णवचनात्तत्कृतकार्यसन्दर्शनाच्च' । यतः—

विशेषकर यह राजा अत्यन्त धार्मिक और मंत्री बड़ा ज्ञानी है । यह मैंने मेघवर्ण के कथनों और उसके कार्यों को देखकर पहिले ही समझ लिया था । क्योंकि—

'कर्मानुमेयाः सर्वत्र परोक्ष-गुण-वृत्तयः ।
तस्मात्परोक्षवृत्तीनां फलैः कर्मानुभाव्यते' ॥ १०८ ॥

अन्वयः—परोक्षगुणवृत्तयः सर्वत्र कर्मानुमेयाः तस्मात् परोक्षवृत्तीनाम् कर्म फलैः अनुभाव्यते ॥ १०८ ॥

परोक्षगुणवृत्तयः=अप्रत्यक्षगुणव्यापाराः । कर्मानुमेयाः=कर्मणैव अनुमान्याः । परोक्षवृत्तीनाम्=अप्रत्यक्षव्यापाराणाम् । कर्म=कर्तव्यम् । फलैः=परिणामैः । अनुभाव्यते=ज्ञायते ॥ १०८ ॥

आँखों से ओझल रहने वाले मनुष्य के गुण और स्वभाव उसके कार्यों द्वारा ही जाने जाते हैं । इसलिए परोक्ष-वृत्तियों वाले मनुष्यों के कार्य उसके फल द्वारा ही अनुमान किए जाते हैं ॥ १०८ ॥

राजाह-'अलमुत्तरोत्तरेण, यथाभिप्रेतमनुष्ठीयताम्'। एतन्मन्त्रयित्वा गृध्रो महामन्त्री-'तत्र यथार्हं कर्त्तव्यम्' इत्युक्त्वा, दुर्गाभ्यन्तरं चलितः। ततः प्रणिधिबकेनागत्य राज्ञो हिरण्यगर्भस्य निवेदितं-'देव ! सन्धि कर्तुं महामन्त्री गृध्रोऽस्मत्समीपमागच्छति'। राजहंसो ब्रूते-'मन्त्रिन्! पुनरभिसन्धिना केनचिदत्रागमनम् ?'। सर्वज्ञो विहस्याह-'देव ! न शङ्कास्पदमेतत्। यतोऽसौ महाशयो, दूरदर्शी ! अथवा स्थितिरियं मन्दमतीनाम्, कदाचिच्छङ्कैव न क्रियते, कदाचित्सर्वत्र शङ्का ?'।

तथा हि—

अलम्=निष्प्रयोजनम्। उत्तरोत्तरेण=वादविवादेन। अभिप्रेतम् = रुचितम्। अनुष्ठीयताम्=क्रियताम्। तत्र=सन्धिविधाने। यथार्हम् = यथोचितम्। अभिसन्धिना=कपटेन। शङ्कास्पदम्=शंकायोग्यः। महाशयः = उदारहृदयः। मन्दमतीनाम्=अविवेकिनाम्। स्थितिः=प्रकृतिः।

राजा ने कहा—यह वाद-विवाद व्यर्थ है इसलिए आपको जैसा अच्छा लगे वैसा ही कीजिए। यह सलाह करके महामन्त्री गृद्ध ने कहा—'इस विषय में जैसा उचित होगा वैसा ही किया जायगा' ऐसा कह कर वह किले के भीतर चला गया। तब गुप्तचर बगुले ने आकर राजा हिरण्यगर्भ से निवेदन किया कि राजन्, 'महामंत्री गृद्ध हमलोगों के पास संधि करने के लिए आ रहे हैं।' राजहंस ने कहा कि 'मन्त्रिन्, यह दुष्ट गृद्ध किसी छल की भावना से आता होगा ?' सर्वज्ञ ने हँस कर कहा—'राजन् यहाँ शंका करने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि मंत्री गृद्ध अत्यन्त उदार स्वभाव का है। और मन्दबुद्धि वालों की स्थिति ही यही होती है, कभी तो वह शंका ही नहीं करते और कभी सब जगह शंका करने लगते हैं। जैसा कि—

'सरसि बहुशस्ताराच्छायेक्षणात्परिवञ्चितः,
कुमुदविटपान्वेषी हंसो निशास्वविचक्षणः।
न दशति पुनस्ताराशङ्की दिवापि सितोत्पलं,
कुहुकचकितो लोकः सत्येऽप्यपायमपेक्षते'॥ १०९॥

अन्वयः—निशासु कुमुदविटपान्वेषी अविचक्षणः हंसः सरसि ताराच्छायेक्षणात् बहुशः परिवञ्चितः दिवापि ताराशङ्की पुनः सितोत्पलम् न दशति (तथैव) कुहुकचकितः लोकः सत्ये अपि अपायम् अपेक्षते॥ १०९॥

निशासु=रात्रौ । कुमुदविटपान्वेषी=कुमुदवल्ल्यन्वेषणपरः । अविचक्षणः=बुद्धिरहितः । हंसः=मरालः । सरसि=तडागे । ताराच्छायेक्षणात्=तारकाप्रतिविम्बदर्शनात् । बहुशः=अनेकधा । परिवञ्चितः = छलितः सन् । दिवापि=दिनेऽपि । ताराशङ्की=तारकाशङ्कायुक्तः सः=हंसः । पुनः=भूयः । सितोत्पलम्=सितकमलम् । न दशति=न भुङ्क्ते । कुहुकचकितः = कपटव्यवहारेण वञ्चितः । लोकः=जनः । सत्येऽपि=सत्ये विषयेऽपि । अपायम्=विघ्नम् । अपेक्षते=आशङ्कते ॥

रात्रि के समय कुमुदनी की खोज करने वाला हंस तालाब में बहुत से तारों की छाया देख कर धोखा खा जाता है अर्थात् उसे कुमुद समझ कर बार-बार उसके पास जाता और निराश हो जाता है, किन्तु वही तारों की शंका में पड़ा हुआ राजहंस दिन में सफेद कमल को भी नहीं भक्षण करता क्योंकि कपटव्यवहारों से धोखा खाए हुए लोग सच्ची वस्तु में भी अनिष्ट की शंका करते हैं ॥

'दुर्जनदूषितमनसः सुजनेष्वपि नास्ति विश्वासः ।
बालः पायसदग्धो दध्यपि फूत्कृत्य भक्षयति' ॥ ११० ॥

अन्वयः—दुर्जनदूषितमनसः विश्वासः सुजनेष्वपि नास्ति (यथा) पायसदग्धः बालः दध्यपि फूत्कृत्य भक्षयति ॥ ११० ॥

दुर्जनदूषितमनसः=दुष्टेन परिवञ्चितस्य । विश्वासः=प्रत्ययः । सुजनेष्वपि=सज्जनेष्वपि । पायसदग्धः = दुग्धसिद्धौदनदग्धः । बालः = बालकः । फूत्कृत्य = सफूत्कारम् । भक्षयति=अत्ति ॥ ११० ॥

जिनका हृदय दुष्टों के व्यवहार से दूषित हो जाता है वे सज्जनों के व्यवहार पर भी विश्वास नहीं करते । दूध का (खीर का) जला हुआ बालक दही को भी फूँक-फूँक कर खाता है ॥ ११० ॥

तद् देव ! यथाशक्ति तत्पूजार्थं रत्नोपहारादिसामग्री सुसज्जीक्रियताम् । तथानुष्ठिते सति स गृध्रो मन्त्री दुर्गद्वाराच्चक्रवाकेणोपगम्य, सत्कृत्यानीय, राजदर्शनं कारितो, दत्तासने चोपविष्टः । चक्रवाक उवाच—मन्त्रिन् ! युष्मदायत्तं सर्वं, स्वेच्छयोपभुज्यतामिदं राज्यम्' । राजहंसो ब्रूते—'एवमेव' । दूरदर्शी कथयति—'एवमेवैतत्, किन्त्विदानीं बहुप्रपञ्चवचनं निष्प्रयोजनम्' । यतः—

तत्पूजार्थम् = मंत्रिस्वागतार्थम् । उपगम्य = उपस्थाय । सत्कृत्य = सत्कारं कृत्वा । बहुप्रपञ्चवचनम्=अनेकप्रशंसावाक्यविस्तारः । निष्प्रयोजनम् = व्यर्थम् ।

इसलिए हे राजन्, उसका सत्कार करने के लिए यथाशक्ति रत्न आदि भेंट की सामग्री तैयार कराइए। इस प्रकार की व्यवस्था हो जाने पर मंत्री चक्रवाक ने किले के द्वार पर जाकर मंत्री गृद्ध को बड़े सम्मान के साथ लाकर राजा का दर्शन कराया और गृद्ध दिए हुए आसन पर बैठ गया। चक्रवाक ने कहा— 'मंत्री, यह सब कुछ अब तुम्हारे अधीन है। अतः अपनी इच्छा के अनुसार इस राज्य का उपभोग कीजिए।' राजहंस ने कहा—यह बिल्कुल ठीक है? दूरदर्शी गृद्ध ने कहा— यह तो ठीक है किन्तु इस समय इस प्रकार की प्रपञ्च की बातें करना व्यर्थ है। क्योंकि—

'लुब्धमर्थेन गृह्णीयात्, स्तब्धमञ्जलिकर्मणा।
मूर्खं छन्दानुरोधेन, याथातथ्येन पण्डितम्' ॥ १११ ॥

अन्वयः—अर्थेन लुब्धम्, अञ्जलिकर्मणा स्तब्धम्, छन्दानुरोधेन मूर्खम्, याथातथ्येन पण्डितम् गृह्णीयात् ॥ १११ ॥

अर्थेन=धनप्रदानेन। लुब्धम्=धनाभिलाषिणम्। अञ्जलिकर्मणा=प्रार्थनया। स्तब्धम्=गर्वोन्मत्तम्। छन्दानुरोधेन=अनुकूलव्यवहारेण। याथातथ्येन=सत्य-कथनेन, गृह्णीयात्=स्वानुकूल्यम् कुर्यात् ॥ १११ ॥

लालची को धन से, अभिमानी को हाथ जोड़ कर, मूर्ख को उसके अनुसार काम करके और बुद्धिमान को सच्ची बातें कह कर अपने अनुकूल बना लेना चाहिए ॥ १११ ॥

अन्यच्च—'सद्भावेन हरेन्मित्रं, सम्भ्रमेणं तु बान्धवान्।
स्त्रीभृत्यौ दान-मानाभ्यां, दाक्षिण्येनेतराञ्जनान्' ॥११२॥

अन्वयः—मित्रम् सद्भावेन, बान्धवान् तु सम्भ्रमेण स्त्रीभृत्यौ दानमाना-भ्याम्, इतरान् जनान् दाक्षिण्येन हरेत् ॥ ११२ ॥

मित्रम्=सुहृदम्। सद्भावेन=सौहार्दन। बान्धवान्=स्वगोत्रजान्। सम्भ्र-मेण=आदरातिशयेन। इतरान् जनान्=अन्यान् लोकान्। दाक्षिण्येन = आनु-कूल्येन। हरेत्=अनुरञ्जयेत् ॥ ११२ ॥

और भी—सद्भाव से मित्रों को, सम्मान से बन्धुओं को, दान तथा मान से स्त्री और सेवक को और उदारता से अन्य लोगों को अपने अनुकूल बनाना चाहिए ॥ ११२ ॥

'तदिदानीं सन्धातुं गम्यताम्। महाप्रतापश्चित्रवर्णो राजा।'
चक्रवाको ब्रूते—'यथा सन्धानं कार्यं, तदप्युच्यताम्'। राजहंसो ब्रूते—'कति प्रकाराः सन्धीनां सम्भवन्ति'?। गृध्रो ब्रूते—कथयामि। श्रूयताम्'—

सन्धातुं=सन्धिकरणार्थम् । गम्यताम्=चित्रवर्णमनुगम्यताम् । महाप्रताप: = महापराक्रमः । यथा=येन प्रकारेण । सन्धानम् कार्यम्=सन्धि: विधेय: ।

इसलिए इस समय सन्धि करने के लिए राजा चित्रवर्ण के पास चलिए। चक्रवाक ने कहा—'जिस प्रकार संधि करनी होगी उसे भी बताइए।' राजहंस ने कहा—'सन्धि कितने प्रकार की होती है?' गृध्र ने कहा—'कह रहा हूँ' सुनिये—

'बलीयसाभियुक्तस्तु नृपो नान्यप्रतिक्रियः।
आपन्नः, सन्धिमन्विच्छेत्कुर्वाणः कालयापनम्' ॥ ११३ ॥

अन्वयः—बलीयसाभियुक्तः नान्यप्रतिक्रियः आपन्नः नृपः कालयापनम् कुर्वाणः सन्धिम् अन्विच्छेत् ॥ ११३ ॥

बलीयसाभियुक्त:=बलवता शत्रुणाक्रान्त: । नान्यप्रतिक्रिय:=नान्योपाय: । आपन्न:=विपत्तिमुपगत: । कालयापनम्=समययापनम् । कुर्वाण:=कुर्त्तुमिच्छु: । सन्धिम्=सन्धानम् । अन्विच्छेत्=अभिलषेत् ॥ ११३ ॥

बलवान् शत्रु से आक्रान्त होने पर जब कोई उपाय न रह जाय तो समय काटने के लिए उस विपत्ति में पड़े हुए राजा को शत्रु से सन्धि कर लेनी चाहिए'॥

'कपाल, उपहारश्च, सन्तानः, सङ्गतस्तथा।
उपन्यासः, प्रतीकारः, संयोगः, पुरुषान्तरः ॥ ११४ ॥
अदृष्टनर, आदिष्ट, आत्मादिष्ट, उपग्रहः।
परिक्रयस्तथोच्छिन्नस्तथा च परभूषणः ॥ ११५ ॥
स्कन्धोपनेयः सन्धिश्च, षोडशैते प्रकीर्तिताः।
इति षोडशकं प्राहुः सन्धिं सन्धिविचक्षणाः' ॥ ११६ ॥

अन्वयः—कपाल........षोडशकम् संधिम् प्राहुः ॥ ११४–११६ ॥

कपाल, उपहार, सन्तान, संगत, उपन्यास, प्रतीकार, संयोग, पुरुषान्तर अदृष्टनर, आदिष्ट, आत्मादिष्ट, उपग्रह, परिक्रय, उच्छिन्न, परभूषण और स्कन्धोपनेय—इस प्रकार विद्वान लोगों ने संधि के सोलह प्रकार बतलाए हैं ॥

'कपालसन्धिर्विज्ञेयः केवलं समसन्धितः।
सम्प्रदानाद्भवति य उपहारः स उच्यते' ॥ ११७ ॥

अन्वयः—केवलं समसन्धित: कपालसन्धि: विज्ञेय: य: सम्प्रदानात् भवति स उपहार: उच्यते ॥ ११७ ॥

समसन्धित:=समानयो: बलशालिनो: सन्धि: । सम्प्रदानात्=धनादिप्रदानात् । उच्यते=कथ्यते ।। ११७ ।।

समान बलवालों की आपस में की गई संधि को कपालसन्धि और कर, उपहार आदि देकर की गई सन्धि उपहारसन्धि कही जाती है ।। ११७ ।।

सन्तानसन्धिर्विज्ञेयो दारिकादानपूर्वकः ।
सद्भिस्तु सङ्गतः सन्धिर्मैत्रीपूर्व उदाहृतः ॥ ११८ ॥

अन्वयः—दारिकादानपूर्वक: (सन्धान:) सन्तानसन्धि: विज्ञेयः, सद्भि: मैत्रीपूर्व: संगत: सन्धि: उदाहृत: ।। ११८ ।।

दारिकादानपूर्वक:=पुत्रीदानयुक्त: । सद्भि:=सज्जनै: । मैत्रीपूर्व: = मैत्रीयुक्त: कृत: सन्धान: । उदाहृत:=कथित: ।। ११८ ।।

प्रतिपक्षी को कन्या देकर जो संधि की जाती हैं उसे सन्तानसंधि और सज्जनों में परस्पर मैत्रीभाव से जो संधि की जाती है उसे संगतसंधि कहते हैं ।।

यावदायुःप्रमाणस्तु समानार्थप्रयोजनः ।
सम्पत्तौ वा, विपत्तौ वा, कारणर्यो न भिद्यते' ॥ ११९ ॥

अन्वयः—य: यावदायु:प्रमाण: समानार्थप्रयोजन: सम्पत्तो वा विपत्तो वा कारणै: यो न भिद्यते ।। ११९ ।।

य:=संगतसन्धि: । यावदायु:प्रमाण:=समस्तायु:पर्यन्त: । समानार्थप्रयोजन:= समानहित: । सम्पत्तो वा विपत्तो वा=सुखे दु:खे वा । कारणै:=कै: अपि हेतुभि: । न भिद्यते=भेदं न प्राप्नोति ।। ११९ ।।

समान अर्थ और प्रयोजन होने के कारण समस्त जीवन में सम्पत्ति या बिपत्ति किसी भी दशा में अथवा किसी कारण से जो सन्धि टूटती नहीं है ।।

सङ्गतः सन्धिरेवायं प्रकृष्टत्वात्सुवर्णवत् ।
तथान्यैः सन्धिकुशलैः 'काञ्चनः' समुदाहृतः ॥ १२० ॥

अन्वयः—सुवर्णवत् प्रकृष्टत्वात् अयम् संगतः सन्धि: एव अन्यै: सन्धिकुशलै: काञ्चन: समुदाहृत: ।। १२० ।।

सुवर्णवत् = काञ्चनवत् । प्रकृष्टत्वात्=निर्मलत्वात् । अन्यै:=अपरै: । सन्धिकुशलै:=सन्धिविचक्षणै: । काञ्चन:=काञ्चनसन्धि: । उदाहृत:=कथित: ।।१०२।।

यह संगतसंधि ही सोने के समान उत्तम होने के कारण अन्य संधिकुशल राजनीतिज्ञों द्वारा 'काञ्चनसंधि' के नाम से विख्यात है ।। १२० ।।

आत्मकार्यस्य सिद्धिं तु समुद्दिश्य क्रियेत यः ।
स उपन्यासकुशलैरुपन्यास उदाहृतः ॥ १२१ ॥

अन्वयः—यः आत्मकार्यस्य सिद्धिम् समुद्दिश्य क्रियेत, उपन्यासकुशलैः स उपन्यासः उदाहृतः ॥ १२१ ॥

आत्मकार्यस्य=स्वार्थस्य । सिद्धिम् = सफलताम् । समुद्दिश्य = लक्ष्यीकृत्य । उपन्यासकुशलैः=सन्धिविचक्षणैः । उदाहृतः=उक्तः ॥ १२१ ॥

अपने काम की सिद्धि की दृष्टि से जो संधि की जाती है उसे संधिचतुर लोग 'उपन्यास संधि' कहते हैं ॥ १२१ ॥

'मयास्योपकृतं पूर्वं, ममाप्येष करिष्यति'।
इति यः क्रियते सन्धिः 'प्रतीकारः' स उच्यते ॥ १२२ ॥

अन्वयः—मया पूर्वम् अस्य उपकृतम् (अतः) एषः ममापि करिष्यति इति यः सन्धिः क्रियते स प्रतीकारः उच्यते ॥ १२२ ॥

मया उपकृतम्=अहम् उपकरोमि । इति=इत्याशयेन ॥ १२२ ॥

मैंने पहले इसका उपकार किया है, यह मेरा भी करेगा इस दृष्टि से जो संधि की जाती है उसे प्रतीकार संधि कहते हैं ॥ १२२ ॥

'उपकारं करोम्यस्य, ममाप्येष करिष्यति'।
अयं चापि प्रतीकारो रामसुग्रीवयोरिव ॥ १२३ ॥

अन्वयः—अस्य उपकारम् करोमि, एषः ममापि करिष्यति रामसुग्रीवयोः इव अयम् चापि प्रतीकारः उच्यते ॥ १२३ ॥

अयं चापि=इत्यभिप्रायेण कृतः सन्धिः अपि ॥ १२३ ॥

मैं इसका उपकार कर रहा हूँ, यह मेरा भी करेगा। इस प्रकार की संधि भी प्रतीकार कही जाती है जैसा राम और सुग्रीव ने किया था ॥ १२३ ॥

'एकार्थां सम्यगुद्दिश्य क्रियां यत्र हि गच्छति ।
सुसंहितप्रयाणस्तु स च संयोग उच्यते' ॥ १२४ ॥

अन्वयः—एकार्थाम् क्रियाम् सम्यगुद्दिश्य यत्र गच्छति सुसंहितप्रयाणः स संयोगः (इति) उच्यते ॥ १२४ ॥

एकार्थाम् क्रियाम्=एकप्रयोजनाम् क्रियाम् । सम्यगुद्दिश्य=पूर्णतया लक्ष्यीकृत्य । सुसंहितप्रयाणः=सुष्ठुरीत्या मिलितगमनः ॥ १२४ ॥

जहाँ समान अर्थ की सिद्धि के लिए किसी क्रिया (चढ़ाई) को लक्ष्य करके अधिक संख्या में सेना लेकर चढ़ाई करने के लिए संधि की जाती है वह संयोग संधि कही जाती है ॥ १२४ ॥

'आवयोर्योधमुख्यैस्तु मदर्थः साध्यता'मिति- ।
यस्मिन्पणस्तु क्रियते, स सन्धिः 'पुरुषान्तरः' ॥ १२५ ॥

अन्वयः—यस्मिन् (सन्धौ) आवयोर्योधमुख्यैः मदर्थः साध्यताम् इति पणः क्रियते=स पुरुषान्तरः सन्धिः (उच्यते) ॥ १२५ ॥

योधमुख्यैः=मुख्यसुभटैः । मदर्थः=मत्कार्यम् । पणः=प्रतिज्ञा (शर्त) ॥

'हमारे और तुम्हारे श्रेष्ठ सैनिक आपस में मिलकर समयानुकूल सहायता देते रहें'–जहाँ इस प्रकार का निश्चय करके संधि की जाती है, वह पुरुषान्तर संधि कही जाती है ॥ १२५ ॥

'त्वयैकेन मदीयोऽर्थः सम्प्रसाध्यस्त्वसा'विति- ।
-यत्र शत्रुः पणं कुर्यात्सो'ऽदृष्टपुरुषः' स्मृतः ॥ १२६ ॥

अन्वयः—यत्र शत्रुः 'एकेन त्वया मदीयः असौ अर्थः सम्प्रसाध्यः' इति पणम् कुर्यात् सः अदृष्टपुरुषः स्मृतः ॥ १२६ ॥

एकेन त्वया=एकाकिना त्वया । मदीयः=मत्सम्बन्धी । अर्थः=प्रयोजकम् । पणम्=प्रतिज्ञाम् ॥ १२६ ॥

'तुम्हें अकेले ही मेरे काम को पूरा करना होगा'—जहाँ शत्रु इस प्रकार की शर्त रख कर संधि करता है उसे अदृष्ट-पुरुष संधि कहते हैं ॥ १२६ ॥

'यत्र भूम्येकदेशेन पणेन रिपुरूर्जितः ।
सन्धीयते सन्धिविद्भिः, स चादिष्ट उदाहृतः' ॥ १२७ ॥

अन्वयः—यत्र भूम्येकदेशेन पणेन ऊर्जितः रिपुः सन्धीयते संधिविद्भिः स आदिष्टः उदाहृतः ॥ १२७ ॥

यत्र=यस्मिन् सन्धौ । भूम्येकदेशेन=भूम्येकभागेन । पणेन = प्रतिज्ञया । ऊर्जितः=बलिष्ठः । रिपुः=शत्रुः ॥ १२७ ॥

जिस संधि में राज्य का एक भाग देकर बलवान् शत्रु से संधि की जाती है उसे सन्धि के ज्ञाता आदिष्ट-संधि के नाम से पुकारते हैं ॥ १२७ ॥

'स्वसैन्येन तु सन्धानमात्मादिष्ट उदाहृतः ।
क्रियते प्राणरक्षार्थं सर्वदानादुपग्रहः' ॥ १२८ ॥

अन्वयः—स्वसैन्येन सन्धानम् आत्मादिष्टः उदाहृतः प्राणरक्षार्थम् सर्वदानात् (यः सन्धिः) क्रियते स उपग्रहः (कथ्यते) ॥ १२८ ॥

स्वसैन्येन = स्वसैन्यप्रदानेन । प्राणरक्षार्थम् = आत्मरक्षणाय । सर्वदानात् = राज्यादिसर्वप्रदानात् ॥ १२८ ॥

अपनी सेना देकर जो सन्धि की जाती है उसे आत्मादिष्ट सन्धि तथा अपने प्राणों की रक्षा के लिए सब कुछ देकर जो सन्धि की जाती है उसे उपग्रह सन्धि कहते हैं ॥ १२८ ॥

'कोशांशेनार्धकोशेन, सर्वकोशेन वा पुनः ।
शिष्टस्य प्रतिरक्षार्थं, परिक्रय उदाहृतः' ॥ १२९ ॥

अन्वयः—शिष्टस्य प्रतिरक्षार्थम् कोशांशेन अर्धकोशेन सर्वकोशेन वा (यः सन्धिः क्रियते सः) परिक्रयः उदाहृतः ॥ १२९ ॥

शिष्टस्य=शत्रुहरणादवशिष्टस्य राज्यस्य । प्रतिरक्षार्थं=रक्षणाय । कोशांशेन= कोशैकभागप्रदानेन, अर्धकोशेन=कोशार्धभागेन । उदाहृतः = कथितः ॥ १२९ ॥

बचे हुए राज्य की रक्षा के लिए खजाने का थोड़ा, आधा अथवा पूरा खजाना देकर जो सन्धि की जाती है उसे परिक्रय सन्धि कहते हैं ॥ १२९ ॥

'भुवां सारवतीनां तु दानादुच्छिन्न उच्यते ।
भूम्युत्थफलदानेन सर्वेण परभूषणः' ॥ १३० ॥

अन्वयः—सारवतीनां भुवाम् दानात् 'उच्छिन्नः' (तथा) सर्वेण भूम्युत्थफल-दानेन 'परभूषणः' उच्यते ॥ १३० ॥

सारवतीनाम्=रत्नान्नादिपूर्णानाम् । भुवाम् = पृथ्वीनाम् । दानात् = प्रदानात् । सर्वेण=पूर्णेन । भूम्युत्थफलदानेन = भूम्युत्पन्नफलदानेन ॥ १३० ॥

रत्न-सुवर्ण आदि से परिपूर्ण पृथ्वी को देकर की जाने वाली सन्धि 'उच्छिन्न' और भूमि से उत्पन्न सभी फलों को देकर की जाने वाली सन्धि 'परभूषण' कही जाती है ॥ १३० ॥

'परिच्छिन्नं फलं यत्र प्रतिस्कन्धेन दीयते ।
स्कन्धोपनेयं तं प्राहुः सन्धिं सन्धिविचक्षणाः' ॥ १३१ ॥

अन्वयः—यत्र प्रतिस्कन्धेन परिच्छिन्नं फलं दीयते, सन्धिविचक्षणाः तं सन्धिम् स्कन्धोपनेयम् प्राहुः ॥ १३१ ॥

यत्र=यस्मिन् संधौ । प्रतिस्कन्धेन=बहुलांशेन (कई किश्तों में) परि-च्छिन्नम्=परिमितम् । फलम्=धान्यादिकम् । सन्धिविचक्षणाः=संधिकुशलाः ॥

जहाँ कई किश्तों में निश्चित धान्यादि देकर सन्धि की जाती है, उसे संधि-कुशल लोग 'स्कन्धोपनेय' सन्धि कहते हैं ॥ १३१ ॥

'परस्परोपकारस्तु, मैत्री, सम्बन्धकस्तथा ।
उपहारश्च विज्ञेयाश्चत्वारश्चैव सन्धयः' ॥ १३२ ॥

अन्वयः—परस्परोपकारः, मैत्री, सम्बन्धकः तथा उपहारश्च, चत्वारः चैव सन्धयः विज्ञेयाः ॥ १३२ ॥

परस्परोपकारः=अन्योन्यमुपकारः । मैत्री=मित्रता । सम्बन्धकः=विवाहादि-सम्बन्धः । उपहारः=धनादिप्रदानम् ॥ १३२ ॥

परस्पर उपकार, मित्रता, सम्बन्ध और उपहार यही चार सन्धियाँ कही जाती हैं ॥ १३२ ॥

'एक एवोपहारस्तु सन्धिरेव मतो मम ।
उपहारविभेदास्तु सर्वे मैत्रविवर्जिताः ॥ १३३ ॥

अन्वयः—मम मतः एक उपहारः एव सन्धिः एव, मैत्रविवर्जिताः सर्वे उपहारविभेदाः ॥ १३३ ॥

मैत्रीसन्धिभिन्ना अन्ये त्रयः सन्धयः उपहारसन्धेः भेदाः सन्ति ॥ १३३ ॥

मेरे विचार से एक उपहार ही सन्धि है, मैत्री को छोड़ कर और सभी सन्धियाँ उपहार का ही भेद होती हैं ॥ १३३ ॥

'अभियोक्ता बलीयस्त्वादलब्ध्वा न निवर्त्तते ।
उपहारादृते तस्मात्सन्धिरन्यो न विद्यते' ॥ १३४ ॥

अन्वयः—बलीयस्त्वात् अभियोक्ता अलब्ध्वा न निवर्तते, तस्मात् उपहारादृते अन्यः सन्धिः न विद्यते ॥ १३४ ॥

बलीयस्त्वात्=अतिसमर्थत्वात् । अभियोक्ता=आक्रामकः । अलब्ध्वा=उपहार-मगृहीत्वा । न निवर्तते=न परावर्तते । तस्मात्=अतः ॥ १३४ ॥

आक्रमण करने वाला बलवान होने के कारण बिना कुछ उपहार लिए नहीं लौटता है । इसलिए उपहार के अतिरिक्त और कोई सन्धि नहीं होती है ॥१३४॥

राजाह—'भवन्तो महान्तः, पण्डिताश्च । तदत्रास्माकं यथा-कार्यमुपदिश्यताम्' । दूरदर्शी ब्रूते-'आः ! किमेवमुच्यते ?—

राजा ने कहा—आप लोग बहुत बड़े और पण्डित हैं । अतः इस समय हमें क्या करना चाहिए उसे बताइए । दूरदर्शी ने कहा—आप यह क्या कह रहे हैं ?

आधि-व्याधि परीतापादद्य श्वो वा विनाशिने ।
को हि नाम शरीराय धर्मापेतं समाचरेत्' ॥ १३५ ॥

अन्वयः—आधिव्याधिपरीतापात् अद्य श्वः वा विनाशिने शरीराय को नाम हि धर्मापेतम् समाचरेत् ॥ १३५ ॥

आधिः=मानसी पीडा । व्याधिः=शारीरिकी पीडा । परीतापात्=सन्तापात् । अद्य श्वः वा=अचिरात् । विनाशिने=नाशवते । शरीराय=देहार्थम् । धर्मापेतम्=धर्मविरुद्धम् ॥ १३५ ॥

मानसिक तथा शारीरिक पीड़ा से आज अथवा कल नष्ट हो जाने वाले इस शरीर के लिए कौन ऐसा होगा जो धर्म के विरुद्ध आचरण करेगा ॥ ६३५ ॥

'जलान्तश्चन्द्रचपलं जीवितं खलु देहिनाम् ।
तथाविधमिति ज्ञात्वा शश्वत्कल्याणमाचरेत् ॥ १३६ ॥

अन्वयः—देहिनाम् जीवितम् जलान्तश्चन्द्रचपलम् खलु तथाविधम् इति ज्ञात्वा शश्वत्कल्याणम् आचरेत् ॥ १३६ ॥

देहिनाम् = शरीरधारिणाम् । जीवितम् = जीवनम् । जलान्तश्चन्द्रचपलम्= जलप्रतिबिम्बितचन्द्रेण तुल्यम् चञ्चलम् । शश्वत्=निरन्तरम् । कल्याणम् = शुभकार्यम् ॥ १३६ ॥

प्राणियों का जीवन जल में प्रतिबिम्बित होने वाले चन्द्रमा के समान चञ्चल होता है । अतः उसे नाशवान् समझ कर निरन्तर कल्याणकारी कार्यों को करते रहना चाहिए ॥ १३६ ॥

'वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्य-
मापातमात्रमधुरो विषयोपभोगः ।
प्राणास्तृणाग्रजलबिन्दुसमानलोला,
धर्मः सखा परमहो ! परलोकयाने' ॥ १३७ ॥

अन्वयः—इदम् वसुधाधिपत्यम् वाताभ्रविभ्रमम्, विषयोपभोगः आपातमात्रमधुरः, प्राणाः तृणाग्रजलबिन्दुसमानलोलाः (अतः) परलोकयाने धर्मः परम् सखा (अस्ति) ॥ १३७ ॥

वसुधाधिपत्यम्=राज्यम् । वाताभ्रविभ्रमम् = वायुना ताडितघनवत् क्षणविध्वंसि । विषयोपभोगः=कामोपभोगः । आपातमात्रमधुरः=अविचारितमनोहरः । तृणाग्रजलबिन्दुसमानलोलाः = तृणाग्रस्थितजलकणवत् चञ्चलाः । परलोकयाने = परलोकयात्रायाम् ॥ १३७ ॥

यह राज्य वायु के आघात से छिन्न-भिन्न हो जाने वाले बादल के समान क्षणभंगुर, यह विषयों का उपभोग तात्कालिक (क्षणमात्र) मधुर लगने वाला और

ये प्राण घासों के ऊपर दिखाई पड़ने वाली ओस की बूंदों के समान चञ्चल होते हैं। परलोक यात्रा में केवल धर्म ही श्रेष्ठ मित्र का काम देता है ॥ १३७ ॥

'मृगतृष्णासमं वीक्ष्य संसारं क्षणभङ्गुरम् ।
'सज्जनैः सङ्गतं कुर्याद्धर्माय च, सुखाय च' ॥ १३८ ॥

अन्वयः—संसारम् मृगतृष्णासमम् क्षणभङ्गुरम् वीक्ष्य धर्माय च सुखाय च सज्जनैः सङ्गतम् कुर्यात् ॥ १३८ ॥

संसारम्=इमम् लोकम् । मृगतृष्णासमम्=मरीचिकातुल्यम् । क्षणभङ्गुरम्=क्षणनश्वरम् । वीक्ष्य=दृष्ट्वा । सज्जनैः सङ्गतम्=सज्जनमैत्रीम् । धर्माय=धर्मलाभाय । सुखाय=सुखार्थम् ॥ १३८ ॥

इस संसार को मृगतृष्णा के समान क्षणभङ्गुर देख कर सुख तथा धर्मोपार्जन के लिए सज्जनों की मित्रता करनी चाहिए ॥ १३८ ॥

तन्मम संमतेन तदेव क्रियताम् ।' यतः—

इसलिए मेरे मत से वही कीजिए क्योंकि—

'अश्वमेधसहस्राणि, सत्यं च तुलया धृतम् ।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेवातिरिच्यते ॥ १३९ ॥

अन्वयः—तुलया धृतम् सत्यम् अश्वमेधसहस्राणि च, अश्वमेधसहस्राद् सत्यमेव अतिरिच्यते ॥ १३९ ॥

तुलया धृतम्=तुलायां धारितम्, समुतोलितम् । अतिरिच्यते=वर्द्धते ॥ १३९ ॥

हजारों अश्वमेध यज्ञ और सत्य को तराजू पर रखा जाय तो हजारों अश्वमेध यज्ञ से सत्य ही अधिक भार वाला होगा ॥ १३९ ॥

अतः सत्याभिधानदिव्यपुरःसरमनयोर्भूपालयोः काञ्चनाभिधानः 'सन्धिर्विधीयताम्' । सर्वज्ञो ब्रूते-'एवमस्तु' । ततो राजहंसेन राज्ञा वस्त्रालङ्कारोपहारैः स मन्त्री दूरदर्शी पूजितः प्रहृष्टमनाश्चक्रवाकं गृहीत्वा, राज्ञो मयूरस्य संनिधानं गतः । तत्र चित्रवर्णेन राज्ञा सर्वज्ञो गृध्रवचनाद्बहुमानदानपुरःसरं सम्भाषितस्तथाविधं सन्धिं स्वीकृत्य, राजहंससमीपं प्रस्थापितः ।

सत्याभिधानदिव्यपुरस्सरम्=सत्यनामशपथपूर्वकम् । सन्निधानम्=समीपम् । सम्भाषितः=वार्तालापेन परितोषितः । नः=अस्माकम् । समीहितम्=ईप्सितम् ।

इसलिए सत्य की शपथ लेकर इन दोनों राजाओं में काञ्चन संधि करा देनी चाहिए । सर्वज्ञ ने कहा—ठीक है ऐसा ही होना चाहिए । इसके बाद राजा

राजहंस द्वारा वस्त्र और गहनों के उपहार से सम्मानित होकर मंत्री दूरदर्शी प्रसन्न होकर चक्रवाक को लेकर राजा मयूर के पास गया। वहाँ राजा चित्रवर्ण ने सर्वज्ञ को गृद्ध के कथनानुसार बहुत अधिक दान-मान के साथ संतुष्ट करके उस सन्धि को स्वीकार कर उसे राजहंस के पास भेज दिया।

दूरदर्शी ब्रूते—'देव ! सिद्धं नः समीहितम्। इदानीं स्वस्थानमेव विन्ध्याचलं व्यावृत्य प्रतिगम्यताम्'।

अथ सर्वे स्वस्थानं प्राप्य, मनाभिलषितं फलं प्राप्नुवन्निति।

दूरदर्शी ने कहा—देव, हमलोगों की इच्छा पूरी हुई इस समय अपने देश विन्ध्याचल को लौट चलना चाहिए। इसके पश्चात् सभी अपने-अपने देश जाकर मनोवाञ्छित फल प्राप्त करने लगे।

विष्णुशर्मणोक्तम्—अपरं किं कथयामि, तदुच्यताम्'।

विष्णुशर्मा ने कहा—बताओ, अब मैं और क्या आप लोगों को सुनाऊँ?

राजपुत्रा ऊचुः—आर्य ! तव प्रसादात्सकलराज्यव्यवहाराङ्गं ज्ञातम्। ततः सुखिनो भूता वयम्।'

राजपुत्रों ने कहा—आर्य तुम्हारी कृपा से हम लोगों ने राज्य व्यवहार के सभी अंगों को जान लिया है। जिससे हमलोग बहुत प्रसन्न हैं।

विष्णुशर्मोवाच—'यद्यप्येवं तथाप्यपरमपीदमस्तु'—

विष्णुशर्मा ने कहा—यद्यपि ऐसा है तथापि यह भी हो।

'सन्धिः सर्वमहीभुजां विजयिनामस्तु, प्रमोदः सदा,
सन्तः सन्तु निरापदः, सुकृतिनां कीर्तिश्चिरं वर्द्धताम्।
नीतिवारविलासिनीव सततं वक्षःस्थले संस्थिता
वक्त्रं चुम्बतु मन्त्रिणामहरहर्भूयान्महानुत्सवः'॥ १४०॥

अन्वयः—विजयिनाम् सर्वमहीभुजाम् सन्धिः अस्तु, सदा प्रमोदः (अस्तु) सन्तः निरापदः सन्तु, सुकृतिनाम् कीर्तिः चिरं वर्द्धताम्, मन्त्रिणाम् वक्षःस्थले सततम् संस्थिता वारविलासिनी इव नीतिः वक्त्रम् चुम्बतु, अहरहः महान् उत्सवः भूयात्॥ १४०॥

विजयिनाम्=विजयशालिनाम्। सर्वमहीभृताम्=सर्वराज्ञाम्। प्रमोदः=आनन्दः। सन्तः=सज्जनाः। निरापदः=सुखिनः। सुकृतिनाम्=विदुषाम्। कीर्तिः=यशः। वर्द्धताम्=संसारे विस्तृता भवतु। वक्षःस्थले=उरःप्रदेशे, वार-

विलासिनीव=वेश्या इव । सततम् = सर्वदा । वक्त्रम्=मुखम् । हृदयेस्थिता राज-नीतिः वाचि वसतु । अहरहः=प्रतिदिनम् ।। १४० ।।

सभी राजाओं का विजयी राजाओं के साथ संधि हो, आनन्द हो, सज्जन लोग सुखी हों, विद्वानों की कीर्ति का प्रसार हो, मंत्रियों के हृदय में वेश्या के समान सर्वदा स्थित रहने वाली राजनीति उनकी वाणी में निवास करे और प्रतिदिन महान् उत्सव होता रहे ।। १४० ।।

अन्यच्चास्तु—

'प्रालेयाद्रेः सुतायाः प्रणयनिवसतिश्चन्द्रमौलिः स यावद्
यावल्लक्ष्मीर्मुरारेर्जलद इव तडिन्मानसे विस्फुरन्ती ।
यावत्स्वर्णाचलोऽयं दवदहनसमो यस्य सूर्यः स्फुलिङ्ग-
स्तावन्नारायणेन प्रचरतु रचितः संग्रहोऽयं कथानाम् ॥

अन्वयः—प्रालेयाद्रेः सुतायाः प्रणयनिवसतिः चन्द्रमौलिः यावत्, जलदे विस्फुरन्ती तडित् इव मुरारेः मानसे लक्ष्मीः यावत्, अयम् स्वर्णाचलः यावत्, यस्य दवदहनसमः स्फुलिङ्गः सूर्यः (अस्ति), तावत् नारायणेन रचितः कथानाम् अयम् संग्रहः प्रचरतु ।। १४१ ।।

प्रालेयाद्रेः = हिमालयस्य । सुतायाः=पुत्र्याः, पार्वत्याः । प्रणयनिवासः= प्रेमपात्रम् । चन्द्रमौलिः=शिवः । जलदे=मेघे । विस्फुरन्ती=उन्मिषन्ती । तडित्= विद्युत् । मुरारेः=विष्णोः । दवदहनसमः=दावाग्निज्वालासदृशः । स्वर्णाचलः= हेमकूटः । नारायणेन रचितः नारायणपंडितेन निर्मितः ।। १४१ ।।

जब तक हिमालय की पुत्री पार्वती जी के प्रेम में भगवान् शंकर की स्थिति रहे, जब तक बादलों के बीच चमकती हुई बिजली के समान भगवान् विष्णु के हृदय में लक्ष्मी का निवास रहे और जब तक दावाग्नि की ज्वाला के समान यह हेमकूट विद्यमान रहे, जिसकी चिनगारी के समान यह सूर्य है, तब तक नारायण पण्डित द्वारा रचित कथाओं का यह संग्रह सभी जगह प्रचलित रहे ।।

किञ्च—'उर्वीमुद्दामसस्यां जनयतु विसृजन् वासवो वृष्टिमिष्टा-
मिष्टैस्त्रैविष्टपानां विदधतु विधिवत्प्रीणनं विप्रमुख्याः ।
आकल्पान्तञ्च भूयात्समुपचितसुखः सङ्गमः सज्जनानां,
निश्शेषं यान्तु शान्तिं पिशुनजनगिरो दुर्जया वज्रलेपाः' ॥

अन्वयः—वासवः इष्टाम् वृष्टिम् विसृजन् उर्वीम् । उद्दामसस्याम् जनयतु । विप्रमुख्याः तैः इष्टैः विष्टपानाम् विधिवत् प्रीणनम् विदधतु । सज्जनानां सङ्गमः

आकल्पान्तरम् समुपचितसुखः भूयात् । वज्रलेपाः दुर्जयाः पिशुनजनगिरः निश्शेषं शान्ति यान्तु ॥ १४२ ॥

वासवः=इन्द्रः । इष्टाम् = अभिमताम् । वृष्टिम् = जलवर्षणम् । विसृजन्= त्यजन्, कुर्वन् । उद्दामसस्याम्=धान्यपूरितम् । उर्वीम्=पृथिवीम् । तैः = धान्यादिभिः । इष्टैः=यज्ञैः । विप्रमुख्याः=वेदज्ञाः । विष्टपानाम्=लोकानाम् । प्रीणनम्= तृप्तिम् । विदधतु=कुर्वन्तु । सज्जनानां संगमः=सत्संगतिः । आकल्पान्तम्= कल्पान्तम् यावत् । समुपचितसुखः = सुखान्वितः । दुर्जयाः = दुर्दमनीयाः । वज्रलेपाः=अतिनिष्ठुराः । पिशुनजनगिरः=दुष्टजनवाचः । निश्शेषं = समूलम् । शान्तिम्=प्रशमम् ॥ १४२ ॥

इन्द्र यथेष्ट जल के द्वारा पृथ्वी को धान्य से परिपूर्ण करें, वेदज्ञ ब्राह्मण धान्यों तथा यज्ञों से देवताओं को विधिपूर्वक प्रसन्न करें । सज्जनों की संगति कल्पान्त तक सम्पत्ति और समृद्धि की देने वाली बने । वज्र के समान कठोर दुष्टों की वाणी भली भाँति शान्त हो जाय ॥ १४९ ॥

अपरञ्च—श्रीमान्धवलचन्द्रोऽसौ जीयान्माण्डलिको रिपून् ।
येनायं संग्रहो यत्नाल्लेखयित्वा प्रचारितः ॥ १४३ ॥

इति हितोपदेशे सन्धिर्नाम चतुर्थः कथासंग्रहः ।

समाप्तश्चायं हितोपदेशः ।

—:०:—

अन्वयः—माण्डलिकः श्रीमान् धवलचन्द्र असौ रिपून् जीयात्, येन अयम् संग्रहः यत्नात् लेखयित्वा प्रचारितः ॥ १४३ ॥

माण्डलिकः = मण्डलाधिपतिः । धवलचन्द्रः—गुर्जरप्रदेशस्य राजविशेषः । रिपून्=शत्रून् । जीयात्=विजयताम् ॥ १४३ ॥

इति हितोपदेशे संधिर्नाम चतुर्थः कथासंग्रहः समाप्तः ।

समाप्तोऽयं हितोपदेशः शुभं भूयात् ।

—:०:—

यह (गुर्जर प्रदेश का) मांडलिक राजा धवलचन्द्र भी शत्रुओं को जीते जिसने बड़े परिश्रम से इस संग्रह को लिखा कर इसका प्रचार कराया ॥१४३॥

हितोपदेश का चौथा कथासंग्रह समाप्त ।

हितोपदेश समाप्त ।

—:०:—